हमारे राष्ट्रपति

[सन् १८८५ से १९३८ तक के कांग्रेस-सभापतियों के जीवन-परिचय]

प्रस्तावना लेखक

बाबू राजेन्द्रप्रसाद

लेखक

सत्यदेव विद्यालङ्कार

सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

शाखा : लखनऊ

प्रकाशक,
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली ।

संस्करण
अप्रैल १९३६ : २०००
नवम्बर १९३८ : २०००
मूल्य
एक रुपया

मुद्रक,
एस. एन. भारती,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली ।

दूसरा संस्करण

देश में राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय स्वाभिमान के जागने के साथ-साथ राष्ट्रीय साहित्य की मांग का बढ़ना सहज और स्वाभाविक है। इसलिए इस पुस्तक का इतना जल्दी दूसरा संस्करण होना कोई अनहोनी बात नहीं। इस संस्करण में आवश्यक संशोधन करने के साथ-साथ जीवित राष्ट्रपतियों के जीवन-परिचय 'अप टू डेट' कर दिये गये हैं और राष्ट्रपति श्री सुभाषचन्द्र बोस का जीवन-परिचय भी शामिल कर दिया गया है। जल्दी में महामना मालवीयजी के जीवन-परिचय में उनकी रुग्णावस्था और जनवरी १९३७ में मनाई गई उनकी हीरक-जयन्ती का उल्लेख करना रह गया। उस अवसर पर आपकी एक विशाल जीवनी प्रकाशित की गई थी, देश में चारों ओर जयन्ती-महोत्सव मनाया गया था और हिन्दू विश्वविद्यालय में विशेष समारम्भ किया गया था। आपने विश्वविद्यालय के समारम्भ के अवसर पर कहा था कि "मुझे अभी मरने की फुरसत नहीं है। मैं अपने कार्यक्रम को पूरा करने के लिए १० वर्ष और जीवित रहना चाहता हूँ। मुझे देश व हिन्दू धर्म की सबसे अधिक चिन्ता है।"

देशरत्न राजेन्द्रबाबू दिल्ली से पटना जाने के बाद फिर बीमार पड़ गये हैं। इस समय आप अपने गांव जीरादेई में बीमार हैं। पं० जवाहरलालजी नेहरू इतने कर्तव्यशील और अध्यवसायी हैं कि उनकी आज लिखी हुई जीवनी कल पुरानी—'आउट आफ डेट' होजाती है।

इस संस्करण में से १९३२ में दिल्ली और १९३३ में कलकत्ता में हुए अधिवेशनों के सभापतियों, श्री रणछोड़लाल अमृतलाल और श्रीमती नेली

सेनगुप्ता, का जीवन-परिचय निकाल दिया गया है, क्योंकि कार्य-समिति ने इन अधिवेशनों को नियमित न मानने का प्रस्ताव किया था। राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संग्राम में उनकी उपेक्षा निश्चय ही नहीं की जानी चाहिए। लेकिन, राष्ट्रपतियों की नामावली के लिए नियमित अधिवेशनों का ही लिया जाना जरूरी था। राष्ट्रीय आन्दोलन या संग्राम के नाते ये अधिवेशन इतिहास का विषय है, इस पुस्तक का नहीं।

आशा है राष्ट्रप्रेमी हिन्दी जनता इस दूसरे संस्करण को भी पहले ही के समान अपनाकर लेखक और प्रकाशक-मण्डल को उत्साहित करेगी। 'हिन्दुस्तान' के संयुक्त-सम्पादक भाई मुकुटविहारी वर्मा ने इस संस्करण की तैयारी में भी सराहनीय हाथ बटाया है।

'गीता-विज्ञान' कार्यालय
४० ए, हनुमान रोड़,
२१ नवम्बर, १९३८.

सत्यदेव विद्यालंकार
सम्पादक 'हिन्दुस्तान'

पहला संस्करण

डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया-लिखित 'कांग्रेस-इतिहास' के दूसरे संस्करण की तय्यारी के लिए जनवरी के तीसरे सप्ताह में श्री हरिभाऊजी उपाध्याय जब देहली आये, तब उन्होंने 'सस्ता साहित्य मण्डल' की ओर से कांग्रेस के समस्त सभापतियों की जीवनी लिखने का कार्य करने के लिए मुझे प्रेरित किया और कहा कि वह कांग्रेस-इतिहास के दूसरे संस्करण के साथ ही लखनऊ में होनेवाली कांग्रेस के अवसर पर न केवल लिखकर किन्तु छपकर भी तय्यार होजाना चाहिए। मैंने बहुत झिझकते हुए स्वीकार तो कर लिया, पर दिल नहीं माना कि इतना बड़ा और ऐसा श्रम-साध्य कार्य इतने थोड़े समय में हो सकेगा। दैनिक 'अर्जुन' के सम्पादक श्री रामगोपालजी विद्यालंकार, साप्ताहिक 'अर्जुन' के सम्पादक श्रीकृष्णचन्द्रजी विद्यालंकार और अपने पुराने साथी श्री मुकुटबिहारी वर्मा से इस सम्बन्ध में बातचीत हुई। आप भाइयों के सहयोग के आश्वासन पर यह काम शुरू कर दिया गया। प्रस्तुत पुस्तक को आप तीनों के सहयोग का ही परिणाम समझना चाहिए, जिसके लिए मैं आप भाइयों का कृतज्ञ और अनुगृहीत हूँ।

कार्य शुरू करने पर उपयुक्त साहित्य-सामग्री का मिलना कठिन हो गया। श्री नटेसन ने तबतक के कुछ कांग्रेसी सभापतियों की जीवनियाँ प्रकाशित की हैं, जबतक कि उसमें उग्र विचारों का समावेश न हुआ था। उस समय के भी अधिकांश सभापतियों की जीवनियां अप्राप्य और अप्रकाशित हैं। देहली का पुस्तकों का बाजार और पुस्तकालय इस दृष्टि से बहुत पिछड़े हुए हैं। कुछ सभापतियों के सम्बन्ध में उनके घरवालों के सिवा किसी और से कुछ मालूम होना सम्भव नहीं था। जहाँसे भी हुआ वहाँसे और जैसे भी हुआ वैसे सब सामग्री जुटाई गई।

उसके जुटाने में जिन भाइयों ने सहायता प्रदान की उन सभीका आभार मानना जरूरी है। मदरास के श्री के० सुन्दर राघवन्, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा और 'स्वदेशमित्रम्' के सम्पादक श्रीयुत सी० आर० श्रीनिवासन्, बम्बई के भाई आबिद अली, इलाहाबाद के श्री विश्वम्भर, कलकत्ता के 'विश्वमित्र' के सहकारी-सम्पादक श्री परमेश्वरीसिंह और लखनऊ के श्रीयुत मोहनलाल सक्सेना एम० एल० ए० का साभार और सधन्यवाद नामोल्लेख करना आवश्यक है। आप सबकी सहायता के बिना पुस्तक इतनी सुन्दर, उपयोगी पूर्ण और प्रामाणिक नहीं बन सकती थी। उन सबका नाम देना कठिन है, जिनकी पुस्तकों, लेखों और साहित्य से लाभ उठाया गया है। वह सूची बहुत बड़ी है। पर श्री रामनाथ 'सुमन' और उनकी पुस्तक 'हमारे राष्ट्रनिर्माता' की ओर कृतज्ञतापूर्वक संकेत कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। उनकी लिखी हुई जीवन-कहानियों से इन जीवन-परिचयों की रूप-रेखा खींचने में विशेष सहायता मिली है।

हम लोगों का विचार था कि इसीके साथ परिशिष्ट में उन राष्ट्र पुरुषों का जीवन-परिचय भी दे दिया जाता, जो किसी कारणवश काँग्रेस के सभापति तो नहीं बन सके, किन्तु काँग्रेस को बनाने में जिनका बहुत अधिक हाथ रहा है। काँग्रेस के पितामह कहे जानेवाले और निरन्तर २१-२२ वर्षों तक उसके प्रधान-मन्त्री रहकर उसकी सेवा करनेवाले श्रीयुत ए० ओ० ह्यूम और उनके साथी पं० अयोध्यानाथजी आदि की सेवा उस समय के किसी भी सभापति की सेवा से कम नहीं है। पर, पुस्तक के बहुत बढ़जाने के भय से वैसा नहीं किया जा सका। उस विचार को किसी और समय में दूसरे रूप में पूरा करने की इच्छा वा आकांक्षा अब भी बनी हुई है। लोकमान्य तिलक के व्यक्तित्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। इसलिए उनके जीवन-परिचय का समावेश इसमें करना आवश्यक प्रतीत हुआ।

पुस्तक के नाम के सम्बन्ध में कुछ आपत्ति होना सम्भव है। जिन दिनों में काँग्रेस उग्र राजनीतिक संस्था नहीं बनी थी, उसके वार्षिक अधिवेशन केवल एक समारोह के रूप में होते थे और सभापति भी केवल उस समय के लिए ही चुने जाते थे, उन दिनों के सभापतियों के लिए 'राष्ट्रपति' शब्द का प्रयोग शायद कुछ महानुभवों को ठीक न जँचे, किन्तु बहुत सोच-विचार के बाद भी इससे अधिक उपयुक्त कोई दूसरा नाम इस पुस्तक के लिए नहीं मिला। फिर यदि काँग्रेस के लिए 'राष्ट्रीय महासभा' शब्द काम में लाया जाने लगा है और उसके सभापति के लिए 'राष्ट्रपति' शब्द पर्यायवाची बन गया है, तब पुस्तक के इस नाम में व्यवहार की दृष्टि से किसीको भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए। नीति, कार्यशैली और दृष्टि में भेद-भाव हो जाने के बाद भी वे सब महापुरुष हमारे लिए वंदनीय हैं, जिन्होंने राष्ट्रीय महासभा की कभी कुछ थोडी-सी भी सेवा की है या उसके लिए कष्ट-सहन करते हुए त्याग और तपस्या की है। वे सभी उस समय के सच्चे देश-सेवक थे। उनका उदाहरण आज भी हममें जीवन, उत्साह व स्फूर्ति का संचार कर सकता है और हमारे लिए आदर्श हो सकता है। प्रस्तुत पुस्तक द्वारा उनके आदर्श को सर्व-साधारण के सम्मुख उपस्थित कर उनकी स्मृति की रक्षा के लिए एक यत्न किया गया है। यदि सर्वसाधारण को इससे कुछ भी लाभ हुआ, तो इसके लिए की गई सब मेहनत सफल हो जायगी और भविष्य में ऐसा और साहित्य प्रस्तुत करने के लिए उत्साह मिल सकेगा।

हिन्दी में जीवनी-साहित्य का प्रायः अभाव है। युवकों के चरित्र-निर्माण तथा राष्ट्र-निर्माण के लिए जीवनी-साहित्य की नितान्त आवश्यकता है। वैसे भी जीवनी-साहित्य का अध्ययन अत्यन्त कौतुक-पूर्ण और शिक्षाप्रद है। ऐसे उपयोगी और आवश्यक साहित्य के अभाव की

यदि कुछ थोडी-सी भी पूर्ति इस पुस्तक से हो गई, तो लेखक और प्रकाशक सभी अपने को धन्य मानेंगे।

यह लिखने की जरूरत नहीं होनी चाहिए कि ये जीवन चरित्र नहीं, जीवन-परिचय मात्र हैं और जीवन-परिचय लिखने की शैली हिन्दी में अभी बिल्कुल प्रारम्भिक अवस्था में है। इसलिए उनमें कुछ भूलचूक होना सम्भव है। कांग्रेस के दृष्टिकोण को सामने रखकर विशुद्ध राष्ट्रीय भावना से ये जीवन-परिचय लिखे गये हैं। काँग्रेस के अधिवेशनों के क्रम से ही उनको इस पुस्तक में दिया गया है। दो या दो से अधिक बार सभापति होने वालों का परिचय वहाँ दिया गया है, जहाँ वे अन्तिम वार सभापति हुए हैं। परिचय को प्रामाणिक बनाने की अधिक से अधिक सावधानी रखी गई है। फिर भी यदि कोई भूल-चूक रह गई, होगी, तो उसका संशोधन अगले संस्करण में कर दिया जायगा।

इस पुस्तक के प्रस्तुत करने का जो सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ है, उसके लिए मैं अपना अहोभाग्य मानता हूँ। इस निमित्त से राष्ट्रीय महापुरुषों के प्रति अपने प्रेम, आदर, श्रद्धा और भक्ति की भेंट चढ़ाने का अवसर मुझे अनायास ही मिल गया है। मैं तो इस प्रकार कृतकृत्य हो गया हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि राष्ट्रीय महापुरुषों का यह पुण्य-स्मरण पाठकों के जीवन में राष्ट्रीयता का तेज, बल तथा ओज पैदा करेगा और उनके मार्ग का अनुगामी बन राष्ट्रमाता के चरणों में अपने आपको भेंट चढ़ा देने की दिव्य भावना उनमें भर देगा।

अत्यन्त अधिक कार्यव्यग्र रहते हुए भी राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रबाबू ने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर इसकी प्रस्तावना लिख देने की कृपा की है। उसके लिए लेखक और प्रकाशक सभी उनके अत्यन्त अनुगृहीत और कृतज्ञ हैं।

राष्ट्रीय-सप्ताह,—६ अप्रैल, १९३६] सत्यदेव विद्यालंकार

प्रस्तावना

काँग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती के सिलसिले में काँग्रेस सम्बन्धी कितनी ही छोटी-बड़ी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया लिखित 'काँग्रेस का इतिहास' न केवल अंग्रेज़ी में, किन्तु हिन्दी, उर्दू, गुजराती, मराठी, तेलगू, तामिल में भी ज्यों-का-त्यों प्रकाशित हुआ है और उसका संक्षिप्त संस्करण मलयालम तथा कन्नड़ में भी प्रकाशित किया गया है। इससे पहले कांग्रेस-सम्बन्धी किसी और साहित्य का इतना अधिक प्रसार नहीं हुआ। उसके साथ-साथ प्रायः सभी प्रान्तीय कमेटियों और बहुत-सी ज़िला कमेटियों ने भी अपने-अपने इतिहास प्रकाशित किये हैं। इनके अतिरिक्त भी काँग्रेस के सम्बन्ध में बहुत-सा साहित्य अन्य संस्थाओं ने स्वतन्त्र रूप में प्रकाशित किया है। मुझे यह देखकर बहुत प्रसन्नता हुई है कि दिल्ली के 'सस्ता साहित्य मण्डल' की ओर से हिन्दी में प्रकाशित हुए 'काँग्रेस-इतिहास' का पहला संस्करण इतनी जल्दी बिक गया और अब लखनऊ-काँग्रेस के अवसर पर उसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है और उसके साथ 'हमारे राष्ट्रपति' नाम से एक और सुन्दर पुस्तक भी उसीकी ओर से प्रकाशित की जा रही है। इसमें काँग्रेस के सब सभापतियों का जीवन-परिचय दिया गया है।

शुरू-शुरू में काँग्रेस उग्र राष्ट्रीय संस्था नहीं थी। उसके वार्षिक अधिवेशनों का महत्व सार्वजनिक समारोह से अधिक नहीं होता था। इसलिए उसके सभापति भी अधिवेशन के लिए ही चुने जाते थे और उसके बाद उनपर सार्वजनिक कार्य की ऐसी कोई ज़िम्मेदारी नहीं रहती थी। कांग्रेस का जैसा-जैसा विकास होता गया और जैसे-जैसे उसमें उग्र राष्ट्रीयता का समावेश होता गया उसके सभापतियों की ज़िम्मेदारी बढ़ती

चली गई । यह तो निर्विवाद है कि सभी सभापति अपने समय के सच्चे जन-सेवक थे । देश को जगाने और कांग्रेस के संचालन का उन्होंने कुछ कम काम नहीं किया । अधिकतर उनकी देश सेवा के ही कारण उनको वह आदर दिया जाता था । पूरी कृतज्ञता और सम्मान के साथ हमें उन सबकी सेवा का स्मरण और उनकी स्मृति-रक्षा के लिए यत्न करना चाहिए । उनकी सेवा, त्याग और तपस्या को हम कभी भी भूल नहीं सकते । इसलिए इस पुस्तक के प्रकाशन के प्रयत्न को में प्रशंसनीय समझता हूं । कांग्रेस के दृष्टिकोण को सामने रखकर जिस भावना से इसको लिखा गया है, वह बिलकुल ठीक और सराहनीय है । सभापतियों का परिचय प्राप्त करने के साथ-साथ आशा है, कांग्रेस के कुछ छिपे अंशों पर भी इससे प्रकाश पड़ेगा ।

हमारे राष्ट्रीय साहित्य में ऐसे जितने भी ग्रंथ प्रकाशित हो सकें, उनकी, देश की राष्ट्रीय जागृति के इस युग में, विशेष आवश्यकता है । जीवनी-साहित्य देश के युवक-युवतियों के चरित्र-निर्माण के लिए भी बहुत जरूरी हैं और ऐसा जीविनी-साहित्य जैसा प्रस्तुत पुस्तक में दिया गया है, राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण के लिए विशेष उपयोगी और लाभ-दायक है । इसलिए मैं उसका स्वागत करता हूँ और उसको प्रस्तुत करने-वालों के प्रयत्नों की सफलता चाहता हूँ ।

गुरुदत्त भवन, लाहौर
३०-३-३६

—राजेन्द्रप्रसाद

विषय-सूची

१. उमेशचन्द्र वनर्जी	...	—३
२. वरुद्दीन तैयवजी	...	—७
३. जार्ज यूल	...	—१२
४. फ़िरोजशाह मेहता	...	—१४
५. आनन्द चार्लू	...	—१७
६. अल्फ्रेड वेव	...	—२१
७ रहीमतुल्ला मुहम्मद सयानी	...	—२३
८. चितूर शंकरन नायर	...	—२५
९. आनन्दमोहन वसु	...	—३०
१०. रमेशचन्द्र दत्त	...	—३५
११. नारायण गणेश चन्दावरकर	...	—३९
१२. दीनशा ईदलजी वाचा	...	—४३
१३. सुरेन्द्रनाथ वनर्जी	...	—४८
१४. लालमोहन घोष	...	—५७
१५. हेनरी कॉटन	...	—६१
१६. गोपाल कृष्ण गोखले	...	—६५
१७. दादाभाई नौरोजी	...	—७१
१८. रासविहारी घोष	...	—७७
१९. विलियम वेडरवर्न	...	—८२
२०. विशन नारायण दर	...	—८७
२१. रघुनाथ नृसिंह मुधोलकर	...	—९६
२२. सैयद मुहम्मद वहादुर	...	—१०१

२३. भूपेन्द्रनाथ वसु ... —१०५
२४. सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह ... —१०९
२५. अम्बिकाचरण मजूमदार ... —११३
२६. एनी बेसेण्ट ... —११८
२७. सैयद हसन इमाम ... —१२८
२८. बाल गंगाधर तिलक ... —१३३
२९. मदनमोहन मालवीय ... —१४३
३०. लाजपतराय ... —१५८
३१. चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य ... —१६८
३२. मुहम्मद अजमल खां ... —१८१
३३. चित्तरंजन दास ... —१८६
३४. अबुल कलाम आजाद ... —१९८
३५. मुहम्मद अली ... —२१०
३६. मोहनदास करमचन्द गांधी ... —२१५
३७. सरोजिनी नायडू ... —२५९
३८. श्रीनिवास आयंगर ... —२६५
३९. मुख्तारअहमद अन्सारी ... —२७३
४०. मोतीलाल नेहरू ... —२८२
४१. वल्लभभाई पटेल ... —२९३
४२. राजेन्द्रप्रसाद ... —३०९
४३. जवाहरलाल नेहरू ... —३२३
४४. सुभाषचन्द्र बोस ... —३५२

हमारे राष्ट्रपति

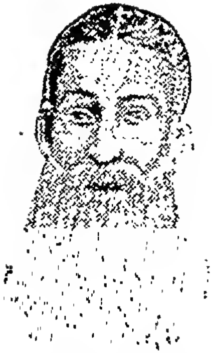

: १ :

उमेशचन्द्र बनर्जी

[१८४४—१९०६]

पहला अधिवेशन, बम्बई—१८८५

आठवाँ अधिवेशन, इलाहाबाद—१८९२

कांग्रेस के सर्वप्रथम सभापतित्व का गौरव जिन्हें प्राप्त हुआ, वह उमेशचन्द्र बनर्जी अपने समय के एक विशिष्ट पुरुष थे। आपका व्यक्तित्व विलक्षण था। दिसम्बर १८४४ में खिदिरपुर (बंगाल) में आपका जन्म हुआ और २१ जुलाई १९०६ को इंग्लैण्ड में देहावसान। स्वदेश-विदेश का यह सम्मिश्रण न केवल आपके जन्म-मरण में बल्कि सारे जीवन-क्रम में मिलता है।

जिस कुटुम्ब में उमेश बाबू का जन्म हुआ, उसे वकीलों का घराना कहा जा सकता है। उमेश बाबू के न केवल पिता, किन्तु पितामह बाबू पीताम्बर बनर्जी भी एटर्नी थे। उमेश अपने पिता बाबू गिरीशचन्द्र बनर्जी के द्वितीय पुत्र थे। ओरियण्टल सेमिनरी और हिन्दू स्कूल में आपकी पढ़ाई हुई, लेकिन १७ वर्ष की उम्र होते-होते जब मैट्रिक की परीक्षा निकट आई तो पिता ने स्कूल छुड़ा दिया। स्कूल छुड़ाकर आप डब्लू० पी० डार्जनिग नामक एटर्नी के यहाँ क्लर्क रक्खे गये। वहाँ आप एक साल से अधिक नहीं रहे और डब्लू० एफ० गैलेण्डर्स के यहाँ चले गये,

जहाँ दस्तावेज़ और दलीलें तैयार करने में काफ़ी प्रवीणता प्राप्त की। उसके वाद १८६४ में रुस्तमजी-जमशेदजी-जीजीभाई द्वारा स्थापित प्रति-स्पर्धा-परीक्षा पास की, जो क़ानूनी पढ़ाई के लिए विलायत जानेवाले हिन्दुस्तानियों को छात्रवृत्ति देने के लिए खोली गई थी। १८६७ में वैरिस्टरी पास करके, भारत लौटकर, १८६८ में कलकत्ता-हाईकोर्ट में एडवोकेट वन गये। हाईकोर्ट में वकालत करनेवाले आपही एक हिन्दुस्तानी वैरिस्टर थे। शीघ्र ही दस हज़ार रुपये माहवार कमाने की आपकी इच्छा पूरी हुई और सव लोगों में आपका मान-सम्मान वढ़ गया। सरकार ने आपको अपना स्थायी पैरोकार (स्टैण्डिग काउन्सल) वनाया और तीन वार हाईकोर्ट का जज वनने के लिए भी कहा, जो आपने स्वीकार नहीं किया।

यह वह समय था जव पश्चिम का मोह हमें चकाचौंध कर रहा था। उस समय वंगाल प्राचीन वातों को हीन समझकर यूरोपियन ढंग अपनाने के लिए पागल हो रहा था। उमेश वावू ने भी धर्म और जाति के वन्धनों की परवा न की और उमेशचन्द्र से डब्लू० सी० वन गये। वेष-भूषा, रहन-सहन और आचार-विचार में आप पूरे अंग्रेज़ थे। शेकहैण्ड से लेकर सिगार जलाने तक आप चप्पा-चप्पा अंग्रेज़ मालूम पड़ते थे। इतना ही नहीं, वल्कि इंग्लैण्ड को आपनें अपना वैसा ही घर बना लिया था, जैसा कि हिन्दुस्तान आपका घर था। साल का आधा-आधा हिस्सा दोनों जगह विताते थे, और पैदा हिन्दुस्तान में हुए तो मरने के लिए अपने आखिरी दिनों में आप इंग्लैण्ड जा वसे थे। आपके वच्चों का पालन-पोषण इंग्लैण्ड में हुआ, और कुछ ने तो विवाह-सम्वन्ध भी यूरोपियन महिलाओं से ही किये। जो लोग ऐसे विचारों के नहीं थे, उनसे आपको कोई नफ़रत या चिढ़ न थी। समाज-सुधार हुए विना राजनैतिक उत्थान नहीं

हो सकता, ऐसा भी आप नहीं मानते थे। आपका कहना था कि "हमारे यहाँ विधवायें अपना विवाह नहीं करतीं, लड़कियों का विवाह और देशों की वनिस्वत कम उम्र में होता है, हमारी पत्नियाँ और लड़कियाँ हमारे साथ यार-दोस्तों के यहाँ घूमती नहीं फिरतीं, हम अपनी लड़कियों को आक्सफ़ोर्ड और केम्ब्रिज नहीं भेजते, तो क्या इसलिए हम राजनैतिक सुधारों के नाक़ाबिल हैं ?"

१८८० में आप कलकत्ता यूनिवरसिटी के 'फ़ैलो' हुए और उसकी ओर से बंगाल-कौंसिल के सदस्य चुने गये। कौंसिल में देश-हित के लिए सदा प्रयत्न करते रहे। एकाधिक वार वहाँपर आपको सफलता भी हुई। ब्रिटिश सरकार में आपका अटूट विश्वास था।

लगभग १८ वर्ष की ही आयु में आपका ध्यान देश की ओर आकर्पित होगया था। उसी समय आपने "वंगाली" को जन्म दिया, जो उस समय वंगाल का बहुत प्रभावशाली, ज़ोरदार और प्रमुख पत्र था। काँग्रेस के साथ, काँग्रेस के जन्म से अपनी मृत्यु तक, आपका अटूट सम्बन्ध रहा। सारी उम्र आप काँग्रेस के ज़ोरदार समर्थक रहे और एक सरपरस्त की तरह काँग्रेस की गति-विधि को सदा सूक्ष्मता से देखते रहे। १८८५ में जब बम्बई में सर्वप्रथम काँग्रेस हुई, तो सर्वसम्मति से आप ही उसके सभापति चुने गये; और पहले ही अधिवेशन में आपने काँग्रेस के देश की प्रातिनिधिक संस्था होने का दावा पेश किया, जिसका आधार आपकी दृष्टि में विचारों, भावनाओं और आवश्यकताओं की एकता थी। दूसरा अधिवेशन कलकत्ता में हुआ और उसकी सफलता का मुख्य श्रेय अपको ही था। तीसरे अधिवेशन में सैनिक कालेजों के प्रस्ताव पर जब बहुत विरोध उठा तो सभापति बदरुद्दीन तैयबजी के अनुरोध पर आपने 'नेटिव आफ़ इण्डिया' शब्द की व्याख्या की और उसमें यूरेशियन, ईस्ट-

इण्डियन तथा डोमीसाइल्ड यूरोपियन को भी शामिल बताया। अगली काँग्रेस के वक़्त आप इंग्लैण्ड में थे, वहाँ आपने हिन्दुस्तान के प्रति ब्रिटिश जनता की सहानुभूति पैदा करने का खूब यत्न किया। १८९२ (इलाहाबाद) में आपको फिर सभापति बनाकर आपकी सेवाओं का सम्मान किया गया। १९०२ में आप इंग्लैण्ड चले गये। वहाँ क्रायडन में शानदार मकान बनाया और प्रिवी-कौंसिल में वकालत करने लगे। काँग्रेस की ब्रिटिश कमिटी के द्वारा फिर भी आप निरन्तर काँग्रेस का काम करते रहे। आपकी इच्छा थी कि दादाभाई की तरह आप भी ब्रिटिश पार्लमेण्ट के सदस्य बनें और पार्लमेण्ट के द्वारा देश-हित का काम करें। लेकिन, जब वाल्टथम्सरी के निर्वाचन-क्षेत्र में आप इसके लिए तैयारी कर रहे थे, अचानक आपकी आँख में तकलीफ़ शुरू हुई। उससे आपकी हालत बहुत नाज़ुक होगई और २९ जुलाई १९०६ को आपका स्वर्गवास होगया। गोल्डर की भूमि पर आपका अन्तिम संस्कार किया गया। दादाभाई नौरोजी ने एक भावपूर्ण वक्तृता में आपको श्रद्धांजलि अर्पित की। उन्होंने कहा, "वह हमारे बीच में नहीं रहे, पर हम उन्हें या उन्होंने जो-कुछ देश के लिए किया उसे कभी नहीं भूल सकते।"

: २ :

बदरुद्दीन तैयबजी

[१८४४—१९०६]

तीसरा अधिवेशन, मदरास—१८८७

बदरुद्दीन तैयबजी ८ अक्तूबर १८४४ को एक सम्मानित अरबी घराने में, जो बहुत समय से बम्बई आ बसा था, पैदा हुए थे। आपके पिता तैयबजी भाई मियाँ एक समृद्ध व्यापारी और सुरुचिवाले सुसंस्कृत व्यक्ति थे।

बचपन में उर्दू-फ़ारसी की शिक्षा आपने दादा मखरा के मदरसे में प्राप्त की। फिर एलफ़िस्टन-इन्सटीटयूशन (अब कालेज) में भरती हुए, पर वहाँ ज्यादा नहीं रहे। आँख के इलाज के लिए पिता ने आपको फ्रांस भेज दिया, वहाँसे इंग्लैण्ड गये और लन्दन के न्यूबरी हाईपार्क कालेज में भरती हुए। वहीं लन्दन-यूनिवरसिटी से मैट्रिक पास किया। तन्दुरुस्ती खराब होने के कारण उसके बाद शीघ्र ही हिन्दुस्तान लौट आये। एक साल यहाँ रहकर १८६५ में फिर इंग्लैण्ड गये और अप्रैल १८६७ में बैरिस्टरी पास की। नवम्बर १८६७ में भारत लौटे और दिसम्बर में बम्बई-हाईकोर्ट के एडवोकेट बन गये। यहीं आपके भाई कमरुद्दीन तैयबजी एटर्नी थे, जिससे आपको बड़ी सुविधा रही। अपनी योग्यता से, खासकर जिरह में, आपने बहुत ख्याति प्राप्त की।

वैरिस्टरी शुरू करने के वाद पहले दस वर्ष तो आप अपने धन्धे को वढ़ाने में लगे रहे और खूव यश और धन अर्जन किया। दूसरे दस वर्ष नई जिम्मेदारियों के साथ शुरू हुए। मैंचेस्टर से आनेवाले विलायती कपड़े पर से आयात-कर उठाने के विरुद्ध हुए आन्दोलन में वम्वई के अन्य प्रमुख नागरिकों के साथ आप भी सम्मिलित हुए। इस सिलसिले में आपने ऐसा सुन्दर भाषण दिया, कि उसकी चारों ओर प्रशंसा हुई।

१८८२ में वम्वई के तत्कालीन गवर्नर सर जैम्स फ़र्ग्युसन ने आपको वम्वई-कौंसिल का अतिरिक्त-सदस्य नियुक्त किया। वहाँ स्थानिक-संस्थाओं सम्वन्धी (बॉम्वे लोकल वोर्ड्स एण्ड म्यूनिसिपैलिटीज़) विलों की वहस में आपने प्रमुख भाग लिया। वारीकी की दलीलों, विचारपूर्ण निर्णय, स्पष्ट विवेचन और प्रभावकारी वक्तृत्व में आपका सिक्का जम गया—यहाँतक कि कौंसिल के अध्यक्ष की हैसियत से सर जैम्स ने आपके भाषणों की प्रशंसा करते हुए कहा, कि "व्रिटिश कामन-सभा में वे होते तो वहाँ भी उन्हें वड़े ध्यान के साथ सुना जाता।" वम्वई के श्रोताओं में आप इतनें लोकप्रिय थे कि हरेक सभा में लोग आपका भाषण सुनने के लिए उत्सुक रहते थे। उन दिनों के आपके कई भाषण तो स्मरणीय हैं।

आपकी सार्वजनिक सेवाओं से प्रसन्न होकर १८८७ में देश ने अपनी राष्ट्रीय महासभा के मदरास में हुए तीसरे अधिवेशन का आपको सभापति चुना। उस समय आपनें जो भाषण दिया, उसने आपके वक्तृत्व की धाक वैठा दी। वम्वई में आपके कहने पर इस काम के लिए एक समिति वनाई गई कि काँग्रेस में विचारार्थ जो वहुत-से प्रस्ताव आवें, उनपर विचार करके काँग्रेस का कार्यक्रम (अजेण्डा) निश्चित किया जाया करे। इस समिति को वाद में वननेवाली विषय-समिति का पूर्व-रूप कहना

चाहिए। फिर बम्बई में १९०४ में होनेवाले बीसवें अधिवेशन तक आप कांग्रेस सम्बन्धी किसी हलचल में नहीं दीख पड़े, क्योंकि इस बीच आप बम्बई-हाईकोर्ट के जज होगये थे,पर रहे उनदिनों में भी आप सदा काँग्रेस के हामी। १८८७ में जब आप काँग्रेस के सभापति हुए, तब बम्बई के अंजुमन-ए-इस्लाम के भी सदस्य थे और काँग्रेस के सिद्धान्तों व राजनीति को अंगीकार करके भी आपने उसे छोड़ नहीं दिया। इससे आपने यह सिद्ध कर दिया कि मुसलमानों के काँग्रेस में शामिल होने में कोई बाधा नहीं है। १९०३ में अ० भा० मुसलिम-शिक्षा-परिषद् के सभापति की हैसियत से तो आपने साफ़ ही कह दिया था, कि "ऐसी किसी संस्था की कार्रवाई में मैं भाग नहीं ले सकता, जो किसी भी तरह काँग्रेस के विरुद्ध हो या विरुद्ध प्रतीत होती हो।" आपका मत था कि सरकार भी चाहे खुलेआम काँग्रेस से अपनी सहानुभूति न दरसाये, पर दिल में वस्तुतः उसके और उसके सदस्यों के लिए बड़ा ऊँचा ख़याल रखती है और समय-समय उसके प्रस्तावों पर अमल भी करती रहती है। आप सोलह-आना नरम विचारों के थे और कहा करते थे कि हमें अपने भाषणों में बहुत सतर्क रहना चाहिए। एकबार तो आपने यहाँतक कह डाला था, कि "हमारे देशवासियोंने उच्छृंखलता और स्वतन्त्रता के भेद को पूरी तरह नहीं समझा है और यह वे नहीं जानते कि स्वतन्त्रता में जहाँ सुविधायें होती हैं वहाँ उससे ज़िम्मेदारियाँ भी कुछ कम नहीं आतीं।"

भारतीय मुसलमानों में समाज-सुधार-आन्दोलन के आप अग्रणी थे। इस बात की आपने शिकायत की थी कि मुसलमान ही नहीं, बल्कि हिन्दू-मुसलमान सभी हिन्दुस्तानी समाज-सुधार से राजनीति पर ज्यादा ध्यान देते हैं। एक बार आपने कहा था कि "मुझे भय है कि तरुण-भारत ने राजनीति पर तो बहुत ज्यादा ध्यान दिया है, शिक्षा और समाज-सुधार

पर वहुत कम। मैं तो उन लोगों में से हूँ जो यह समझते हैं कि किसी एक ही दिशा में प्रयत्न करने से हमारी उन्नति और प्रगति नहीं होगी, वल्कि विभिन्न दिशाओं में प्रयत्न करना होगा। इसलिए राजनैतिक स्थिति के साथ-साथ हमें उतना ही अधिक अपनी सामाजिक और शिक्षा-सम्वन्धी स्थिति भी सुधारते जाना चाहिए।" स्वयं अपने कुटुम्व से आपने समाज-सुधार का आदर्श उपस्थित किया था। वह यह कि अपनी लड़कियों को पढ़ने के लिए इंग्लैण्ड भेजा। पर, मुसलमानों के लिए सर्वोत्तम काम तो आपने वम्वई के अंजुमन-ए-इस्लाम के द्वारा किया, जिसके आप पहले तो मन्त्री और फिर सभापति रहे। मुसलमानों में पश्चिमी शिक्षा फैलाने में अंजुमन ने जो काम किया, उसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह असंदिग्ध है कि उसका अधिकांश श्रेय आपको ही है।

१८९५ में सरकार ने आपको वम्वई-हाईकोर्ट का जज वनाया और इस काम को भी आपने वड़ी आज़ादी और अच्छाई के साथ सम्पादन किया। लोकमान्य तिलक के पहले मुकदमे में उन्हें जमानत पर आपने ही छोड़ा था। भाषा के प्रवाह तथा ज़ोर के लिए आपके फैसले मशहूर थे, जो वहुत विचार और अध्ययन के परिणाम होते थे।

१९०३ में जव आप अखिल-भारतीय मुसलिम-शिक्षा-परिषद् के सभापति हुए थे, तव अपने भाषण में परदा-प्रथा के विरुद्ध भी आवाज़ उठाई थी। १९०६ में लन्दन में अलीगढ़-कालेज का उल्लेख करते हुए, जिसके कि आप शुभचिन्तक और समर्थक थे, आपने स्त्री-शिक्षा की ओर उसका ध्यान दिलाया और स्त्रियों के वारे में उत्तरी मुसलमानों को अपने दक्षिणी भाइयों से सवक़ लेने की सलाह दी। शिक्षा-प्रेम आपका धर्म-प्रेम से भी वड़ा था। लन्दन में ईस्ट-इण्डिया असोसियेशन के सम्मुख भाषण करते हुए आपने कहा था कि "मुसलमानों में यह वड़ी वुराई है कि जव

कोई मालदार मरता है और उसका कोई नज़दीकी रिश्तेदार नहीं होता तो वह अपनी सम्पत्ति फ़कीरों को खिलाने, पुराने ढंग के तालाब बनाने, मक्का की तीर्थ-यात्रा करवाने या क़ुरान के पन्ने या ऐसी ही चीज़ें अमुक बार पढ़वाने के लिए वसीयत कर जाता है, जिससे देश का कोई भला नहीं होता। नई सन्तति जब बूढ़ी होगी, तो बजाय इन बातों के शिक्षा के लिए अपना धन खर्च करेगी।"

काँग्रेस के १९०४ के बीसवें अधिवेशन में आपने सरकारी नौकरियों में भारतीयों की नियुक्ति सम्बन्धी प्रस्ताव की बहस में भाग लिया। १९०६ में आपको आँख की पुरानी शिकायत फिर हुई, जिसका इलाज कराने के लिए इंग्लैण्ड गये। वहाँ कुछ ही महीनों में बहुत तेज़ी से आपकी तन्दुरुस्ती सुधरी और वहाँ आपने सभाओं में सोत्साह भाग लेना शुरू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि हृदय में भी खराबी पैदा होगई, जिसने उग्र होकर १९ अगस्त १९०६ को आपको इस संसार से ही उठा लिया। काँग्रेस की ब्रिटिश कमिटी ने, दादाभाई नौरोजी के प्रस्ताव और गोपालकृष्ण गोखले के समर्थन पर आपके निधन पर शोक-प्रस्ताव पास किया। २२ अगस्त को लन्दन-स्थित तुर्की राजदूत की अध्यक्षता में आपकी स्मृति में सभा हुई, जिसमें भाषण करते हुए मि० यूसुफअली आई० सी० एस० ने ठीक ही कहा था कि "कोई और मुसलमान हिन्दुओं का इतना प्रीतिभाजन नहीं हुआ, जितने कि बदरुद्दीन तैयबजी हुए हैं।"

: ३ :

जार्ज यूल

चौथा अधिवेशन

इलाहाबाद—१८८८

जार्ज यूल पहले अंग्रेज़ थे, जिनको भारत की महान् राष्ट्रीय संस्था के सभापति के सर्वोच्च सम्मान के आसन पर विठाया गया। उस समय सरकार की कॉंग्रेस के साथ सहानुभूति नहीं रही थी और सरकारी अधिकारी कॉंग्रेस को सन्देह की दृष्टि से देखने लग गये थे। संयुक्तप्रांत के लेफ्टिनैण्ट-गवर्नर आकलैण्ड कॉलविन कॉंग्रेस से सहानुभूति रखने को आग से खेलने की उपमा दे चुके थे। ऐसे समय जार्ज यूल का अंग्रेज़ होकर सवसे पहले कॉंग्रेस का सभापतित्व स्वीकार करना असाधारण वात थी।

जार्ज यूल कलकत्ता में व्यापार करनेवाली एक प्रसिद्ध अंग्रेज़ी फ़र्म के प्रमुख साझीदार थे। शुरू से ही भारतीय विषयों में आप वहुत रुचि रखते थे। आप भारत और इंग्लैण्ड दोनों देशों में सरकारी अधिकारियों के सामने भारतीय प्रश्नों को उपस्थित करते रहते थे। आपका कहना था कि भारतवर्ष का शासन उस योग्यता और उत्तमता से नहीं होता, जिससे होना चाहिए। आपने अंग्रेज़ जनता को यह समझाने का वहुत

प्रयत्न किया कि भारतीयों और उनके हितों की उपेक्षा से काम नहीं चलेगा ।

भारत के सम्बन्ध में लगातार प्रचार और सेवाओं के उपलक्ष्य में आपको इलाहाबाद में १८८८ में काँग्रेस के चौथे अधिवेशन का सभापति बनाकर सम्मानित किया गया । वस्तुतः भारत के साथ आपकी हार्दिक सहानुभूति थी । जिस वर्ष इलाहाबाद में आप सभापति हुए थे, वह वर्ष काँग्रेस के इतिहास में विशेष महत्व रखता है । सरकार ने इसी वर्ष से काँग्रेस के प्रति विरोधी भाव दिखाना शुरू किया था । उसने पण्डाल के लिए स्थान तक देने से इन्कार कर दिया था । मुसलमानों को काँग्रेस से अलग रखने की नीति का श्रीगणेश भी इसी वर्ष से हुआ । और भी अनेक रुकावटें डाली गई थीं । लेकिन, जार्ज यूल साहब ने सरकार की ओर से होनेवाली इन सब बाधाओं की उपेक्षा की और काँग्रेस का वह अधिवेशन सफलता के साथ समाप्त हुआ ।

इस वर्ष के बाद भी आप अन्त तक काँग्रेस के कार्यों में रुचि रखते रहे । १८८९ में ही आपने इंग्लैण्ड में काँग्रेस-शाखा के कार्य-संचालन में प्रमुखता से भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था । १८९० और १८९१ के अधिवेशनों में आपका नामोल्लेख कर आपके सुन्दर कार्यों के लिए आपको धन्यवाद दिया गया था । अभी आप और भी भारत की सेवा करते, लेकिन १८९२ में ही आपका असामयिक देहावसान होगया । इस नश्वर शरीर को छोड़कर स्वर्ग सिधारनेवाले काँग्रेस के सभापतियों में भी आपका पहला स्थान है ।

: ४ :

फ़िरोज़शाह मेहता

[१८४५—१९१५]

छठा अधिवेशन, कलकत्ता—१८९०

सर फ़िरोज़शाह मेहता उन व्यक्तियों में से हैं, जिनका हाथ काँग्रेस की स्थापना में था और जिनका कांग्रेस की नीति और कार्यक्रम के निर्माण में बहुत प्रमुख भाग रहा है। आप बहुत मेधावी, ऊँचे दर्जे के वक्ता और खूब कमाने व खुले हाथों खर्च करनेवाले शाही आदमी थे।

४ अगस्त १८४५ को बम्बई के एक पारसी परिवार में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता एक बड़े भारी व्यापारी थे। बुद्धि आपकी बचपन से ही बड़ी कुशाग्र थी। १८६१ में मैट्रिक किया, १८६४ में बी० ए० हुए और छः मास बाद ही एम० ए० भी होगये। फिर बैरिस्टरी के लिए इंग्लैण्ड गये और तीन साल बाद बैरिस्टर होकर बम्बई लौटे। थोड़े ही दिनों में आपकी बैरिस्टरी चमक उठी। फ़ौजदारी के मामलों में आप उच्च श्रेणी के बैरिस्टर गिने जाने लगे और आमदनी इतनी बढ़ गई, जितनी कि बम्बई तो क्या, कहते हैं कि हिन्दुस्तान-भर में और किसी वकील-बैरिस्टर की नहीं थी।

इंग्लैण्ड में जब आप पढ़ते थे, तब दादाभाई नौरोजी का आपपर प्रभाव पड़ा, जिससे राजनैतिक कार्यों के प्रति रुचि पैदा हुई। वहीं

उमेशचन्द्र बनर्जी और मनमोहन घोष से मित्रता हुई, जिनके उद्योग से लन्दन लिटरेरी सोसायटी स्थापित हुई थी, जो बाद में ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन में परिणत होगई। आपने भी उसमें दिलचस्पी ली और उसमें भारतीय शिक्षा पर एक निबन्ध पढ़ा, जिसकी बहुत प्रशंसा हुई।

सार्वजनिक कार्यों में रुचि तो इंग्लैण्ड में ही पैदा होगई थी, किन्तु सार्वजनिक जीवन का श्रीगणेश १८६९ से हुआ, जबकि दादाभाई नौरोजी को भेंट किये जाने के लिए २०,०००) संग्रह किये गये थे। उनके संग्रह करने में आपने विशेष भाग लिया। १८७२ में आप बम्बई कारपोरेशन के सदस्य चुने गये और ३५ बरस तक बराबर चुने जाते रहे। तीन बार उसके अध्यक्ष भी चुने गये।

तैलंग और तैयबजी के साथ मिलकर आपने बाम्बे प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन की स्थापना की। १८८६ में बम्बई-कौंसिल के सदस्य बनाये गये। १८९२ में जनता द्वारा चुने जाकर उसमें गये और बाद में भी कई बार चुने गये। कौंसिल में प्रकट किये जानेवाले आपके विचार निर्भीक, प्रौढ़ और काम की बातों से पूर्ण होते थे। लैण्डरेवेन्यू कोड एमेण्डमेण्ट बिल का वहाँ आपने कसकर विरोध किया था और जब उसका कोई परिणाम न हुआ, तो ग़ैर-सरकारी सदस्यों के साथ कौंसिल से 'वाक-आउट' कर दिया था। १८९४ में बड़ी (भारतीय) कौंसिल के सदस्य चुने गये और तीन वर्ष तक वहाँ रहे।

बॉम्बे-यूनिवरसिटी की सिनेट और सिण्डीकेट के भी आप सदस्य थे। यूनिवरसिटी-बिल का आपने तीव्र विरोध किया था। कई कमीशनों के सामने गवाही दी और कई शिष्ट-मण्डलों व कमिटियों के सदस्य हुए।

काँग्रेस के साथ आपका सम्पर्क उसके प्रारम्भ से ही रहा। उसके

संस्थापकों म से एक आप भी थे। १८८५ में वम्बई में काँग्रेस का जो सर्वप्रथम अधिवेशन हुआ, उसके आप स्वागताध्यक्ष थे। वम्बई में १८८९ में होनेवाले पाँचवें और १९०४ में होनेवाले वीसवें अधिवेशनों के भी आप ही स्वागताध्यक्ष थे। आर्थिक कठिनाई उत्पन्न होने पर आप काँग्रेस की आर्थिक सहायता वरावर करते रहते थे। काँग्रेस का कट्टर समर्थक वम्वई का अंग्रेज़ी दैनिक 'वॉम्वे क्रानिकल' आपका ही निकाला हुआ है, जिसका आज भी राष्ट्रीय जागृति में कुछ कम भाग नहीं है। १८९० में कलकत्ता में काँग्रेस का जो छठा अधिवेशन हुआ, उसका राष्ट्र ने आपको सभापति वनाकर आपकी सेवाओं का सम्मान किया। लाहौर में १९०९ में होनेवाले चौवीसवें अधिवेशन के भी सभापति आप ही चुने गये थे, परन्तु ठीक छः दिन पहले आपने अचानक इनकार कर दिया और तव पं० मदनमोहन मालवीय को वह सम्मान दिया गया। कहते हैं, सूरत की काँग्रेस (१९०७) में आपने नरमदल की ओर से काँग्रेस के कार्य में कुछ दिलचस्पी ली थी, उसके वाद से फिर आप दृष्टि से विलकुल ओझल हो गये। कुछ लोग सूरत-काँग्रेस के भंग होने का दोष आपके ही सिर मढ़ते हैं और यह सचमुच खेद की वात है कि वहाँ नरम-गरम दलों के वीच जो खाई खुद गई थी, वह आपके जीवन-काल में नहीं भर सकी। लखनऊ में १९१६ की काँग्रेस में दोनों दलों में मेल हुआ, पर आप उससे पहले ५ नवम्वर को ही स्वर्ग सिधार गये थे!

निस्सन्देह आप उच्चकोटि के व्यक्ति थे और जनता व सरकार दोनों ही में आपने प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। जहाँ एक ओर आप काँग्रेस के सभापति-पद तक पहुँचे थे, वहाँ दूसरी ओर सरकार ने भी आपको सर, सी० आई० ई० और के० सी० आई० ई० की उपाधियों से विभूषित किया था।

: ५ :

आनन्द चार्लू

सातवाँ अधिवेशन

नागपुर—१८९१

"हमने जिनको अंग्रेजी पढ़ना-लिखना सिखाया है, वे हमारे प्रति अकृतज्ञता के भाव प्रकट करने लगे हैं और भारत में ब्रिटिशशासन की जड़ों पर ही उन्होंने कुठाराघात करना शुरू कर दिया है। जिनको भूतकाल में कभी बोलने-लिखने या करने की कुछ भी स्वतन्त्रता नहीं थी, अब वे ब्रिटिश प्रजा होकर अपने अधिकारों के बारे में बहुत बढ़-चढ़कर बातें करने लगे हैं। ऐसा करनेवालों में एक सज्जन आनन्द चार्लू हैं, जो कि कौंसिल के सभासद हैं।" ये शब्द थे, जो पार्लमेण्ट में उस समय के भारत-मन्त्री जार्ज हैमिल्टन ने दिसम्बर १८९८ में कहे थे। आनन्द चार्लू वस्तुतः निर्भीक, साहसी, स्पष्टवादी, खरे देशभक्त और पक्के राष्ट्रवादी थे। सरकार का विरोध और उसकी कड़ी और तीखी आलोचना करनेवालों में पहले थे। काँग्रेस का जन्म होने से भी पहले आपने सार्वजनिक क्षेत्र में काम शुरू कर दिया था और उसकी स्थापना में आपका प्रमुख हाथ था। आयुपर्यन्त उसके अधिवेशनों में सम्मिलित हो, उसके सब कार्य्यों में विशेष उत्साह के साथ आप भाग लेते रहे थे।

आपका जन्म एक सम्मानित वैष्णव परिवार में चिंगलपेट ज़िले के

पनाप्पक्कम गाँव में १८४३ में हुआ था। आपके पिता पहले एक दफ्तर में नौकर थे, वाद में सरिश्तेदार होगये। पिता का शीघ्र देहान्त हो जाने से शिक्षण का सब भार माता पर पड़ा। शिक्षा के लिए ही माता के साथ मदरास आने पर पिता के एक मित्र रंगनायम् शास्त्री से आपका परिचय होगया और उनकी सहायता से प्रेसिडेंसी कालेज में आपने बी० ए० पास किया। नवद्वीप के पण्डितों ने आपको संस्कृत की योग्यता के लिए 'विद्याविनोद' और 'विशारद' की पदवियाँ प्रदान की थीं। तेलगू के भी आप विद्वान् थे। पचायप्पा-कालेज में प्रोफ़ेसर रहते हुए १८६९ में वकालत पास की और हाईकोर्ट में श्री वेंकटपतिराव के शागिर्द होकर वकालत शुरू की। हाज़िरजवाबी, धाराप्रवाही भाषण, प्रत्युत्पन्न-मति और जिरह में कुशाग्र-बुद्धि होने से वकालत को चमकने में अधिक समय नहीं लगा। देश-सेवा के कार्य्यों में आपने उसी समय से दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी थी। १८७४ में आपने म्युनिसिपल बिल का विरोध इस योग्यता के साथ किया कि सारे प्रान्त में आपका नाम हो गया। १८७८ के अन्त में आपके उद्योग से 'मदरास नेटिव एसोसियेशन' क़ायम हुआ, जिसके द्वारा दो वर्षों तक आन्दोलन का कार्य आपने बहुत जोरों के साथ किया। मदरास के प्रमुख दैनिक 'हिन्दू' के संचालन में आपने वीरराघवाचार्य का पूरा हाथ बँटाया। मदरास की प्रसिद्ध महाजन-सभा की आपने स्थापना की और कई वर्षों तक उसके मन्त्री रहे। काँग्रेस की स्थापना से पहले मदरास में दो सम्मेलनों का आयोजन करके आपने व्यवस्थापिका सभाओं की स्थापना के लिए आन्दोलन किया। अगस्त १८८४ में आप मदरास म्यूनिसिपैलिटी के सभासद चुने गये और बीस वर्ष तक उसके सभासद रहे। १८९५ में इम्पीरियल लेजिस्लेटिव-कौंसिल के सभासद चुने गये और १९०३ तक बराबर चुने जाते रहे। वहाँ आपके भाषण

बहुत स्पष्ट, निर्भीक और जोरदार होते थे। फरवरी १८९६ में आपने कहा था कि सरकार लंकाशायर वालों की चिल्लाहट से दब रही है और अपने कर्तव्य की उपेक्षा कर रही है। १८९८ में ताजीरातहिन्द में राज-द्रोह की धारा शामिल करने का विरोध करके देशवासियों के भाषण और लेखन की स्वतंत्रता के लिए बड़ी दृढ़ता के साथ आपने आवाज़ उठाई थी।

१८८५ की पहली काँग्रेस में भारत-मंत्री की कौंसिल को तोड़ देने का आपने प्रस्ताव पेश किया। १८९१ में पब्लिक-सर्विस-कमीशन की रिपोर्ट पर काँग्रेस की ओर से असन्तोष-सूचक वक्तव्य लिखने को बनाई गई कमिटी का आपको सभासद चुना गया था। उसी वर्ष की काँग्रेस में कौंसिलों सम्बन्धी बिल की स्वीकृत के प्रस्ताव पर बोलते हुए जनता को प्रतिनिधि चुनने का अधिकार न दिये जाने पर आपने असन्तोष प्रकट किया था। १८९६ में एजूकेशन-सर्विस की योजना को पुनः संगठित करके ऊँचे पदों से भारतीयों को अलग करने का आपने विरोध किया था। १९०६ में स्वदेशी के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए आपने श्रीमानों से अपील की थी कि वे अपना संगठन बनाकर स्वदेशी व्यवसाय की इसलिए आर्थिक सहायता किया करें कि सरकार से वैसी सहायता की आशा नहीं की जा सकती। १८९१ में नागपुर में हुई काँग्रेस के आप सभापति चुने गये। आपका भाषण बहुत महत्वपूर्ण था। उसमें इंग्लैण्ड में आन्दोलन और लन्दन में काँग्रेस का अधिवेशन करने पर आपने ज़ोर दिया था। इसी भाषण में आपने भारतमन्त्री की कौंसिल को "भारत से पेंशन पानेवाले शासकों का कुलीनतन्त्र" कहा था। मदुरा में हुई मदरास-प्रान्तिक-परिषद के आप सभापति चुने गये थे।

१८८७ में आपको 'रावबहादुर' और १८९७ में 'सी० आई० ई०' के ख़िताब दिये गये थे।

तेलगू में आपने कविता और नाटक लिखे हैं। नाटयकला को सुधारने और उत्तेजन देने के लिए आपने विद्वान-मनोरंजिनी-सभा की स्थापना की थी।

रानडे, रघुनाथराव और भण्डारकर आदि के आप समकक्ष सुधारक थे। यूरोप-यात्रा का निरन्तर समर्थन करते रहते थे। विवाह-कानून और उसके सुधार पर आपने १८८६ में एक पुस्तक लिखी थी। शास्त्रों की अपेक्षा आप सदसद्-विवेकवुद्धि, समय की प्रगति और अपनी आवश्यकता को ही सव व्यवहार का आधार वनाने के पक्षपाती थे। मठों के सुधार पर आप वहुत ज़ोर देते थे। व्यवहार में कट्टरपन्थी न होते हुए भी धार्मिक-भावना-प्रधान व्यक्ति थे।

दक्षिण-भारत के राजनैतिक गगन-मण्डल में चौथाई सदी तक अपनी दिव्य ज्योति के साथ सदा चमकते रहनेवाला यह नक्षत्र १९०८ की २८ नवम्वर को अस्त होगया।

: ६ :

अलफ्रेड वेब

दसवाँ अधिवेशन

मदरास—१८९४

पार्लमेण्ट के जिन अंग्रेज सदस्यों ने भारत के शासन-सुधार-आन्दोलन में भाग लिया, उनमें अलफ्रेड वेब का भी एक स्थान है। आप आयर-निवासी थे। आयर पर भी भारत की तरह इंग्लैण्ड का शासन था और आयर सदियों से उसके शासन से मुक्त होने के लिए जीतोड़ परिश्रम कर रहा था। इस दृष्टि से भारत और आयर की समस्यायें एक-समान थीं। इसलिए स्वभावतः आप भारत की उन्नति और स्वाधीनता के मामलों में रुचि रखते थे।

काँग्रेस के प्रारम्भिक काल में दादाभाई नौरोजी आदि नेताओं का यह विश्वास था कि ब्रिटिश जनता और ब्रिटिश सरकार की न्याय-बुद्धि को अपील करने से भारत का कल्याण होसकता है। इसलिए उन दिनों अधिकतर आन्दोलन इंग्लैण्ड में होता, पार्लमेण्ट के सदस्यों को भारतीय पक्ष का समर्थन करने के लिए प्रेरित किया जाता और उनकी सहानुभूति प्राप्त करने की कोशिश की जाती थी। अलफ्रेड वेब भी भारतीय मामलों में दिलचस्पी लेते थे। १८९४ में आपको काँग्रेस का सभापतित्व करनेके लिए निमन्त्रित किया गया। इसके बाद आयरिश मामलों में ही ज्यादा उलझे

रहने से आप भारतीय मामलों में सक्रिय दिलचस्पी न ले सके, फिर भी यथासम्भव सहयोग देते रहे। सबसे पहली आल इण्डिया काँग्रेस कमिटी सन् १९०० में बनी थी, उसके आप सदस्य थे। लन्दन की काँग्रेस-शाखा में भी आप अपनी आयु के अन्तिम दिन तक दिलचस्पी लेते रहे थे। १९०८ में आपका देहावसान हुआ।

आपके जीवन के सम्बन्ध में बहुत प्रयत्न करने पर भी कुछ पता नहीं लगाया जा सका। काँग्रेस के सम्बन्ध में उपलब्ध साहित्य में कहीं आपका उल्लेख नहीं मिलता। आज से ३० साल पहले लिखी गई पुस्तकों में भी आपका कुछ परिचय नहीं मिला। सम्भवतः इसीसे डा० पट्टाभि सीतारामैया भी काँग्रेस के इतिहास में कहीं एक बार भी आपका उल्लेख नहीं कर सके हैं। यह तो मानना ही होगा कि आप सच्चे भारत-हितैषी थे। भारत के अभ्युदय की कामना और भावना आपके हृदय में पूरी तरह समाई हुई थी।

: ७ :

रहीमतुल्ला मुहम्मद सयानी

[१८८४—१९०२]

बारहवाँ अधिवेशन, कलकत्ता—१८९६

रहीमतुल्ला मुहम्मद सयानी उन थोड़े-से लोगों में से थे, जिनके व्यक्तित्व, अध्यवसाय, उदारता, विद्वत्ता और जाति व देश की सेवाओं के कारण न केवल सब बातों में पिछड़ी हुई खोजा जाति में ही क्रान्ति होगई, किन्तु राष्ट्र की सेवा भी कुछ कम नहीं हुई।

आपका जन्म ५ अप्रैल १८४७ को बम्बई में हुआ था। आपके दादा कच्छ से बम्बई आये थे। आपने जब बम्बई में पढ़ाई शुरू की, तब शिक्षा की ओर खोजा मुसलमानों की बिलकुल भी प्रवृत्ति न थी। शिक्षा से उन्हें यहाँतक घृणा थी कि एकबार जब आप स्कूल जा रहे थे, कुछ खोजा 'नास्तिक ! नास्तिक !' कहकर आपके पीछे दौड़े और आपपर कुछ पत्थर भी फेंके। इसी तरह एक बार चश्मा लगाने पर आपको तंग किया गया था। एलफ़िन्स्टन-स्कूल से मैट्रिक पास करके आप उसी कालेज में दाखिल होगये। १८६६ में जब आपने एम० ए० की परीक्षा दी, तब ही नहीं, किन्तु उसके पच्चीस साल बाद तक भी किसी मुसलमान खोजा ने एम० ए० नहीं किया था। इससे आपका विद्या-प्रेम प्रकट होता है। १८७० में क़ानून की परीक्षा देकर आप वकालत करने लगे। १८७८ में सालिसिटर होगये। आप वकालत के साथ-साथ कई प्रसिद्ध कम्पनियों

में सालिसिटर का काम भी करते रहे। वम्वई के नागरिक-जीवन में आप खूब दिलचस्पी लेते थे। १८७६ में आप वम्वई-कारपोरेशन के सदस्य चुने गये। तबसे आयु-पर्यन्त आप उसके सदस्य चुने जाते रहे। वम्वई की जनता के हित-कार्यों में आप काफ़ी दिलचस्पी लेते थे। १८८८ में आप कारपोरेशन के अध्यक्ष चुने गये। १८८८ में ही आप वम्वई-कौंसिल के सदस्य भी नियुक्त हुए। कौंसिल और कारपोरेशन के कार्यों के अलावा वम्वई के विभिन्न सार्वजनिक क्षेत्रों में भी वहुत उत्साह से काम करने के कारण आपकी ख्याति वहुत वढ़ गई थी।

भारतीय राष्ट्र की दृष्टि से आपकी सबसे वड़ी सेवा यह थी कि आप काँग्रेस के हमेशा समर्थक रहे। उन दिनों में मुसलमानों को काँग्रेस से अलग रखने का प्रयत्न वहुत ज़ोरों के साथ किया जा रहा था। आपने उस प्रयत्न का तीव्र विरोध किया। इन सब सेवाओं के उपलक्ष्य में १८९६ में कलकत्ता में आप काँग्रेस के सभापति बनाये गये। इस ऊँचे पद से आपने मुसलमानों से काँग्रेस में रहने की ज़बरदस्त अपील की।

आप सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य भी नियत किये गये। कौंसिल में दिये गये आपके भाषण वहुत विद्वत्तापूर्ण होते थे।

खोजा जाति की आपने वहुत सेवा की। शिक्षा, व्यापार, व्यवसाय, सुधार की दिशाओं में आपके निरन्तर सक्रिय प्रयत्नों से उसमें क्रान्ति होगई।

४ जून १९०२ को इस महान् राष्ट्रीय नेता की मृत्यु होगई।

: ८ :

चितूर शंकरन् नायर

[१८५७—१९३४]

तेरहवाँ अधिवेशन, अमरावती—१८९७

सन् १८५७ में जिस वर्ष उत्तर भारत में स्वतन्त्रता की पहली लड़ाई लड़ी जा रही थी, उसी वर्ष दक्षिण भारत में चितूर शंकरन् नायर का जन्म हुआ था। आपके पिता मदरास प्रान्त की वानिक्कर नामक तहसील में तहसीलदार थे। आश्चर्य की वात है कि उनको अंग्रेजी का ज्ञान विलकुल न था, लेकिन हिन्दी का अच्छा ज्ञान था। शंकरन् नायर ने वानिक्कर में अपनी प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण की। कुछ समय वाद पिता की कनानूर और कालीकट में क्रमशः वदली होने से शंकरन् नायर भी साथ-साथ गये और वहाँ के स्कूलों में पढ़ते रहे। एफ० ए० पास करके मदरास के प्रेसीडेंसी कालेज चले गये, जहाँ से १८७९ में वी० ए० पास किया। कुछ समय वाद क़ानून की परीक्षा अत्यन्त योग्यता के साथ पास की। समस्त प्रान्त में पहले रहने के कारण आपकी योग्यता की धाक खूव जम गई। १८८० से आप मदरास-हाई-कोर्ट में वकालत करने लगे। लेकिन कुछ ही महीनों वाद आपकी योग्यता से प्रभावित होकर सरकार ने आपको पोलाई का मुंसिफ़ वना दिया। वहाँ आप इतने लोकप्रिय होगये कि जव आपकी वदली हुई, तो लोगों ने देवालयों में आपके वापस आने की प्रार्थना की।

कुछ समय मुंसिफ़ी करने के बाद आपने फिर वकालत शुरू कर दी और क़ानून की बारीकियों को समझने और योग्यतापूर्वक बहस करने के कारण आपपर चाँदी की वर्षा होने लगी। हाईकोर्ट के जज सर चार्ल्स टर्नर ने तो आपकी सूक्ष्म प्रतिभा पर मुग्ध हो आपको 'तत्त्व-दर्शी न्यायवेत्ता' कहना शुरू कर दिया। १८८४ में लगान-सम्बन्धी कमीशन के सदस्य की हैसियत से आपने किसानों का पक्ष इतनी योग्यता व दृढ़ता से रक्खा कि आप साधारण जनता में भी लोकप्रिय होगये और किसान आपको अपना हितैषी मानने लगे।

सार्वजनिक जीवन में आपका वकालत के साथ ही प्रवेश होचुका था। आप सभी दिशाओं में चमकने लगे थे। सन् १८८५ में आप स्टेचुटरी सिविल सर्विस में नियुक्त हुए और सन् १८८९ में आप मदरास-यूनीवरसिटी के फ़ेलो बनाये गये। सन् १८९० में आप मदरास लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य नियुक्त हुए। विलेज सर्विस बिल आपके विरोध के कारण ही रह गया। मलाबार मैरिज एक्ट के निर्माण में आपने प्रमुख भाग लिया। कौंसिल के विधान में आपने एक बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन कराया। वह यह कि कौंसिल में पेश होने से पहले बिल की प्रतियाँ सरकारी और ग़ैरसरकारी सदस्यों में बाँटी जाने लगीं। कुछ दिनों तक आप 'मदरास ला जरनल' और 'मदरास रिव्यू' पत्रों के सम्पादक भी रहे।

यह असम्भव था कि इतना कुशाग्र-बुद्धि, प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति देश के राष्ट्रीय जीवन की ओर न जाता। काँग्रेस के जन्मकाल से ही आप राजनैतिक आन्दोलन में सहयोग देने लगे थे। १८९७ में न केवल आप प्रान्तीय कान्फरेन्स के सभापति चुने गये, बल्कि अमरावती में होनेवाले काँग्रेस के अधिवेशन के भी सभापति बनाये गये। अपने भाषण में आपने तत्कालीन स्थिति का बड़े साहस के साथ स्पष्ट विवेचन और

विश्लेषण करते हुए सरकारी नीति की खूब आलोचना की। आपने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहा, "यह सच है कि अंग्रेज़ी राज्य ने बहुत उपकार किये हैं, अंग्रेजों के चले जाने से देश में अराजकता फैल जायगी, रूस और फ्रांस भी हमला करेंगे, लेकिन इन सबका यह अर्थ नहीं है कि हमें राष्ट्रीय स्वतन्त्रता न दी जाय। केवल इसे प्राप्त करने की आशा ही इंग्लैण्ड और भारत के सम्बन्ध को क़ायम रख सकती है।" बहुत समय तक आप काँग्रेस के कार्य्यों में क्रियात्मक भाग लेते रहे।

वस्तुतः आप अपने समय में एक ताक़त थे। डील-डौल में जैसे बड़े थे, वैसे दिमाग़ी लियाक़त में भी बड़े होने से उन दिनों के काँग्रेसी नेताओं में आपका स्थान बहुत ऊँचा था। काँग्रेस के अलावा समाज-सुधार के आन्दोलन में भी आप बहुत भाग लेते रहे। आपका यह स्पष्ट मत था कि विद्यार्थियों को राजनीति में अवश्य भाग लेना चाहिए। १९०८ में आप सोशल कान्फरेन्स के सभापति बनाये गये।

प्रतिभा व बुद्धि के इस पुंज पर सरकार की दृष्टि पड़नी आवश्यक थी। और उन दिनों के अन्य अनेक राजनैतिक नेताओं के समान आप भी पहले एडवोकेट-जनरल और बाद में हाईकोर्ट के जज बना दिये गये। आप स्थायी तौर पर तीन बार जज बनाये गये और १९०८ में आपको स्थायी तौर पर जज बना दिया गया। इससे काँग्रेस और देश के सार्वजनिक जीवन से आपका सम्बन्ध टूट गया। १९१५ में आप वाइसराय की कार्यकारिणी के शिक्षा-सदस्य बना दिये गये। इस पद पर रहते हुए आपने स्त्री-शिक्षा के लिए काफ़ी प्रयत्न किया। सरकारी पिंजरे में बन्द रहते हुए भी आपकी आत्मा स्वतन्त्रता के वातावरण में उड़ने के लिए हमेशा उत्सुक रहती थी। १९१९ में माण्टफोर्ड स्कीम पर भारत-सरकार के अधिकांश विचारों से आप असहमत थे और उसके खरीतों

में आपके असहमतिसूचक नोट बहुत योग्यता के साथ लिखे गये थे। भारत-सरकार के साथ आपका मतभेद बढ़ता गया और समय आया कि भारत-सरकार के पिंजरे से आप बाहर होगये।

१९१९ में जलियाँवाला बाग़ की दुर्घटना होचुकी थी। पंजाब में मार्शल-ला क़ायम था। सरकार निरंकुशता का नंगा नाच नाच रही थी। शंकरन् नायर ने उसका प्रतिवाद किया, और सफलता न मिलने पर उसके प्रतिवाद-स्वरूप इतने ऊँचे पद से १९ जुलाई १९१९ को इस्तीफ़ा दे दिया। इससे आपकी लोकप्रियता खूब बढ़ गई। काँग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा आपको बधाई दी और काँग्रेस-कमेटी ने इंग्लैण्ड जाकर पंजाब-हत्याकाण्ड का मामला अंग्रेज़ों के सामने रखने की आपसे प्रार्थना की। ३१ जुलाई को आप सुधारों के सम्बन्ध में गये हुए भारतीय डेपुटेशन को सहयोग देने के लिए इंग्लैण्ड रवाना होगये।

अपनी इस लोकप्रियता को आप अन्त तक न निभा सके। गाँधीजी की असहयोग व सत्याग्रह की नीति से तीव्र मतभेद होजाने के कारण आपने 'गाँधी और अराजकता' नाम से एक पुस्तक लिखी। इससे आप जनता में बहुत अप्रिय होगये। पंजाब-गवर्नर ओड्वायर पर भी इसमें छींटे उड़ाये गये थे। उसने मानहानि का दावा किया। आपको तीन लाख रुपये हर्जाने के तौर पर देने पड़े।

सन् १९२२ में आप एक बार फिर चमके। अहमदाबाद-काँग्रेस में सामूहिक सत्याग्रह शुरू करने का निश्चय हुआ। गाँधी जी डिक्टेटर नियत होगये। कुछ देशहितैषियों ने काँग्रेस व सरकार में समझौता कराने के लिए बम्बई में १६ जनवरी १९२२ को सर्वदल सम्मेलन का आयोजन किया। उसका सभापति आपको बनाया गया। सम्मेलन की उप-समिति द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव जब सम्मेलन में रक्खा गया, तब उससे

असहमत होने की वजह से आप सम्मेलन से उठकर चले गये। उसके बाद आप सार्वजनिक जीवन से अलग रहे।

कुछ वर्षों तक फिर आप कौंसिल आफ़ स्टेट के सदस्य रहे। १९२८ में साइमन-कमीशन के आने पर सारे देश के सब दलों ने उसका बहिष्कार किया, लेकिन आपने उससे सहयोग देने वाली भारतीय समिति का अध्यक्ष-पद स्वीकार कर लिया। इससे आप अत्यन्त अप्रिय होगये। नरम-दल ने भी जब उसका बहिष्कार कर दिया था, तब आपका उसमें सहयोग देना वास्तव में आश्चर्य की बात थी। आपका जीवन इसी तरह सहयोग और असहयोग की डांवांडोल स्थिति में गुजरा है। कभी आप सरकार के प्रिय बने और कभी जनता के। न आपको सदा सरकारी पदों की ही लालसा रही और न जनता के प्रेम-पात्र बने रहने का ही आपने निरन्तर यत्न किया। २४ अप्रैल १९३४ को आपका देहावसान हुआ और प्रारम्भिक-काल से कांग्रेस के साथ सम्बन्ध रखनेवाला एक वृद्ध महापुरुष उठ गया।

: ९ :

आनन्दमोहन वसु

[१८४६—१९०६]

चौदहवां अधिवेशन, मदरास—१८८९

आनन्दमोहन वसु, जिनको काँग्रेसी वुजुर्गों की पंक्ति में 'पूर्वी वंगाल का चमकता हुआ सितारा' कहा जाता है, कांग्रेस के ही एक महान् पुरुष नहीं थे, वल्कि ब्रह्म-समाज के भी एक चोटी के नेता थे और वंगाल को न केवल राजनैतिक वल्कि सामाजिक, नैतिक एवं शिक्षा के सम्बन्ध में भी प्रेरणा देने में अग्रणी थे। पूर्वी वंगाल के मैमनसिंह ज़िले में १८४६ में आपका जन्म हुआ था। वाल्यकाल का कोई विशेष व्यौरा नहीं मिलता, पर यह तय है कि आप छोटी आयु से ही प्रतिभा-सम्पन्न थे।

प्रारम्भिक शिक्षा आपकी कलकत्ता में हुई और १६ वर्ष की अवस्था में १८६२ में कलकत्ता-यूनिवरसिटी की मैट्रिक-परीक्षा में आप प्रथम रहे। एफ़० ए० और वी० ए० की परीक्षाओं में पास होनेवाले विद्यार्थियों में आपका नम्वर सवसे ऊपर रहा। एम० ए० की परीक्षा गणित में दी और उसमें भी सर्वप्रथम रहे। इससे उच्चाधिकारियों में, खासकर यूनिवरसिटी के तत्कालीन वाइस-चान्सलर सर हेनरी समरनमैन के दिल में, आपकी इज्ज़त वढ़ गई और साथ ही आपको १०,००० रु० की रायचन्द्र-प्रेमचन्द-छात्रवृत्ति भी मिल गई। कुछ समय तक आप प्रेसिडेंसी-कालेज में गणित के प्रोफेसर रहे, फिर १८७० में इंग्लैण्ड जाकर

गणित की उच्च-शिक्षा प्राप्त करने के लिए केम्ब्रिज के क्राइस्ट-कालेज़ में भरती हुए। अपनी योग्यता के कारण वहाँ केम्ब्रिज यूनियन के मंत्री हुए और फिर उसके अध्यक्ष होगये, जोकि बहुत बड़े सम्मान का पद है। तीन साल पढ़कर मैथेमेटिकल ट्रिपोस में सफल हुए और रेंगलरों में ऊँचा दर्जा हासिल किया। १८७४ में बैरिस्टरी पास करके आप हिन्दुस्तान लौट आये।

वकालत में शीघ्र ही आपको सफलता मिली, हालांकि आपने हाई-कोर्ट के बजाय ज्यादातर वकालत मुफ़स्सिल में ही की। अपनी आय का अधिकांश भाग आपने आसाम के चाय-व्यवसाय में लगाया। पर आप-का मन तो धार्मिक, शिक्षणात्मक एवं राजनैतिक दिशाओं में लगा रहता था। इसलिए वकालत के पेशे में आपकी आत्मा को सन्तोष न मिला और जल्दी ही उससे आपने अवकाश ग्रहण कर लिया।

शिक्षा की दिशा में आपने विशेष काम किया। शिक्षा-समस्याओं में आपकी गहरी दिलचस्पी थी, जिसके कारण १८७७ में आप कलकत्ता-यूनिवरसिटी के फ़ेलो और उसके दो साल बाद उसकी सिण्डीकेट के सदस्य नियुक्त हुए। यूनिवरसिटी को अधिक-से-अधिक शिक्षा देनेवाली संस्था बनाने की दृष्टि से उसमें सुधार के अनेक प्रस्ताव आपने उपस्थित किये। १८८० में 'सिटी-स्कूल' के नाम से कलकत्ता में एक हाईस्कूल खोला, जो क्रमशः आधुनिक ढंग का बढ़िया कालेज बन गया। स्त्री-शिक्षा की ओर भी आपने खासतौर से ध्यान दिया। 'वंग-महिला-विद्यालय' के नाम से लड़कियों की पढ़ाई का एक स्कूल खोला, जो जल्दी ही उन्नति करते हुए स्त्रियों की उच्च-शिक्षा की सुदृढ़ सरकारी संस्था बेथून-कालेज में सम्मिलित होगया। आपकी योग्यता और क्रियात्मक कार्य के कारण शिक्षा-शास्त्री के रूप में आपकी ख्याति इतनी बढ़ी कि

१८८२ में नियुक्त शिक्षा-कमीशन की अध्यक्षता ग्रहण करने के लिए तत्कालीन वाइसराय लार्ड रिपन ने आपसे अनुरोध किया, लेकिन आपने इसलिए उस सम्मान को अस्वीकार कर दिया कि हिन्दुस्तानी अध्यक्ष होने के कारण कमीशन की सिफ़ारिशों का महत्व कम होजायगा। आप उसके सदस्य हुए और उसके काम में आपने विशेष योग दिया। शिक्षा-सम्वन्धी सेवाओं के फलस्वरूप १८९५ में कलकत्ता यूनिवरसिटी ने आपको वंगाल-कौंसिल के लिए अपना प्रतिनिधि चुना।

१८७६ में सुरेन्द्रनाथ वनर्जी आदि के साथ आपने कलकत्ता में इंडियन-असोसियेशन की स्थापना की और उसके प्रधानमंत्री वनकर सुरेन्द्रनाथ के उत्साही सहकारी रहे। १८८६ में वंगाल-कौंसिल के सदस्य नामजद हुए और १८९५ में यूनिवरसिटी की ओर से चुने गये। वहाँ निर्भयतापूर्वक आप जनता के पक्ष को उपस्थित करते थे। १८८५ में, जब कांग्रेस की स्थापना हुई तो आपनें उसकी मंगल-कामना की। स्वास्थ्य की खरावी के कारण हरेक काँग्रेस में तो शरीक न हो सके, पर आपकी सहानुभूति सदा काँग्रेस के साथ रही और जब कभी कलकत्ता में काँग्रेस का अधिवेशन हुआ, तब आप उसमें जरूर सम्मिलित होते और उसकी कार्रवाइयों में प्रमुख भाग लेते रहे। १८९६ के अधिवेशन में आपने शिक्षा-विभाग की नौकरियों की नवीन योजना से हिन्दुस्तानियों के साथ होनेवाले अन्याय का तीव्र विरोध किया। इस सम्बन्ध में आपने जो भाषण दिया, वह आपकी वक्तृत्वकला का उत्कृष्ट नमूना है। १८९७ के अन्त में आपका स्वास्थ्य ज्यादा खराव हुआ और डाक्टरी सलाह पर आवहवा की तवदीली के लिए जर्मनी चले गये। वहाँ स्वास्थ्य कुछ सुधरा, तो इंग्लैण्ड गये और वहाँ अनेक सभाओं में भारत के पक्ष में भाषण दिये। एक सभा में तो आपने इतने जोश, तीव्रता और गरमी

में भाषण दिया कि उसके अन्त में आपको स्वयं ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई बहुत बड़ा परिश्रम किया हो। पर, वह आपकी जीवन-लीला की समाप्ति का श्रीगणेश था। उसके बाद आप ऐसे बीमार हुए कि प्रायः रोग-शय्या पर ही पड़े रहे। इंग्लैण्ड से भारत लौटने पर आपकी देश-भक्ति, निःस्वार्थ सेवा एवं निष्कलंक चरित्र के पुरस्कारस्वरूप राष्ट्र ने आपको १८९८ में मदरास में हुए काँग्रेस के चौदहवें अधिवेशन का सभापति चुना। आपका स्वास्थ्य बिगड़ रहा था, तो भी इस भारी जिम्मेवारी को आपने बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया और पूरी योग्यता के साथ निवाहा। सभापति-पद से आपने जो भाषण दिया, वह काँग्रेस के भाषणों में सर्वोत्तम माना जाता है और अन्त में धन्यवाद के प्रस्ताव का जवाब देते हुए जो मौखिक भाषण दिया, उसने तो आपको श्रोताओं की नज़रों में और भी ऊँचा उठा दिया। उसके बाद आपका स्वास्थ्य एकदम गिर गया और आप सिर्फ एक बार बिस्तर से उठकर एक सार्वजनिक समारोह में जा सके और वह तब जबकि बंग-भंग के सरकारी कृत्य के विरोध में सारे बंगाल की सूत्रता के द्योतक फ़ेडरल हाल की कलकत्ता में स्थापना हुई। १६ अक्तूबर १९०६ को आपने उसका उद्घाटन किया और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने आपका अंतिम भाषण पढ़कर सुनाया। वह भाषण मानो आपका अंतिम संदेश था, जो इतना शानदार था कि उसका स्थान भारतीय राजनैतिक साहित्य में बे-जोड़ है।

धर्म आपके जीवन में पूरी तरह समाविष्ट था। आप छोटी उम्र में ही ब्रह्म-समाज में शामिल होगये थे और केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में इस दिशा में बहुत काम किया। पर जब केशवचन्द्र ने अपनी पाँच बरस की लड़की का कूचविहार के राजा के लड़के के साथ विवाह किया, तो जागरूक ब्रह्म-समाज में दो दल होगये और आपने केशवचन्द्र से

अलग होकर साधारण ब्रह्म-समाज की स्थापना के रूप में सुधारक दल का नेतृत्व किया। सच तो यह है कि आपका अन्तरतम आध्यात्मिक भावना में रँगा हुआ था। यहाँतक कि राजनैतिक भाषण भी धार्मिक और आध्यात्मिक रंग में ही रंगे होते थे। यही कारण है कि जो-कुछ कहते थे, उसको आप उसी तीव्रता से महसूस भी करते थे और इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि आपका स्वास्थ्य बिगड़ने का यह मुख्य कारण था। १९०६ में आपका स्वर्गवास होने पर उसी साल की काँग्रेस के स्वागताध्यक्ष-पद से डा० रासबिहारी घोष ने जो कहा था, उसीको दोहराते हुए यह कहा जा सकता है कि "आनन्दमोहन वसु में देशभक्ति निस्सन्देह धर्म की ऊँचाई पर पहुँची हुई थी।"

: १० :

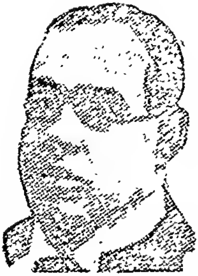

रमेशचन्द्र दत्त

[१८४८—१९०९]

पन्द्रहवाँ अधिवेशन, लखनऊ—१८९९

सार्वजनिक सेवा की सीढ़ी पर पैर रखकर सरकार द्वारा सम्मान पानेवाले तो वहुत व्यक्ति हुए हैं, लेकिन उन दिनों भारतीयों के लिए दुर्लभ कमिश्नर का ऊँचा पद पाकर सार्वजनिक सेवा के लिए उसे ठुकरानेवाले श्री रमेशचन्द्र दत्त जैसे व्यक्ति विरले ही मिलेंगे।

रमेशचन्द्र दत्त का जन्म कलकत्ता में १३ अगस्त १८४८ को एक वहुत ही कुलीन परिवार में हुआ था। आपके पिता ईशानचन्द्र वंगाल में पहले डिपुटीकलेक्टर थे। माता-पिता का देहान्त हो जाने के कारण रमेशचन्द्र अपने चाचा शशिचन्द्र की संरक्षता में रहने लगे। एण्ट्रेन्स पास होने से पहले ही आपका विवाह होगया। एफ़० ए० पास कर चुकने के वाद आपकी इच्छा लन्दन् जाकर सिविल सर्विस की परीक्षा देने की थी, लेकिन चाचा इससे सहमत न थे। इसलिए आप भागकर वम्वई पहुँचे और उस जहाज़ पर सवार हुए, जिसपर सुरेन्द्रनाथ वनर्जी सिविल सर्विस की परीक्षा देने के लिए इंग्लैण्ड जा रहे थे। सिविल सर्विस की परीक्षा वड़ी शान के साथ पासकर रमेशचन्द्र १८७१ में भारत वापस आगये।

१८७१ से १८९२ तक २१ साल तक आप वंगाल के विभिन्न ज़िलों में विभिन्न पदों पर काम करते रहे। इन पदों पर रहकर आपने जनता

की यथाशक्ति अधिक-से-अधिक सेवा करनें का प्रयत्न किया। अकाल, वाढ़, हैज़ा आदि के अवसर पर आपने जिस सुन्दरता से लोगों की सेवा की, जिस तत्परता और सहृदयता से अपने शासनकाल में आपने ज़मींदारों और किसानों को सहायता पहुँचाई, उससे आप बंगाल की ग़रीव प्रजा में बहुत लोकप्रिय होगये। आपकी सम्मतियों और निर्णयों का आदर सरकारी अधिकारी भी किया करते थे। कठिन-से-कठिन परिस्थितियों को आपने जिस तरह हल किया, उससे आपका सिक्का पूरी तरह जम गया था। इसलिए जब आप इंग्लैण्ड में एक साल की छुट्टी विताकर १८९४ में भारत पहुँचे, तो आप वर्दवान डिवीजन के कमिश्नर वना दिये गये। उस समय तक यह पद किसी भारतीय को प्राप्त न हुआ था। फिर आप उड़ीसा के कमिश्नर वनाये गये।

१८९७ में जव आपने उस ऊँचे पद से इस्तीफ़ा देदिया, तव आपके मित्रों को वहुत आश्चर्य हुआ, लेकिन आपके हृदय में राष्ट्र-सेवा और साहित्य-सेवा की जो उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हो चुकी थी, उसे वे न जानते थे। आपका शेष जीवन इन्हीं दोनों कार्यों में व्यतीत हुआ। बीच में १९०४ से १९०७ तक कुछ साल आप बड़ौदा में रेवेन्यू मिनिस्टर के पद पर भी रहे; ज़हाँ आपने कर, शिक्षा, व्यापार, शासन आदि के सम्वन्ध में बीसियों प्रकार के सुधार किये और बड़ौदा को भारत का सबसे उन्नत राज्य वनाने का प्रयत्न किया। वहाँ आप 'ग़रीबों के दोस्त' के नाम से प्रसिद्ध होगये। १९०८ में आप 'रायल कमीशन आफ़ डिसेण्ट्रेलाइजेशन' के सदस्य नियत किये गये। १९०९ में आप वड़ौदा के प्रधान-मंत्री नियुक्त हुए, लेकिन उसी साल हृद्-रोग से २० नवम्वर १९०९ को आपका ६१ वर्ष की आयु में देहान्त होगया।

श्री रमेशचन्द्र का सार्वजनिक जीवन उन दिनों के इतिहास में

अपना एक विशेष स्थान रखता है। आपको भारतवर्ष की आर्थिक समस्याओं में विशेष रुचि थी। किसानों के कष्ट आपसे देखे न जाते थे। २६ साल की लम्बी सरकारी नौकरी में आपने किसानों की स्थिति का अत्यन्त गम्भीरता के साथ अध्ययन किया और समय-समय पर सरकार की मालगुज़ारी-प्रथा में सुधार कराने का आन्दोलन आप करते रहे। बंगाल टिनेंसी एक्ट तथा अन्य अनेक सुधारों का समस्त श्रेय आपको ही मिलना चाहिए। डिसेण्ट्रेलाइज़ेशन कमीशन ने बहुत-सी सुन्दर और उपयोगी सिफ़ारिशें आपके ज़ोर देने पर ही की थीं। आपने जब देखा कि सरकारी पदों पर रहकर किसानों की अधिक सेवा नहीं की जा सकती, तब आप काँग्रेस में सम्मिलित होगये और आई० सी० स० के अफ़सर रहते हुए लम्बे अरसे तक सार्वजनिक प्रश्नों पर आपने जो अमित अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया था उसका लाभ भी काँग्रेस को पहुँचाया। आपका कहना था कि भूमि पर भारी मालगुजारी और ब्रिटिश कारखानों की खुली प्रतिस्पर्धा के कारण ग्रामीण धन्धों का विनाश ही दुर्भिक्ष का कारण है। मालगुजारी, दुर्भिक्ष तथा अन्य आर्थिक प्रश्नों पर आप प्रमाण समझे जाते थे। सरकारी नौकरी छोड़ने के बाद आप इंग्लैंड चले गये थे, वहाँ आप यूनीवरसिटी कालेज लन्दन में भारतीय इतिहास के प्रोफ़ेसर बनाये गये थे। १९०० से १९०४ तक आपने लन्दन में भारतीय पक्ष को, विशेपकर किसानों के सवाल को, ज़ोरों के साथ रक्खा। मालगुजारी तथा ब्रिटिशकालीन भारत के आर्थिक इतिहास पर आपने अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे, जो आजतक अपने विषय के अद्वितीय ग्रन्थ माने जाते हैं। इन पुस्तकों के द्वारा आपने सहसा सम्पूर्ण राष्ट्र का ध्यान बढ़ते हुए आर्थिक ह्रास की ओर खींच दिया। १८९९ में राष्ट्र ने आपकी इन अनुपम सेवाओं का सम्मान कर आपको काँग्रेस का सभापति

बनाया। आपने अपने भाषण में पहली बार किसानों पर होनेवाले भीषण अत्याचारों की ओर काँग्रेस का ध्यान खींचा।

किसानों की आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में लार्ड कर्ज़न के साथ काफी समय तक आपकी बहस रही। आपने सरकारी नीति की इतनी कड़ी आलोचना की कि सरकार को विवश होकर किसानों के महत्वपूर्ण प्रश्न पर ध्यान देना पड़ा। भारत के किसान सदा ही आपकी सेवाओं के लिए आपके ऋणी रहेंगे। भारत के शासन-विधान से आप अत्यन्त असन्तुष्ट थे। आपने इंग्लैण्ड में दादाभाई नौरोजी व सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के साथ मिलकर शासन में सुधार कराने का तीव्र आन्दोलन उठाया। न्याय और शासन विभागों को पृथक्-पृथक् करने की काँग्रेस की माँग के आप समर्थक थे। काँग्रेस के साथ सहानुभूति रखने के खतरे को आप जानते थे, किन्तु अपने विचारों को कभी आपने खतरे के कारण दबाया नहीं। लार्ड मिण्टो के साथ भी आपने इस सम्बन्ध में बहुत-सा पत्र-व्यवहार किया था।

प्रारम्भ से ही आपकी रुचि साहित्य-सेवा की ओर थी। आपने इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र के अतिरिक्त अन्य भी बीसियों सुन्दर विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। कम्पनी के समय का आपका लिखा हुआ भारत का इतिहास अपने विषय की पहली पुस्तक है। आपने कई उपन्यास भी लिखे हैं। ऋग्वेद का बंगाली अनुवाद, महाभारत और रामायण का अंग्रेजी पद्यानुवाद तथा भारतीय सभ्यता का इतिहास आपके अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। ये सभी ग्रन्थ आपके अध्यवसाय, परिश्रम, विद्वत्ता और अथाह ज्ञान के सूचक हैं। सरकारी पदों पर काम करते हुए इतनी साहित्य-सेवा शायद ही किसी सिविलियन ने की हो। अपनी साहित्यिक सेवा और विशेषकर भारत के आर्थिक प्रश्नों पर लिखे हुए अपने प्रामाणिक ग्रन्थों के कारण आप वस्तुतः अमर होगये हैं।

: ११ :

नारायण गणेश चन्दावरकर

[१८५५—१९२३]

सोलहवाँ अधिवेशन, लाहौर—१९००

सर नारायण गणेश चन्दावरकर का जन्म उत्तरी कर्नाटक के हनोवर शहर में रहनेवाले एक संभ्रान्त परिवार में १८५५ में हुआ था। अपने शहर और ज़िले के स्कूलों में कुछ साल पढ़ने के बाद १८६९ में आप बम्बई चले गये और १८७३ में एलफिंस्टन कालेज में भर्ती होगये। अपनी प्रतिभा और योग्यता के कारण वहाँके प्रोफ़ेसर के कृपापात्र होने में आपको अधिक समय नहीं लगा। समाज-सुधार, देश-भक्ति, सार्वजनिक सेवा आदि की भावना आपके हृदय में कालेज-जीवन में ही पैदा हो चुकी थी।

१८७७ में बी० ए० पास करके आप 'इन्दुप्रकाश' के अँग्रेज़ी कालमों का सम्पादन करने लगे। दो साल बाद सम्पादन छोड़कर आपने क़ानून पढ़ना शुरू किया और १८८१ में वकालत की परीक्षा दी। हाईकोर्ट में आपकी प्रतिभा खूब चमकी और शीघ्र ही उच्च कोटि के वकीलों में गिने जाने लगे। वकालत के साथ ही सार्वजनिक जीवन में आपका प्रवेश हुआ। आपको सार्वजनिक जीवन में आये थोड़ा ही समय हुआ था। उन दिनों की परिपाटी के अनुसार जब १८८५ में पार्लमेण्ट के चुनाव के

समय इंग्लैण्ड की जनता के सामने भारतीय समस्याओं को रखने के लिए यहाँसे एक डेपूटेशन जाने लगा, तब आपसे भी उसमें जाने का आग्रह किया गया। इंग्लैण्ड में हृदयस्पर्शी और विवेचनापूर्ण भाषणों के कारण आपने खूब प्रभाव पैदा किया। वहाँसे लौटकर काँग्रेस के पहले अधिवेशन में सम्मिलित हुए। उसके बाद तेरह वर्षों तक आप निरन्तर सार्वजनिक सेवा के विविध क्षेत्रों में लगन और उत्साह के साथ काम करते रहे। समाज-सुधार, शिक्षा और साहित्य में आप विशेष दिलचस्पी रखते थे। १८९७ में आप यूनिवरसिटी की ओर से बम्बई-कौंसिल के सदस्य चुने गये। कौंसिल में भी समाज-सुधार तथा अन्य उपयोगी सार्वजनिक विषयों में आप विशेष रुचि दिखाते रहे। १९०० में राष्ट्र ने आपको वह ऊँचे-से-ऊँचा सम्मान दिया, जो वह दे सकता था।

लाहौर में होनेवाली काँग्रेस के सभापति-पद से दिया गया आपका भाषण आपकी योग्यता और देश-भक्ति का अच्छा परिचायक है। जनवरी १९०१ में आपको हाईकोर्ट का स्थानापन्न जज नियुक्त किया गया। श्री रानाडे के देहान्त के बाद आप स्थायी तौर पर नियुक्त कर दिये गये। १९०९ में आपने स्थानापन्न चीफ़ जस्टिस का काम भी किया। १९१० में आपको सरकार ने 'सर' की उपाधि दी। १९१२ तक आप हाईकोर्ट के जज रहे। जजी के काल में आपने अपनी न्याय-बुद्धि, सूक्ष्म-दृष्टि और सहृदयता से सरकार व जनता दोनों में ख्याति प्राप्त की। इसके बाद आप कुछ समय तक इन्दौर के प्रधान-मंत्री के पद पर रहे। सरकारी पदों पर इतने दीर्घकाल तक काम करने के बाद भी आपकी स्पष्टवादिता और देशभक्ति में किसी तरह की कमी न आई। १९१७ में जब माण्टेगू भारत आये, तब काँग्रेस-लीग-योजना के समर्थन में आपने एक बहुत विद्वत्तापूर्ण आवेदन-पत्र तय्यार किया। भारत के शासन में सुधार करने

के आप दृढ़ पक्षपाती थे। श्रीमती एनी बेसेण्ट की गिरफ्तारी के विरुद्ध आपने ज़ोरदार आवाज़ उठाई थी। फिर कुछ समय तक आप नरमदल की राजनीति में दिलचस्पी लेते रहे। जब गाँधीजी १९१९ में सत्याग्रह शुरू करने लगे थे, तब आपने उन्हें इतना उग्र कदम उठाने से रोका था। जीवन की अन्तिम घड़ी तक आप बम्बई के सार्वजनिक जीवन में कुछ-न-कुछ भाग लेते रहे। मई १९२३ में बंगलौर में, जहाँ आप स्वास्थ्य-सुधार के लिए गये हुए थे, हृदय की गति बन्द होजाने से आपका देहान्त होगया।

सर चन्दावरकर की सार्वजनिक सेवायें, भले ही जज बना दिये जाने से, कांग्रेस के साथ बहुत समय तक सम्बन्धित न रह सकीं; लेकिन वे अगणित थीं। समाज-सुधार और शिक्षा के क्षेत्र में आपने बहुत काम किया। महाराष्ट्र में उन दिनों समाज-सुधार का प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण था। आप न्यायमूर्ति गोविन्द महादेव रानाडे के इस विचार से सहमत थे कि राजनैतिक सुधारों से पहले समाज-सुधार की आवश्यकता है। प्रार्थना-समाज के आप वर्षों प्रमुख कार्यकर्ता रहे। सरकार को सामाजिक कुरीतियाँ दूर करने के लिए क़ानून का आश्रय लेना चाहिए, इसका आप हमेशा समर्थन करते रहे। शिक्षा के कार्यों में विशेष रुचि लेने के कारण बम्बई-यूनिवरसिटी के आप वाइस-चांसलर बनाये गये थे। विद्यार्थियों से आपको विशेष प्रेम था। बरसों आप 'स्टूडेण्ट्स ब्रदरहुड' के प्रधान रहे। विद्यार्थियों के चरित्र-निर्माण की ओर आप विशेष ध्यान देते थे। १९०२ में लार्ड कर्ज़न ने आपको शिक्षा-कमीशन का सदस्य नियत किया था।

मनुष्य-समाज की सेवा, चाहे वह किसी भी मार्ग से हो, आपका प्रिय विषय था। इसीलिए हम आपको कभी नर्सिंग एसोसियेशन में पाते हैं, तो कभी जीव-दया-प्रचारिणी या शिशु-संवर्धिनी में और कभी कौंसिल

या कारपोरेशन में प्रजा की जीवनोपयोगी समस्याओं के लिए आन्दोलन करते हुए देखते हैं। यही कारण है कि जहाँ एक ओर आप सरकार द्वारा हाईकोर्ट की जजी और यूनिवरसिटी की वाइस-चांसलरी पाते हैं, वहाँ दूसरी ओर जनता द्वारा राष्ट्रपति-पद पर आपका अभिषेक किया जाता है।

: १२ :

दीनशा ईदलजी वाचा

[१८४४—१९३६]

सत्रहवाँ अधिवेशन, कलकत्ता—१९०१

फारस से निकाली जाकर भारत में आवसने वाली पारसी जाति ने उन्नीसवीं सदी के अन्त में एकसाथ तीन महापुरुषों को जन्म देकर उस ऋण को अदा किया है, जो भारत में बसने के नाते उसपर चढ़ा हुआ था। भारत के वृद्ध पितामह दादाभाई नौरोजी, बम्बई के बेताज बादशाह फ़िरोज़शाह मेहता और अर्थशास्त्र के महापण्डित दीनशा ईद-लजी वाचा का नाम इस सम्बन्ध से सदा याद किया जाता रहेगा।

दीनशा ईदलजी वाचा का जन्म २ अगस्त १८४४ को बम्बई में हुआ था। एलफिस्टन इंस्टिट्यूट में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करके आप १८५८ में उसी कालेज में भर्ती होगये। विद्यार्थी-जीवन में आपकी योग्यता और उत्तम स्वभाव के कारण आप अन्य विद्यार्थियों की अपेक्षा सभी अध्यापकों के बहुत अधिक प्रिय थे। अपने व्यापारिक कार्य में सहा-यता लेने के लिए आपको पिता ने कालेज से जल्दी ही उठा लिया। पिता के साथ कार्य करते हुए आपने अर्थशास्त्र का जो व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया, वह आपके बहुत काम आया। उस समय अर्थशास्त्र में आपकी ऐसी रुचि पैदा हुई कि उसमें पाण्डित्य प्राप्त करके सरकार की आर्थिक नीति की साधिकार कड़ी टीका करनेवाले आप पहले व्यक्ति थे।

बाम्बे बैंक में आपने काम शुरू किया और उस छोटी अवस्था में आपको बैंक की एक प्रधान शाखा का काम सम्हालने के लिए तय्यार किया गया। फिर आपने हिसाब-परीक्षक मेसर्स बॉडी एण्ड बिल्सन फर्म में बतौर सहायक के काम शुरू किया। वहाँ आपकी प्रतिभा और योग्यता चमक उठी। आपने कोई छोटी-मोटी १०-१२-दिवालिया रियासतों और कितने ही बैंकों तथा अन्य संस्थाओं का हिसाब-किताब ठीक किया। १८६१-६५ में अमेरिकन युद्ध के कारण जब सारे संसार में घोर आर्थिक संकट पैदा हुआ था, तबका वह समय था। उस विकट समय में आपने अपनी योग्यता का उत्कृष्ट परिचय दिया। राबर्टसन ब्राइट के लेखों से आपके हृदय में देशभक्ति की भावना जागृत हुई। उनके लेखों में मुद्रा, विनिमय, अर्थनीति और राजस्व सम्बन्धी विषयों का बहुत गहरा अध्ययन और तीव्र आलोचना रहती थी। उन्हींके अध्ययन से आपमें भी उन विषयों का पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त करने की इच्छा पैदा हुई। देशभक्ति और अर्थशास्त्र के पाण्डित्य के मिश्रण से आपके सार्वजनिक जीवन का निर्माण हुआ था।

१८७४ में बम्बई के रुई के व्यापार-व्यवसाय के साथ आपका सम्बन्ध होगया। मृत्यु-पर्यन्त इस व्यापार-व्यवसाय के साथ आपका सम्बन्ध बराबर बना रहा और मृत्यु से दो-तीन वर्ष पहले तक आप उसमें पूरी दिलचस्पी लेते रहे। उसी समय आपने देश के राजनैतिक मामलों में भी विशेष रूप से भाग लेना शुरू कर दिया।

बम्बई के म्युनिसिपल मामलों में दिलचस्पी लेते हुए आपने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। श्री मलाबारी के 'इण्डियन स्पैक्टेटर' नामक पत्र में म्यूनिसिपल मामलों पर आपके धारावाही लेखों ने न केवल आपकी या पत्र की ख्याति को बढ़ाया, बल्कि म्युनिसिपल प्रबन्ध

में बहुत सुधार भी करा दिये। १८९६ में म्यूनिसिपल कमेटी के सदस्य बनने के बाद आप अपने प्रस्तावों को कार्य में परिणत करने का उद्योग करने लगे।

केवल बम्बई म्युनिसिपैलिटी ही नहीं, देश के भी समस्त आर्थिक प्रश्नों—मुद्रा, विनिमय, दुर्भिक्ष, शासन-प्रबन्ध, सेना, व्यापार आदि में भी आप दिलचस्पी लेने लगे। यह कहना कठिन है कि किस विषय से आपको विशेष प्रेम था, क्योंकि प्रायः सभी विषयों में आपका एकसमान अबध प्रवेश था।

काँग्रेस सरीखी किसी संस्था की आवश्यकता आप १८८५ में उसकी स्थापना होने से पहले ही अनुभव करने लग गये थे। इसलिए उसकी स्थापना होने पर आपने उसमें पूरा सहयोग दिया और उसमें सम्मिलित होते ही अर्थनीति-सम्बन्धी अपने पाण्डित्य की पूरि धाक जमा दी। आप प्रायः सभी अधिवेशनों में उपस्थित होते थे और कभी होम-चार्जेज़, कभी विनिमय-दर, कभी आबकारी-नीति, कभी मुद्रा, कभी स्वदेशी कारखाने, कभी चुंगी, कभी राजस्व और कभी सैनिक परिस्थिति के विभिन्न पहलुओं पर सरकार की नीति का पर्दा फ़ाश करनेवाले निर्भीक भाषण देते थे। आँकड़ों, प्रमाणों तथा अकाट्य युक्तियों से पूर्ण प्रत्येक भाषण मार्के का भी होता था। भाषा भी तीव्र रहती थी। उस समय के नरमदली नेताओं में आप बहुत उग्र माने जाते थे। इसीलिए ग्यारहवीं काँग्रेस में आप 'बम्बई का आगबबूला' के नाम से प्रसिद्ध हुए। काँग्रेस में आपकी योग्यता और विद्वत्ता की धाक थी। वेल्बी कमीशन के सामने जब आपका नाम गवाही के लिए प्रस्तुत किया गया, तो काँग्रेस ने इसपर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की। आपका प्रत्येक भाषण तत्कालीन आर्थिक प्रश्नों पर पूरी रोशनी डालता है।

१८९६ से १९१३ तक आप काँग्रेस के संयुक्त प्रधान-मंत्री रहे। १९०१ में काँग्रेस का सभापति बनाकर आपकी सेवाओं के लिए आपको सम्मानित किया गया। उस पद से दिया गया आपका भाषण सरकार की आर्थिक नीति का पोलखाता था। उस समय दुर्भिक्षों की समस्या बहुत जटिल और उग्र थी। उसका आपने बहुत सुन्दर विवेचन किया था। सर एन्थोनी मैक्डानल्ड की अध्यक्षता में इस समस्या की छानबीन के लिए एक कमीशन नियुक्त किया गया था। उसकी रिपोर्ट में आपके भाषण की आलोचना की गई थी। उसके बाद भी काँग्रेस के काम में आप संक्रिय भाग लेते रहे थे। बम्बई में १९१५ में हुई काँग्रेस के आप स्वागताध्यक्ष हुए थे। फिर वृद्धावस्था और नरमदली होने के कारण काँग्रेस में अधिक भाग नहीं ले सके। लेकिन एक-चौथाई सदी तक काँग्रेस के प्रमुख कार्यकर्त्ता रहकर आपने राष्ट्र की बहुत सेवा की। काँग्रेस के कार्यकर्त्ताओं में मतभेद होने पर आप अपने व्यक्तित्व से सदा ही उस-को तुरन्त दबा देते थे। आर्थिक और राजनैतिक प्रश्नों की ओर साधा-रण जनता का ध्यान आकर्षित कर उसमें उनके लिए आपने ही दिल-चस्पी पैदा की है। ह्यूम के १९०६ में काँग्रेस से अलग होजाने के बाद उसका संचालन आपने बड़ी योग्यता तथा तत्परता के साथ कई वर्षों तक किया।

काँग्रेस के अलावा भी आपका सार्वजनिक जीवन बहुत महत्वपूर्ण रहा है। सर फ़िरोजशाह के देहावसान के बाद बम्बई के सर्वमान्य नेता का पद आपको सौंपा गया था। १९०१ में आप बम्बई कारपोरेशन के सभापति (मेयर) चुने गये थे। श्री गोखले की मृत्यु से इम्पीरियल कौंसिल में महान् अर्थशास्त्री और वक्ता का जो अभाव हुआ था, उसको आपने ही पूरा किया था। आपका जीवन इतने विविध क्षेत्रों में जिस

प्रकार बँटा रहा है, उसकी कल्पना भी आश्चर्य में डालनेवाली है। विविध व्यापारी कम्पनियों, मिलों, वाम्बे कारपोरेशन, इम्पीरियल ट्रस्ट बोर्ड, मिलओनर्स एसोसियेशन, विक्टोरिया टैकनिकल इंस्टीटयूट, वाम्बे प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन, वाम्बे लेजिस्लेटिव कौंसिल और एंग्लोइंडियन टेम्परेंस एसोसियेशन आदि संस्थाओं से आपका निरन्तर सम्बन्ध रहा। विभिन्न पत्रों में धारावाही विवेचनात्मक लेख भी आप लिखते रहे। आपकी शक्ति और लगन सचमुच आश्चर्य में डालनेवाली है।

माण्ट-फोर्ड-सुधारों के अनुसार शासन-व्यवस्था क़ायम होने पर आप कौंसिल आफ स्टेट के सभासद चुने गये। इस वृद्धावस्था में भी आपके भाषण पाण्डित्य से भरे हुए रहते थे और उनसे मालूम होता था कि आपका अध्ययन कितना गहरा, कितना पूर्ण और कितना 'अपटूडेट' है। आप सदा अध्ययन में लगे रहते थे और जब स्वयं पढ़नें में असमर्थ होते थे तब दूसरों से पढ़वाकर सुना करते थे।

आपका स्वभाव मधुर और मिलनसार था। आप सभाओं में शेर की तरह दहाड़ते थे, लेकिन व्यवहार में बच्चे की तरह रहते थे। १९१५ में आपको सरकार ने 'सर' की उपाधि दी।

१८ फरवरी १९३६ के सवेरे ८.३० बजे फोर्ट (बम्बई) में अपने निवास-स्थान पर ९२ वर्ष की आयु में इस महारथी का देहावसान हो-गया। राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू कॉंग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर दिसम्बर १९३५ में बम्बई में थे। तब राजेन्द्र बाबू ने, आपके यहाँ जाकर आपके चरणों में नतमस्तक हो, समस्त राष्ट्र की श्रद्धाञ्जलि आपके चरणों में अर्पित की थी। आपकी मृत्यु से वह महान् व्यक्ति उठ गया, जो पचास वर्ष बाद आज भी ह्यूम और वेडरवर्न के समय के सार्वजनिक जीवन की याद दिलाता था और जो कॉंग्रेस के जन्म की एक जीती-जागती निशानी था।

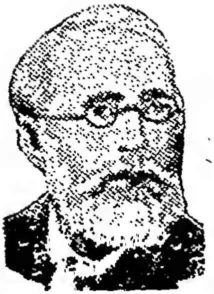

: १३ :

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

[१८४८—१९२५]

ग्यारहवां अधिवेशन, पूना—१८९५
अठारहवां अधिवेशन, अहमदाबाद—१९०२

सुरेन्द्रनाथ वनर्जी का नाम किसने नहीं सुना ? हिमालय से कन्या-कुमारी तक और सिन्ध से आसाम तक, किसी समय, वंगाल के इस शेर की आवाज़ गूँजती रही है। यही नहीं वल्कि भारत में काँग्रेस के मंच से उठी आपकी वुलन्द आवाज़ सभ्य संसार के दूर-दूर के कोने तक पहुँचती थी। "भाषा-प्रभुत्व, रचना-नैपुण्य, कल्पना-प्रवणता, उच्च भावुकता, वीरोचित हुंकार," डा० पट्टाभि सीतारामैया के शब्दों में, "इन गुणों में आपकी वक्तृत्व-कला को पराजित करना कठिन है—आज भी कोई आपकी समता तो क्या, आपके निकट भी नहीं पहुँच सकता।"

कलकत्ता के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में, १८४८ में, आपका जन्म हुआ था। आपके पिता वंगाल के उस समय के एक मशहूर एलोपैथ डाक्टर दुर्गाचरण वनर्जी थे, जिनके पाँच पुत्रों में आप दूसरे पुत्र थे। शिक्षा-प्राप्ति के लिए पहले पाठशाला भेजा गया। फिर ७ वर्ष के होने पर डोवेटन-कालेज में भर्ती हुए, जो मुख्यतः एंग्लो-इण्डियनों की शिक्षा-संस्था है। १८६३ में द्वितीय भाषा के रूप में लेटिन लेकर प्रथम श्रेणी में प्रवेशिका-परीक्षा पास की और जूनियर-छात्रवृत्ति प्राप्त की। इसी प्रकार एफ० ए० प्रथम श्रेणी में पास करने पर सीनियर छात्रवृति प्राप्त

की। १८६८ में ग्रेजुएट होकर प्रिंसिपल की सिफ़ारिश पर इण्डियन सिविल-सर्विस की परीक्षा के लिए इंग्लैण्ड गये। कहते हैं आपकी माता इसके लिए तैयार नहीं थीं, परन्तु जब रमेशचन्द्र दत्त और बिहारीलाल गुप्त जाने लगे तो मौक़ा पाकर आप भी चुपचाप चल दिये। १८७१ में, अपने पिता की मृत्यु के कुछ ही सप्ताह बाद, सिलहट के असिस्टेंण्ट मजिस्ट्रेट बनकर आप हिन्दुस्तान लौटे। लेकिन विधाता को तो आपसे कुछ और ही काम लेना था।

यह वह ज़माना था जब हिन्दुस्तानियों को ज़िम्मेदारी के पदों से यथासम्भव दूर रक्खा जाता था और कोई हिन्दुस्तानी थोड़े-बहुत ऊँचे पद पर पहुँच भी जाता तो उसपर बहुत सख्त निगाह रक्खी जाती थी। आपको इण्डियन सिविल-सर्विस में प्रवेश किये कोई दो साल हुए होंगे कि आपके 'आफ़िशियल कण्डक्ट' के बारे में आपपर कुछ इलजाम लगा दिये गये। आपने उनकी खुली जाँच की जाने पर ज़ोर दिया। जो कमीशन मुक़र्रिर हुआ था, उसने कलकत्ता से बाहर गुप्त रूप से अपना काम किया। उसका निर्णय कदाचित् पहले से जानी-बूझी बात थी। उसने आपको दोषी क़रार दिया और सरकार ने ५०) माहवार की बरायनाम पेंशन देकर आपको सिविल-सर्विस से अलग कर दिया। अपना मामला लेकर आप इंग्लैण्ड गये और निजी तौर पर भारत-मन्त्री से मिले, लेकिन निराश होकर लौटे। बुराई से भी भलाई पैदा हुई। सिविल-सर्विस से निकलना देश की ओर आना हुआ। आपको मिली हुई यह सज़ा देश के लिए निश्चय ही आशीर्वाद सिद्ध हुई।

सिविल-सर्विस से अलग हो सबसे पहले आपने शिक्षा के क्षेत्र में पैर रक्खा। १८७६ में आप मेट्रोपालिटन इंस्टीटयूशन में अंग्रेज़ी साहित्य के प्रोफ़ेसर होगये। १८८१ में फ़्री चर्च कालेज से भी आपका सम्बन्ध

होगया। १८८२ में आपने अपना खुद का स्कूल खोला, जिसमें शुरुआत में सौ विद्यार्थी थे, पर ७ वर्षों के अन्दर वह इतना वढ़ा कि रिपन कालेज के रूप में परिणत होगया, जो न केवल वंगाल वल्कि सारे हिन्दुस्तान की सर्वोच्च शिक्षा-संस्थाओं में गिना जाता है।

इसके वाद 'जर्नलिज्म' में प्रवेश किया। लार्ड लिटन की वाइसरायलटी के तूफ़ानी दिनों में श्री उमेशचन्द्र वनर्जी ने जिस 'वंगाली' पत्र को जन्म दिया था, उसे आपने अपनाया। दिलोजान से आप उसमें लग गये और उसे वहुत ऊँचे दरजे का पत्र वना दिया। साप्ताहिक से वह दैनिक होगया। उस समय वही ऐसा भारतीय पत्र था, जो रूटर के (विदेशी) तार मोल लेता था। निर्भीक पत्रकार को समय-समय पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। आप भी इसके अपवाद नहीं रहे। इलवर्ट विल के वक्त 'वंगाली' ने नौकरशाही और एंग्लो-इण्डियनों की निर्भीक आलोचना की, जिसका फल आपको शीघ्र मिल गया। १८८३ में एक मुक़दमे में कलकत्ता-हाईकोर्ट के एक जज ने शालिग्राम की मूर्त्ति को शहादत के लिए अदालत में पेश करने का हुक्म दिया। आपने 'वंगाली' में उसकी तीव्र आलोचना की, जिसके लिए अदालत की मान-हानि का मुक़दमा आपपर चलाया गया और माफ़ी माँग लेने पर भी जजों ने, सर आर० सी० मित्र के असहमत होने पर भी, वहुमत से आपको दो मास की सज़ा दे दी। सार्वजनिक जीवन में आप पहले ही प्रवेश कर चुके थे। इसलिए इस सज़ा से सर्वसाधारण का प्रेम और सहानुभूति आपके प्रति पैदा हुई। जेल से छूटकर आपने उत्तर-भारत का दौरा किया, जिसे सर हेनरी काटन ने अपनी पुस्तक 'न्यू इण्डिया' में विजय-यात्रा कहा है। आप जहाँ-जहाँ गये, वहाँ-वहाँ आपका वड़े उत्साह से स्वागत हुआ। सच तो यह है कि देश के राजनैतिक विकास में 'वंगाली' के द्वारा

आपने वहुमूल्य सेवा की है। राजनैतिक उतार-चढ़ावों के सब समय 'वंगाली' लोकमत को वनाने, शिक्षित करने और उसको संगठित करने में किसीसे पीछे नहीं रहा। सम्पादन में भी आपने इतनी ख्याति पैदा की कि १९१० में होनेवाली इम्पीरियल प्रेस कान्फ्रेन्स में भारत के प्रतिनिधि की हैसियत से आपको निमंत्रित किया गया, जिसमें आपने वहुत प्रभावशाली भाषण दिया। आपके भाषण के वाद लार्ड क्रोमर ने भारत के देशी अखवारों पर तानाकशी की। आपने उसी समय उसका मुँहतोड़ जवाव दिया। प्रसिद्ध सम्पादकाचार्य डब्लू० टी० स्टेड के शब्दों में आप 'सरेण्डर नॉट' थे। एक उपनिवेश के प्रतिनिधि पर इसका इतना प्रभाव पड़ा कि उसने कहा—"यदि भारत में सुरेन्द्रनाथ जैसे और भी आदमी हैं, तव उसे तुरन्त स्वशासन दे देना चाहिए।"

२६ जुलाई १८७६ को आप और आनन्दमोहन वसु आदि के संयुक्त प्रयत्न से कलकत्ता के इण्डियन एसोसियेशन का जन्म हुआ। जिस दिन उस एसोसियेशन का उद्घाटन होना था, उसी दिन आपके पुत्र का एकाएक देहान्त होगया। पर, आपका कर्तव्य-भाव इतना दृढ़ था कि फिर भी शाम को एसोसियेशन की स्थापना के समय उपस्थित रहे, क्योंकि वह कार्य आपकी दृष्टि में देश के लिए वहुत महत्वपूर्ण था। ऐसी ही एक घटना आपके जीवन में और मिलती है। वह आपकी प्रिय पत्नी के देहावसान की है। आपके मन की उस दिन की व्यथा की कल्पना कौन कर सकता है ? पर, अपने सम्पादकीय कर्तव्य की आपने उस दिन भी उपेक्षा नहीं की। नित्य की तरह उस दिन भी आपने अपना सम्पादकीय कार्य पूरा किया और अग्रलेख भी लिखा। सचमुच यह असाधारण घटनायें हैं जो आज भी आपको हमारी नज़रों में वहुत ऊँचा चढ़ानेवाली हैं। वहुत दिनों तक आप एसोसियेशन के मंत्री रहे और ३०-४० वर्षों

तक एसोसियेशन की कोई राजनैतिक हलचल ऐसी नहीं हुई, जिसमें आपका प्रमुख भाग नहीं रहा। एसोसियेशन की ओर से आपने दौरा भी किया और एक मसीह की तरह वैध आन्दोलन का सन्देश सारे देश को सुनाया।

काँग्रेस के आन्दोलन में आपका व्यक्तित्व प्रकाश-स्तम्भ की तरह रहा और बंगाल के शेर तथा देश के वेताज वादशाह के नाम से आपने ख्याति प्राप्त की। काँग्रेस के वम्वई के प्रारम्भिक अधिवेशन में तो आप सम्मिलित न हो सके,परन्तु उसके वाद तवतक सम्भवतः सभी अधिवेशनों में उपस्थित होते रहे, जवतक कि निश्चितरूप से आप उससे अलग नहीं होगये। प्रत्येक अधिवेशन में आप कई प्रस्ताव पेश करते थे और वहुत-से लोग तो आपका भाषण सुनने के लिए ही अधिवेशन में आते थे। वम्वई के १८८९ के पाँचवें अधिवेशन में चन्दे के लिए आपकी अपील पर ६०,०००) तुरन्त जमा होगया। इसी अधिवेशन के प्रस्तावानुसार धारासभाओं के सुधार के लिए आन्दोलन करने को एक शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड गया, आप भी उसमें थे। इंग्लैण्ड में आपने अनेक सभाओं में भाषण दिये और वहुत अच्छा असर डाला। चारों ओर आपकी वहुत प्रशंसा हुई। उस समय किसीने कहा था कि "पार्लमेण्ट तथा उससे वाहर जो अनुभवी वक्ता हैं, उन्हें सुरेन्द्रनाथ वनर्जी के रूप में एक ऐसा व्यक्ति देखने को मिला, जिसमें विलियम पिट की दहाड़ है, फ़ॉक्स की विवाद-पटुता है, वर्क का ताज़ापन है और शेरिडन का तेज़ विनोद है।" १८९० में कलकत्ता में हुई काँग्रेस के सभापति-पद से फ़िरोज़शाह मेहता ने भी आपके इंग्लैण्ड के काम की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। आपकी इन्हीं सेवाओं के लिए १८९५ में पूना में हुए काँग्रेस के ग्यारहवें अधिवेशन का आपको सभापति वनाया गया। उस समय काँग्रेस में अन्दरूनी मत-

भेद बहुत हो रहे थे, फिर भी आप राष्ट्र की नौका को सफ़ाई के साथ पार ले गये। सभापति-पद से आपने जो भाषण दिया, वह बहुत प्रभावशाली था। करीब तीन घण्टों तक धारा-प्रवाह बोलते गये, जिसमें प्रायः एक बार भी अपने लिखित भाषणों को आपने नहीं देखा और श्रोता मंत्रमुग्ध हो निस्तब्ध रहे। जिन लोग ने यह भाषण सुना था, उनका कहना है कि वह मानवोपरि था। उसके बाद १९०२ में अहमदाबाद में हुए १८ वें अधिवेशन के आप फिर सभापति हुए, जिसमें लगभग दो घण्टों तक आपका भाषण हुआ, जो पहले भाषण से भी अधिक प्रभावशाली और महत्वपूर्ण था।

वंग-भंग के साथ आपके राजनैतिक जीवन का स्मरणीय अध्याय शुरू होता है। आपने वंग-भंग का विरोध किया और उसके ख़िलाफ़ ज़ोरदार आन्दोलन संगठित किया। बंगाल-भर को आपने हिला दिया। इतने पर भी आन्दोलन सफल न हुआ, तो स्वदेशी तथा वहिष्कार का झण्डा लहराया और एक सिरे से दूसरे सिरे तक सारे बंगाल में जागृति की लहर पैदा कर दी। आपके विचारानुसार स्वदेशी तथा वहिष्कार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और वे एक-दूसरे से जुदा नहीं हो सकते। आज पुलिस का लाठी-प्रहार चाहे नई बात न रही हो, लेकिन उस ज़माने में वह बिलकुल नई बात थी। फरीदपुर की एक सभा में आपको पुलिस की लाठी का भी शिकार होना पड़ा था।

'सिटी फ़ादर' के रूप में आप बहुत पहले से म्युनिसिपल मामलों में बहुत दिलचस्पी लेते थे। १८७६ में कलकत्ता कारपोरेशन के आप पहली बार सदस्य चुने गये। तबसे १९०९ तक, जबकि न्यू म्युनिसिपल एक्ट के प्रतिवादस्वरूप आपने इस्तीफा दे दिया, आप उसके एक प्रमुख सदस्य रहे। इसी प्रकार आप कौंसिल के भी सभासद रहे। १८९३ में नई बनी हुई

कौंसिल के लिए पहलेपहल चुने जानेवाले लोगों में आप थे। १८९४ और १८९६ में कलकत्ता-कारपोरेशन की ओर से चुने गये और १८९८ में प्रेसीडेन्सी-डिवीजन की ओर से ज़िला-बोर्ड ने आपको चुना। १९०० में ज़िला-बोर्ड के चुनाव की बारी तो नहीं थी, पर म्युनिसिपल बिल कौंसिल में विचारार्थ पेश था। इसलिए सर जान वुडबर्न ने उसे रिआयतन चुनाव का मौक़ा दिया और उसने आपको ही दुबारा चुना। १८९५ का सेनिटरी ड्रेनेज एक्ट कौंसिल में मुख्यत: आपके ही कारण पास हुआ, पर कलकत्ता म्युनिसिपल एक्ट का विरोध सफल न हुआ। इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के लिए तो आप दो बार खड़े हुए, पर दोनों ही बार असफल रहे। काँग्रेस से अलग होने पर, उन लोगों के साथ जो नरम कहलाने लगे थे, आपने नैशनल लिबरल फ़ेडरेशन की स्थापना की और उसके सर्वप्रथम अधिवेशन (१८१८) के सभापति आप ही चुने गये थे। उसके बाद आप सरकार की नज़रों में चढ़ते गये और 'सर' तथा माण्ट-फ़ोर्ड सुधारों के बाद मिनिस्टर भी बने। निश्चय ही तब आपकी वह लोक-प्रियता नहीं रही; पर पूर्व-सेवाओं के लिए आपकी प्रतिष्ठा फिर भी होती रही। कलकत्ता-कारपोरेशन का जो रूप आज हम देखते हैं, वह मुख्यत: आपके मिनिस्ट्री-काल के सतत-प्रयत्न का ही शुभ-परिणाम है। अपने आन्दोलन के बीच जब गाँधीजी कलकत्ता गये थे, तब वह आपके सम्मानार्थ आपसे मिलने भी गये थे। यही नहीं, अपने और राष्ट्र के विकास-सम्बन्धी जो सुन्दर पुस्तक आपने लिखी थी, उसकी पाण्डुलिपि भी महात्माजी ने गुजरात-विद्यापीठ में सुरक्षित रखने के लिए आपसे माँगी थी। रिपन कालेज को देने का वचन दे चुकने के कारण आप उसे गाँधीजी को दे नहीं सके थे।

राजनीति के साथ ही समाज-सुधार की भावना भी आपमें विद्यमान

थी। आप ब्राह्मसमाजी थे और अपना विवाह अपनी पसन्द से किया था। आपके एक पुत्र और पाँच लड़कियाँ थीं। क्रियात्मक समाज-सुधारक होने के कारण लड़कियों की समुचित शिक्षा की आपने उपेक्षा नहीं की। समाज-सुधार के बारे में आपका रुख क्या था, यह 'बंगाली' के निम्न उद्धरण से स्पष्ट है :—

"सदियों से हम शक्ति की पूजा करते चले आ रहे हैं, फिर भी हमारा राष्ट्र इतना निर्बल और असहाय क्यों बना हुआ है ? सरस्वती के हम बड़े उपासक हैं, लेकिन हमें उसका प्रसाद बहुत ही कम मिला है। जो पुरोहित धर्म-कृत्यों पर अपना एकाधिकार किये हुए हैं और पूजापाठ कराने का ठेका लिये हुए हैं, उनमें से अधिकांश को आज वेदों का उतना ही ज्ञान है जितना कि उस प्राचीन काल में शूद्रों को था जब कि जाति रूपी लोहे की सलाखों से उनके लिए ज्ञान के द्वार बन्द किये हुए थे। लक्ष्मी की हम आये साल पूजा करते हैं, फिर भी हमारा राष्ट्र कंगाल बना हुआ है।

"कट्टर हिन्दू अपने पूर्वजों द्वारा प्राचीन काल में निर्मित सफ़ाई की कुछ विधियों पर मरे जाते हैं। उदाहरण के लिए, बिना नहाये भोजन करना या रोज कपड़े न धोना पाप समझते हैं। सफ़ाई के इन पुराने नियमों को धर्म मानते हुए भी आधुनिक विज्ञान से सिद्ध नियमों की वे बिलकुल परवा नहीं करते।.........इसमें ज्यादा बहस करने की जरूरत नहीं कि कट्टर हिन्दुओं की इतनी कट्टरता...........जो पुरानी प्रथाओं में ज़रा भी रद्दोबदल करना अपवित्र और पाप समझती है, निश्चय ही प्रगति के मार्ग में रुकावट है।"

स्वास्थ्य और दिनचर्या का भी आप खूब ध्यान रखते थे। हालाँकि काम आप कलकत्ता में करते थे, किन्तु रहते थे कलकत्ते से उत्तर की

ओर कोई १३ मील दूर एक गाँव मनिरामपुर में। बाग़बानी का आपको शौक था और अपनी फुरसत का काफ़ी समय आप अपने घर के आसपास लगाये हुए बाग़ में बिताते थे। ६० वर्ष से अधिक उम्र होजाने पर भी व्यायाम नियमित रूप से करते रहे। संभवत: यही कारण है कि आपको लम्बी आयु मिली और आयु के अन्तिम दिनों तक आपका स्वास्थ औरों की बनिस्बत अच्छा रहा। १९२५ नें कलकत्तें में आपका स्वर्गवास हो गया।

भले ही कोई आपके राजनैतिक लक्ष्य या उसे प्राप्त करने के साधनों से मतभेद रक्खे, लेकिन इस बात से शायद ही कोई इन्कार कर सकेगा कि भारतीय राष्ट्र को जागृत करने में आपका बहुमूल्य भाग रहा है और स्वदेशी व बहिष्कार की भावना के रूप में राष्ट्र को आपने अमोघ अस्त्र प्रदान किया है।

: १४ :

लालमोहन घोष

[१८४९—१९०९]

उन्नीसवाँ अधिवेशन, मदरास—१९०३

लालमोहन घोष काँग्रेस के मंच पर तो पहलेपहल छठे अधिवेशन (कलकत्ता १८९०) में आये, जब कि आपने ब्रैडला साहब के भारत-सरकार सम्बन्धी बिल पर प्रस्ताव उपस्थित किया था, किन्तु देश के लिए आप काँग्रेस के निर्माण से भी पहले से काम कर रहे थे। उससे पहले दो बार देश के मिशन पर और एक बार पार्लमेण्ट की सदस्यता के लिए आप इंग्लैण्ड के चक्कर भी लगा चुके थे, जिसमें दोबार तो भारत लौटने पर भारतीय जनता की ओर से सार्वजनिक सम्मान करके आपका आभार माना गया था और तीसरी बार जिस निर्वाचन-क्षेत्र से पार्लमेण्ट की सदस्यता के लिए उम्मीदवार हुए थे, उसके निर्वाचकों ने वहाँसे भारत के लिए विदा होते समय आपको मानपत्र दिया था।

१७ दिसम्बर १८४९ को कृष्णनगर (बंगाल) में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता रायबहादुर रामलोचन घोष ढाका-कालेज के संस्थापकों में से एक थे और बंगाल के न्याय-विभाग में तरक़्क़ी करते हुए ख़ास सदर अमीन के ओहदे तक जा पहुँचे थे। प्रारम्भिक शिक्षा आपकी कलकत्ता में हुई और कलकत्ता-यूनिवरसिटी की एण्ट्रेन्स (मैट्रिक) परीक्षा में आप

सारे प्रान्त में प्रथम रहे। १८६९ में बड़े भाई ने बैरिस्टरी के लिए आपको इंग्लैण्ड भेजा, जहाँसे १८७३ में बैरिस्टर होकर लौटे और कलकत्ता में बैरिस्टरी करने लगे।

आपके सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ इंडियन सिविल-सर्विस और उसकी परीक्षा के सिलसिले में उठे आन्दोलन से हुआ, जिसे नवनिर्मित इंडियन एसोसियेशन के मंत्री की हैसियत से श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने शुरू किया था। उसके सम्बन्ध में भारतीय विचारों को ब्रिटिश जनता तक पहुँचाने के लिए एक प्रतिनिधि की आवश्यकता थी। आपके रूप में वह मिल गया। १८७९ में, पार्लमेण्ट में पेश करने के लिए ढेरियों दरख्वास्तों के आवेदनपत्र के साथ, आप इंग्लैण्ड पहुँचे। अपनी योग्यता और अपने कौशल से आपने सुप्रसिद्ध जॉन ब्राइट का सहयोग एवं सहानुभूति प्राप्त की और इंग्लैण्ड की सभाओं में भाषण देने शुरू किये। पहला भाषण जॉन ब्राइट की अध्यक्षता में लन्दन के विलीज़ रूम में दिया; जिसका इतना असर पड़ा कि चौवीस घण्टे के अन्दर-अन्दर तत्कालीन सरकार ने सिविल-सर्विस का विधान तैयार करके उपस्थित कर दिया। इस सफलता के लिए, वापसी पर, ४ मार्च १८८० को कलकत्ता में आपका उत्साह-पूर्ण स्वागत हुआ और श्री क्रिस्तोदास पाल की अध्यक्षता में सभा करके सार्वजनिक रूप से देशवासियों की ओर से आपको धन्यवाद देने का प्रस्ताव पास हुआ। उसके कुछ ही महीने बाद भारत की आवश्यकतायें ब्रिटिश जनता के समक्ष उपस्थित करने के लिए, आपको फिर इंग्लैण्ड जाना पड़ा। उस समय आदिम जातियों की संरक्षक संस्था के वार्षिकोत्सव पर, १९ मई १८८० को आपने एक बहुत महत्वपूर्ण भाषण दिया। जुलू-नरेश के प्रति ब्रिटिश सरकार की नीति की आलोचना करते हुए आपने कहा कि "विचारणीय विषय के पक्ष-विपक्ष में

अपना कोई स्वार्थ न हो तव तो अंग्रेज़ वड़े अच्छे न्यायाधीश साबित होते हैं, पर जव इससे अन्यथा हो तो वे भी दूसरे मनुष्यों की ही तरह कमज़ोरियों से भरे हुए हैं। इसलिए इंग्लैण्ड के क़ानून में यह आदर्श रक्खा गया है कि अपने मामले में स्वयं कोई अपना न्यायाधीश न वने।" नवम्बर १८८० की शुरुआत में इस काम को निपटाकर आप हिन्दुस्तान लौटे। वम्वई के कावसजी इन्स्टीटयूट में माननीय माण्डलिक की अध्यक्षता में सभा करके आपका अभिनन्दन किया गया। वस, तभी से आपने भारत के राजनीतिक प्रश्नों में प्रमुख रूप से भाग लेना शुरू किया। १८८३ में इलवर्ट-विल के विरुद्ध उठे आन्दोलन में आपका जैसा शानदार भाषण हुआ, कहते हैं, वैसा योग्यतापूर्ण और शानदार राजनीतिक भाषण पिछले पचास वर्षों में कोई नहीं हुआ। उसके कुछ मास वाद आप फिर इंग्लैण्ड गये। इस वार पार्लमेण्ट के सदस्य वनने का आपका इरादा था। वहाँ अनेक लिवरल राजनीतिज्ञ आपसे वहुत प्रभावित हुए और कई निर्वाचन-क्षेत्रों ने आपको अपने वहाँसे खड़ा करना चाहा। आखिर डेप्टफ़ोर्ड से आप खड़े हुए, लेकिन होमरूल विल और लिवरल होने के कारण आयर-लैंण्ड वालों के वोटों से आप वंचित रह गये और दो वार कोशिश करने पर भी असफल रहे। इस प्रकार चुने तो नहीं गये, फिर भी डेप्टफ़ोर्ड वालों ने आपकी प्रशंसा की और आपको एक शानदार मानपत्र दिया, जो सार्वजनिक रूप से लार्ड रिपन के हाथों आपको भेंट किया गया था। १८८४ के अन्त में आप हिन्दुस्तान लौट आये और फिर कलकत्ता में वैरिस्टरी करने लगे। १९९२ के नये सुधारों की कौंसिल में प्रान्त के म्युनिसिपल समूह के प्रतिनिधि होकर निर्वाचित हुए। कौंसिल में आपने सर चार्ल्स ईलियट के जूरी-नोटिफ़िकेशन पर इतना महत्त्वपूर्ण भाषण दिया कि उसको उठा ही लिया गया।

काँग्रेस के मंच पर कलकत्ता में १८९० में हुए छठे अधिवेशन में आये और मदरास में १९०३ में हुए उन्नीसवें अधिवेशन में राष्ट्र ने आपको सभापति-पद का सम्मान प्रदान किया। इस अवसर पर आपने जो भाषण दिया था वह बहुत विद्वत्तापूर्ण था और अबतक उसको काँग्रेस के योग्यतम भाषणों में माना जाता है। वक्ता के ही रूप में आप विख्यात भी बहुत हुए हैं। यहाँतक कि जॉन ब्राइट और रोज़बरी जैसे वक्ताओं की उपस्थिति में अंग्रेज़ों की सभाओं में आपने भाषण दिये और उन सभी-ने आपकी सराहना की। एक उपनिवेश के एक विख्यात प्रधानमंत्री ने तो आपका भाषण सुनकर आश्चर्य के साथ कहा था—"यह काला आदमी मि० घोष बोलता तो बहुत बढ़िया है। साफ़-सीधी और विषयानुकूल बात कहता है। कौन-सी बात कहाँ ख़तम करनी चाहिए, यह बख़ूबी जानता है।" १९०९ में कलकत्ता में आपका स्वर्गवास हुआ।

: १५ :

सर हेनरी काटन

[१८४५—१९१२]

बीसवाँ अधिवेशन, बम्बई—१९०४

सर हेनरी काटन उन थोड़ेसे भारत-हितैषी अंग्रेज़ों में ऊँचा स्थान रखते थे, जो सिविल सर्विस में रहकर भी भारत की उन्नति हृदय से चाहते थे और सरकार से तीव्र मतभेद प्रकट करते हुए उसकी नाराज़गी और क्रोध की परवा नहीं करते थे।

सर हेनरी काटन का जन्म १३ सितम्बर सन् १८४५ को तंजौर के एक गाँव में हुआ। काटन-परिवार का सम्बन्ध भारत से बहुत पुराना था। सर हेनरी काटन के प्रपितामह कप्तान जोजेफ़ काटन ईस्ट इण्डिया कम्पनी में नौकर थे और बाद में उसके डाइरेक्टर होगये। उनके पुत्र जान काटन भी तंजौर में कलक्टर रहे और बाद में डाइरेक्टर बना दिये गये। उनके पुत्र और हेनरी काटन के पिता जोजेफ़ जान काटन ने मदरास की सिविल-सर्विस में सन् १८३१ ई० में प्रवेश किया और वहीं हेनरी काटन का जन्म हुआ।

आक्सफ़ोर्ड और लन्दन के किंग्स कालेज में आपने उच्च शिक्षा प्राप्त की। १८६७ में सिविल सर्विस की परीक्षा देकर भारत आये और २२ वर्ष की आयु में मिदनापुर ज़िले में असिस्टैण्ट मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए। ग्यारह वर्ष बाद आप चटगाँव के कलक्टर बना दिये गये। वहाँसे आप बोर्ड

आफ़ रेवेन्यू के सेक्रेटरी, पुलिस कमिश्नर, कलकत्ता कारपोरेशन के चेयरमैन, बंगाल-सरकार के चीफ़ सेक्रेटरी आदि विभिन्न पदों पर रहे। कुछ समय तक आप लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य भी रहे। १८९२ में सरकार ने आपको सी० एस० आई० का खिताब दिया। सन् १८९६ में आप सरकार के होम सेक्रेटरी और फिर आसाम के चीफ़ कमिश्नर बना दिये गये। सरकार ने आपको के० सी० एस० आई० की उपाधि भी दी थी।

आप यद्यपि उस सिविल सर्विस में आये थे जिसमें नम्रता और सेवा का अत्यन्त अभाव रहता है, तथापि आप इसके अपवाद थे। भारत से कुछ पुराना सम्बन्ध होने के कारण आप हृदय से भारतीयों को प्रेम करते थे। आप न केवल भारत की स्थिति का और विशेषकर उसमें जागृत हुई नवभावनाओं और आकांक्षाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करते रहे, किन्तु उनको उत्साहित और प्रेरित भी करते रहे। आपका यह विश्वास था कि सरकार की भारतीयों पर विश्वास न करने की नीति अनुचित है। भारतीयों को शासन में पूरे अधिकार देने के आप पक्षपाती थे। आप यह मानते थे कि वे अंग्रेज़ों से किसी तरह कम नहीं हैं। आप समय-समय पर अपने ये विचार उच्चाधिकारियों की अप्रसन्नता की परवा न कर उन्हें जताते रहते थे। पत्रों में भी आप यदाकदा लिखते रहते थे। १८७९ में आपके 'भारतवर्ष की आवश्यकता और इंग्लैण्ड का कर्तव्य' लेख से इंग्लैण्ड में बड़ा आन्दोलन हुआ। १८८५ में आपका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'न्यू इण्डिया' प्रकाशित हुआ। लार्ड रिपन की सुधार-नीति के आप कट्टर समर्थक थे।

आप केवल ब्रिटेन को ही उसका कर्तव्य नहीं बताते रहे, बल्कि भारतीयों को भी राजनैतिक विषयों में दिलचस्पी लेने के लिए प्रेरित करते रहते थे। सरकारी अफ़सरों की इस नीति के कि विद्यार्थियों को राज-

नीति में भाग नहीं लेना चाहिए, आप विरुद्ध थे। नवीन यूनिवरसिटी-एक्ट का आपने खुल्लमखुल्ला विरोध किया। लार्ड कर्जन के साथ बहुत-से विषयों पर मतभेद प्रकट किया। भारतीयों के प्रति किये जानेवाले अन्याय का भण्डाफोड़ करते हुए आप यह भी भूल जाते थे कि आप सर-कारी नौकर हैं। इसका एक उदाहरण दे देना काफ़ी होगा। आसाम के दरिद्र मजदूरों की करुण कहानी सुनाते हुए आपने बड़े लाट की कौंसिल में कहा था कि "यह दुखियों की रामकहानी है। हे लार्ड महोदय, मैंने इस शोचनीय विषय पर बहुत-कुछ कहा है। क्या मुझे अपने कथन के समर्थन में अभी कुछ और कहने की ज़रूरत है? क्या यह स्वतःसिद्ध नहीं है? क्या उनकी दुखःपूर्ण स्थिति के प्रति मुझमें क्रोध पैदा न होगा? मैं सच कहता हूँ कि इन अभागों की रामकहानी और इनके साथ हुए अन्याय और अनुचित बर्ताव का वर्णन करते-करते मेरी नसों का खून खौलने लगा है।" इस तरह की स्पष्टवादिता आपके समस्त सर्विस-काल में रही। इस सबका परिणाम निश्चित था, सरकार का असन्तोष। कहते हैं कि आप बंगाल के छोटे लाट बनाये जानेवाले थे, लेकिन आपको वह पद नहीं दिया गया। उच्चाधिकारियों से हमेशा की अनबन के कारण आपने १९०२ में सरकारी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया और इंग्लैण्ड चले गये।

स्वतंत्र होकर भारत के सम्बन्ध में आप और भी साहस के साथ प्रचार करने लगे। आपकी इन सेवाओं को भारत भूल न सकता था। १९०४ में बम्बई में होनेवाले काँग्रेस के बीसवें अधिवेशन के आप सभापति बनाये गये। आपका सभापति-पद से दिया हुआ भाषण एक विशेषता रखता है। सबसे पहले आपने ही संयुक्तराष्ट्र अमेरिका की तरह भारत के लिए स्वराज्य की योजना पेश की थी।

१९०५ में आप पार्लमेण्ट के उम्मीदवार खड़े हुए। काँग्रेस ने भी एक प्रस्ताव द्वारा आपका समर्थन किया। लन्दन में दादाभाई नौरोजी दो संस्थायें क़ायम कर आये थे। उनमें पूर्ण सहयोग देकर आप वरसों तक इग्लैण्ड में भारत के लिए आन्दोलन करते रहे। पार्लमेण्ट के सदस्य होकर भी आपने भारत को नहीं भुलाया और आप भारत के साथ अधिक उदार नीति वर्तने की आवश्यकता पर सदा जोर देते रहे। आप अंग्रेज़ थे और भारत में शासक वनकर आये थे। पर रहे यहाँ सेवक वनकर और यहाँसे लौटे उसके हितैषी होकर। १९१५ में आपके देहान्त से भारत का एक सच्चा, सहृदय और ईमानदार हितैषी इस संसार से उठ गया। भारत-हितैषी अंग्रेज़ों म आपका नाम सदा ही सवसे पहले कृतज्ञता के साथ लिया जाता रहेगा।

: १६ :

गोपाल कृष्ण गोखले

[१८६६—१९१५]

इक्कीसवाँ अधिवेशन, काशी—१९०५

श्री गोपाल कृष्ण गोखले को एक शब्द में महान् और एक वाक्य में महान् देशभक्त, महान् लोकसेवक, महान् वक्ता, महान् राजनीतिज्ञ और महान् अर्थशास्त्री कहा जा सकता है। अपने समय में आप काँग्रेस के कर्णधार और देश के राजनैतिक संग्राम के सेनापति रहे हैं। त्याग और तपोमय सरल जीवन विताते हुए राष्ट्र-सेवा आपके जीवन का लक्ष्य था।

आपका जन्म सन् १८६६ में कोल्हापुर नगर के एक निर्धन परन्तु सम्भ्रान्त ब्राह्मण परिवार में हुआ था। पिता की जल्दी ही मृत्यु हो जाने के कारण बड़े भाई पर आपके पालन-पोषण व शिक्षण का भार आ पड़ा। कोल्हापुर में एफ़ ए० पास कर आप बम्बई के उस एलफिंस्टन कालेज में भर्ती हुए, जिसे भारत के अनेक नेताओं और काँग्रेस के अनेक सभापतियों को पैदा करने का सौभाग्य प्राप्त है। १८ साल की छोटी आयु में ही आपने वी० ए० पास कर लिया और पूना के 'न्यू इंग्लिश स्कूल' में शिक्षक नियत होगये। यहीं न्यू इंग्लिश स्कूल अब फ़र्गुसन कालेज के नाम से प्रसिद्ध है। सर्वश्री चिपलूणकर, नामजोशी, आगरकर, आपटे और तिलक

के साथ आपने भी अपने अनवरत उद्योग, परिश्रम और आत्म-त्याग से इस स्कूल को शानदार कालेज बनाने में पूरा सहयोग दिया। आप केवल ७५) मासिक पर इस कालेज में गणित, इतिहास और अर्थशास्त्र पढ़ाते रहे। विद्यार्थियों और प्रोफेसरों में आप बहुत प्रिय थे। विद्यार्थियों से आपका सम्बन्ध केवल कालेज के अन्तरों तक ही सीमित नहीं रहता था, बल्कि अन्य समय भी आप उनके संसर्ग में रहते थे। भारत की राजनैतिक व सामाजिक समस्याओं की ओर उनका ध्यान खींचने और उनमें देश-प्रेम, सेवा तथा त्याग की भावना पैदा करने की आप कोशिश करते थे। आप अपने विषयों के प्रकाण्ड पण्डित थे। अपनी योग्यता और प्रतिभा के कारण शिक्षा के क्षेत्र में आपका लोहा माना जाता था। २७ वर्ष की ही आयु में आप बम्बई यूनिवरसिटी के 'फेलो' चुन लिये गये थे।

१८८७ का वह दिन आपके जीवन में सबसे महत्वपूर्ण था, जिस दिन आप पूना में स्वर्गीय महादेव गोविन्द रानाडे से मिले। रानाडे के जीवन से आप बहुत प्रभावित हुए। वस्तुतः आपके भावी चरित्र की रचना उन्हींके द्वारा हुई। रानाडे ने आपकी प्रतिभा व कुशाग्र बुद्धि और सेवा व त्याग की वृत्ति को तुरन्त भाँप लिया और आपको देशहित के कार्यों की ओर प्रेरित किया। रानाडे को गोखले के रूप में एक योग्य शिष्य और एक योग्य सहायक मिला और रानाडे के रूप में गोखले को मिल गया एक योग्य गुरु और अपनी योग्यता प्रकट करने का उत्तम अवसर। रानाडे द्वारा स्थापित सार्वजनिक सभा में आप भी काम करने लगे। इससे आपका जहाँ सेवा-क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया, वहाँ आपकी कार्यशीलता भी कई गुना बढ़ गई। रानाडे की इच्छानुसार सार्वजनिक सभा के 'क्वार्टर्ली रिव्यू' का सम्पादन आप १८८७ से करने लगे। डैकन एज्युकेशन सोसाइटी के कुछ समय तक मंत्री भी रहे। पूना के अंग्रेजी-

मराठी साप्ताहिक 'सुधारक' का भी आपने कुछ समय तक सम्पादन किया। चार वर्ष तक बम्बई प्रादेशिक सभा के आप मन्त्री रहे और १८९५ में पूना-काँग्रेस के भी मन्त्री होगये। रानाडे के आदेशानुसार भारतीय अर्थशास्त्र का आपने खूब अध्ययन किया और कुछ ही समय में इस विषय पर प्रामाणिक विद्वान समझे जाने लगे। भारत के व्यय की जाँच के लिए नियुक्त वेल्बी-कमीशन के सामने गवाही देने के लिए दीनशा ईदलची वाचा के साथ आप भी चुने गये। इंग्लैण्ड में कमीशन के सामने आपने जो गवाही दी और विभिन्न सभाओं में भारत की स्थिति पर आपने जो भाषण दिये, उनसे आपके भारतीय अर्थशास्त्र और राजनीति सम्बन्धी असाधारण ज्ञान और गंभीर पाण्डित्य का परिचय मिला। यहाँ आने पर आप बम्बई-कौंसिल के सदस्य नियुक्त हुए। कौंसिल में आपकी देशभक्ति, वाक्पटुता और अगाध पाण्डित्य का सिक्का जम गया। आपकी वादविवाद-शक्ति अपूर्व थी। जब भी बोलने खड़े होते थे, अकाट्य प्रमाणों और तर्कों की झड़ी लगा देते थे। १९०५ में आप सुप्रीम कौंसिल के सदस्य चुने गये। वहाँ आपके इन गुणों का विकास और भी अच्छी तरह हुआ। उन दिनों लार्ड कर्जन वाइसराय थे। वह बहुत योग्य और प्रतिभाशाली समझे जाते थे, लेकिन वह भी आपके आगे निरुत्तर हो जाते थे। आपका उन दिनों का जीवन बहुत ही शानदार रहा है। बजट पर आपकी वक्तृतायें इतनी सारगर्भित और आश्चर्यजनक होती थीं कि प्रतिवर्ष आपके भाषण बहुत उत्सुकता से सुने और पढ़े जाते थे। बजट के आँकड़ों की बारीक-से-बारीक भूलें आपकी दृष्टि से ओझल न हो सकती थीं। नमक-कर घटाने का मुख्य श्रेय आपको ही है। अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा के आप प्रबल समर्थक थे और प्रतिवर्ष इस आशय का बिल पेश किया करते थे, लेकिन आपको अन्त तक उसमें सफलता नहीं

मिली। यूनिवरसिटी विल का आपने इतनी योग्यता से विरोध किया कि लार्ड कर्ज़न के न बोलने का निश्चय कर लेने पर भी आपको जवाव देने के लिए बोलना पड़ा। ऐंग्लो-इण्डियन पत्रों ने भी यह स्वीकार किया था कि लार्ड कर्ज़न के उस भाषण से आपके भाषण का महत्व कुछ कम नहीं हुआ था। सिडीशन विल का भी आपने वड़े ज़ोरों के साथ विरोध किया था।

काँग्रेस के अत्यन्त प्रारम्भिककाल में ही आपका सम्वन्ध उसके साथ हो गया था। आप प्रायः प्रत्येक अधिवेशन में उपस्थित हुआ करते थे और विविध विषयों पर भाषण दिया करते थे। वरसों आप शहर या प्रान्तीय काँग्रेस के प्रमुख अधिकारी रहे। १९०५ में आप भारत की ओर से आन्दोलन करने के लिए इंग्लैण्ड गये थे। वहाँ आपने राजनैतिक आन्दोलन की धूम मचा दी थी। पचास दिन में ४५ व्याख्यान दिये, कितने ही लेख लिखे, संवाददाताओं और पार्लमेण्ट के सदस्यों से मिले। उसी वर्ष काशी में होनेवाले काँग्रेस के अधिवेशन के सभापति चुने गये। अपने भाषण में राजनैतिक शस्त्र के रूप में वहिष्कार का समर्थन करनेवाले आप सर्वप्रथम सभापति थे। आपने लार्ड कर्ज़न के शासन की औरंगज़ेबी शासन से उपमा दी थी। १९०७ में सूरत की काँग्रेस में नरम-गरम-दल का जो विस्फोट हुआ, उसका आभास १९०६ में ही मिल चुका था। गरमदल के नेता थे लोकमान्य तिलक और नरमदल के आप। १९०७ से १९१४ तक काँग्रेस नरमदल के हाथों में रही और १९१४ तक आप उसके प्रधान कर्णधार रहे। आप स्वभाव से ही इतने नरम और मधुर थे कि आपके जीवन में तीव्रता तथा उग्रता कहीं भी देखने में नहीं आती। प्रेम और सेवा की भावना आपमें पूरी तरह समाई हुई थी। व्रिटिश शासन को नष्ट करने के वजाय आप उसमें ऐसे सव सुधार चाहते थे, जिसमें भारतीय भी अंग्रेज़ों के समान अपनी उन्नति कर सकें। आप

सरकार से यथासम्भव पूरा सहयोग और आवश्यकता होने पर पूरा विरोध करने के पक्षपाती थे। जनता की आकांक्षायें आप वाइसराय तक पहुँचाते थे और सरकार की कठिनाइयाँ काँग्रेस तक। इसलिए लोगों और सरकार के बीच आपकी स्थिति कभी-कभी वहुत विपम होजाती थी। गरमदल आपकी नरमी की निन्दा करता था और सरकार आपकी उग्रता की। फिर भी आपकी लोकप्रियता अन्त समय तक वनी रही। अन्तिम दिनों में आप यह शिकायत करने लगे थे कि "नौकरशाही स्पष्टतः स्वार्थप्रिय और खुल्मखुल्ला राष्ट्रीय आकांक्षाओं के विरुद्ध होती जा रही है।"

सूरत के झगड़े के वाद आप दक्षिण अफ़्रिका गये और वहाँकी परिस्थिति का आपने अध्ययन किया। वहाँसे लौटकर गाँधीजी के सत्याग्रह-संग्राम की सहायता करने में आपने अपनेको लगा दिया। १९०९ की काँग्रेस में आपने सत्याग्रह की प्रशंसा की। लाखों रुपया यहाँसे दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह के लिए जमा किया। शर्तवन्दी कुली-प्रथा उठाने के लिए भी सफल आन्दोलन किया।

दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह में सहयोग देने का एक सुन्दर परिणाम यह हुआ कि गाँधीजी को आपने अपना वना लिया। गाँधीजी ने सत्य ही लिखा है कि "राजनैतिक क्षेत्र में गोखले ने जीते जी जैसा आसन मेरे हृदय में जमाया और जो देहान्त के वाद आज भी जमा हुआ है, वैसा और न जम सका।" गाँधीजी भारत में पहलेपहल सर फ़िरोज़शाह, लोकमान्य तिलक और गोखले से मिले थे। उन्होंने वहुत सुन्दर शब्दों में तीनों का वर्णन किया है। वह लिखते हैं कि "सर फ़िरोजशाह मुझे हिमालय, लोकमान्य समुद्र और गोखले गंगा की तरह मालूम हुए। मैं उस गंगा में नहा सकता था। हिमालय पर चढ़ना मुश्किल था, समुद्र में डूवने का डर था, लेकिन गंगा की गोदी में खेल सकता था, उसमें

डोंगी पर चढ़कर तैर भी सकता था।" वस्तुतः गाँधीजी के लिए भारत का कार्यक्षेत्र सुगम बनाकर गोखले ने गाँधीजी की और भारत की बड़ी भारी सेवा की है।

भारत-सेवक-समिति आपका बहुत महत्त्वपूर्ण रचनात्मक कार्य है। केवल ७५ रु० मासिक वेतन लेकर आप स्वयं त्यागमय जीवन बिताते रहे। जीवन-निर्वाह-मात्र के वेतन पर आजन्म मातृभूमि की सेवा का व्रत लेनेवाले कार्यकर्ताओं की आवश्यकता आप बहुत समय से अनुभव कर रहे थे। त्याग और तपोमय जीवन के बिना राष्ट्र की सेवा नहीं हो सकती, इस तत्त्व को आपने बहुत पहले ही समझ लिया था। इसी उद्देश से १२ जून १९०५ को आपने इस संस्था की स्थापना की।

आपका सम्पूर्ण जीवन सेवा, त्याग, तपस्या और सादगी का जीवन है। एक बुढ़िया के यह पूछने पर कि बड़े परिवारवाले के आदमी होकर आप सिर्फ़ ७५ रु० मासिक से अपना खर्च कैसे चलाते हैं ? इसका आपने बहुत ही अच्छा उत्तर दिया था कि 'देश में ऐसे अनेक हैं, जिनको दोबार भी पूरा भोजन नहीं मिलता, मेरा खर्च तो बहुत ज्यादा है।'

जब सरकार ने आपको के० सी० आई० ई० का खिताब दिया, तो आपने नम्रतापूर्वक उसे अस्वीकार कर दिया। तत्कालीन अन्य काँग्रेसी नेताओं की तरह यदि आप भी चाहते तो कोई ऊँचा सरकारी ओहदा लेकर आराम की ज़िन्दगी गुजार सकते थे।

इस तरह उत्कट देश-भक्ति, देश के लिए कठोर परिश्रम, महान् स्वार्थ-त्याग और देश-सेवामय जीवन व्यतीत करते हुए राजर्षि गोखले ने १९ फरवरी १९१५ को इस लोक से प्रयाण किया। लोकमान्य तिलक के शब्दों में आप वस्तुतः "भारतवर्ष के हीरे, महाराष्ट्र के रत्न और देश-भक्तों मे शिरोमणि थे।"

: १७ :

दादाभाई नौरोजी

[१८२५—१९१६]

दूसरा अधिवेशन, कलकत्ता—१८८६
नवाँ अधिवेशन, लाहौर—१८९३
बाईसवाँ अधिवेशन, कलकत्ता—१९०६

जिस व्यक्ति ने काँग्रेस की स्थापना के भी तीस वर्ष पूर्व से भारत की सेवा में अपना समस्त दीर्घ जीवन अर्पित कर दिया, भारत के उद्धार के लिए अविश्रान्त परिश्रम किया, अपनी कलम को भी कभी छुट्टी नहीं दी, काँग्रेस को स्थापित करने और पुष्ट बनाने में प्रमुख भाग लिया और उसे शासन-सम्बन्धी सर्व-साधारण की शिकायतें दूर करने का प्रयत्न करनेवाली जन-सभा से बढ़ाते-बढ़ाते स्वराज्य-प्राप्ति के निश्चित उद्देश से काम करनेवाली राष्ट्रीय महासभा बना दिया और अन्त तक काँग्रेस के साथ रहकर इंग्लैण्ड व भारत में काँग्रेस के झण्डे को ऊँचा रक्खा, वह महान् व्यक्ति पितामह दादाभाई नौरोजी थे।

दादाभाई नौरोजी के पूर्वज पारसियों में पुरोहिताई का काम करते थे। आपका जन्म ४ सितम्बर १८२५ को बम्बई में हुआ। ४ साल बाद पिता का देहान्त होजाने से माता पर आपके पालन-पोषण का पूर्ण भार आ पड़ा। बुद्धिमती माता ने आपके जीवन-निर्माण पर बहुत ध्यान दिया। दादाभाई ने अपनी माँ के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा था कि "सच तो यह है कि मैं जो-कुछ हूँ, माता की बुद्धि और चेष्टा का फल हूँ।" माता धनाभाव से पुत्र को न पढ़ा सकती, यदि आजकल की तरह उन दिनों

शिक्षणालयों में विद्या बिका करती। आप किसी तरह एलफिस्टन इन्स्टीट्यूट में भरती होगये। अपनी तीव्र प्रतिभा और परिश्रम के कारण आपको कालेज में लोकप्रिय होने में अधिक समय नहीं लगा। हर परीक्षा में आप इनाम पाते। गणित और विज्ञान में आपकी विशेष रुचि थी। आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर वम्बई एज्युकेशन बोर्ड के अंग्रेज सभापति ने आपको विलायत जाकर क़ानून पढ़ने की सलाह दी और आर्थिक सहायता देने का वचन दिया। अपने अभिभावकों के विरोध की वजह से आप वहाँ न जा सके और एलफिस्टन स्कूल में असिस्टेण्ट हैडमास्टर होगये। कालेज के गणित व पदार्थ-विज्ञान के यूरोपियन प्रोफेसर के मरने पर आप प्रोफेसर नियत किये गये। उन दिनों किसी भारतीय का उक्त कालेज में प्रोफेसर बनना अनहोनी बात थी। आप पहले भारतीय प्रोफेसर थे। १८४५ से १८५५ तक आप अध्यापन-कार्य करते रहे।

अध्यापन-कार्य के साथ-साथ आप सार्वजनिक जीवन के विविध क्षेत्रों में भी काम करते रहे। बम्बई में कन्या-शिक्षा का प्रारम्भ आप ही के द्वारा हुआ। पहला गर्ल-स्कूल खोलने का श्रेय आपको ही है। आप 'कन्या-पाठशालाओं के जनक' कहे जा सकते हैं। आपके विविध क्षेत्रों के कार्य का परिचय देने के लिए उन कुछ संस्थाओं के नाम ही लिख देने काफी होंगे, जिनसे आपका इन दस वर्षों में सम्बन्ध रहा। वे संस्थायें ये हैं—स्टूडेण्ट्स लिटरेरी साइण्टिफिक सोसायटी, गुजराती ज्ञान-प्रचारक-सभा, बम्बई एसोसियेशन, पारसी धर्म-सुधारक मण्डली, विक्टोरिया एण्ड एडवर्ड म्यूजियम और पुत्री-पाठशाला। प्रायः इन सभी संस्थाओं में आप विशेष भाग लेते थे। इतने कार्यों से भी आपको संतोष न था, इसलिए १८५१ में 'रास्त-गुफ्तार' (सत्यवादी) नाम का पत्र निकाला। समय-समय पर आप विभिन्न विषयों पर गम्भीर विवेचनात्मक निबन्ध भी लिखते रहे।

१८५५ में आपने व्यापार की ओर ध्यान दिया और 'कामा ऐण्ड कम्पनी' की लण्डन-स्थित कोठी का काम करने लण्डन चले गये। लण्डन जाकर व्यापार करते हुए आपने सार्वजनिक सेवा का वह क्रम जारी रक्खा, जिसका सूत्रपात् अध्यापन-काल में हो चुका था। सार्वजनिक सेवा जब स्वभाव का अंश बन जाता है, तब निकम्मा नहीं बैठा जा सकता। व्यापार से अतिरिक्त समय विभिन्न पत्रों के लिए लेख लिखने में बीतने लगा। आपका मुख्य विषय था भारत और भारतीयों की शोचनीय स्थिति। भारत का दुःख ब्रिटिश सरकार को सुनाने का बीजारोपण सबसे पहले आपने किया। लण्डन इण्डियन सोसायटी और ईस्ट-इण्डियन एसोसियेशन दोनो संस्थायें आपके परिश्रम का फल हैं। इन दोनों संस्थाओं का उद्देश्य था इंग्लैण्ड के प्रमुख राजनीतिज्ञों और जनता को भारत की परिस्थितियों, आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से परिचित करना। ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन को बहुतसे भारत-हितैषी अंग्रेजों का सहयोग प्राप्त होजाने से इस कार्य में बहुत प्रगति हुई। विभिन्न मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्रों में भारत के विभिन्न पहलुओं पर प्रामाणिक लेख और छोटे-छोटे ट्रैक्ट प्रकाशित कर इन संस्थाओं ने अपना कार्य शुरू किया। आप इतने अधिक व्यस्त रहते कि आपको आराम करने के लिए एक क्षण भी नहीं मिलता। आपका यह सिद्धान्त था कि यह संसार आराम करने के लिए नहीं है, यह तो कार्य-क्षेत्र है। आपने लिखा है कि "एक दिन मेरे हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं जो-कुछ बना हूँ, सब जनता की बदौलत। मेरा फ़र्ज़ है कि मैं अपनी योग्यता, कार्यक्षमता, शरीर, मन और आत्मा से—जो-कुछ भी मेरे पास है, उस सबसे जनता की सेवा करूँ।" आपका सम्पूर्ण जीवन इसी विचार के अनुरूप व्यतीत हुआ। कुछ समय तक आप लन्दन-यूनिवरसिटी में गुजराती के प्रोफेसर होकर भी रहे।

१२-१३ साल तक लण्दन में भारत के लिए महान् आन्दोलन करके आप १८६९ में भारत लौटे। यहाँ आपका विराट् स्वागत हुआ और आपकी सेवाओं की स्मृति में तीस हज़ार रुपये की थैली आपको भेंट की गई। आपने उसमें से एक पैसा भी अपने पर व्यय न कर सारी रक़म देश के कामों में लगा दी।

यहाँ आकर आपने भारत की आर्थिक स्थिति का और भी गम्भीर अध्ययन किया और यह सिद्ध करने का यत्न किया कि ब्रिटिश शासन में हर भारतीय की औसतन वार्षिक आय २०) से अधिक नहीं ह, जब कि प्रत्येक व्यक्ति से ३) टैक्स लिया जाता है। आपकी यह स्थापना आगे जाकर बहुत प्रसिद्ध हुई। इस समय के लिखे हुए आपके अनेक लेख आज भी भारतीय अर्थशास्त्र के विद्यार्थी के लिए पढ़ने की चीज़ हैं। १८७३ में पार्लमेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाही देने आपको फिर इंग्लैण्ड जाना पड़ा। १८७४ में वापस आने पर बड़ौदा नरेश ने आपको अपना दीवान बनाया। लेकिन आप वहाँ अधिक न रह सके। कुछ साल तक आप बम्बई की स्थानीय संस्थाओं में रहकर काम करते रहे। १८८५ में आप बम्बई-कौंसिल के सदस्य नियत किये गये। उसी साल आपने काँग्रेस की स्थापना में प्रमुख भाग लिया।

लण्डन में रहते-रहते आपने यह अनुभव किया था कि भारतीयों के दुःखों को दूर करने के लिए भारत की अपेक्षा लण्डन में अधिक प्रचार करने की आवश्यकता है। उस समय के अन्य काँग्रेसी नेताओं का भी ब्रिटिश सरकार के न्याय पर विश्वास था। इसीलिए काँग्रेस ने लण्डन में प्रचार की ओर काफ़ी ध्यान दिया। आपने पार्लमेण्ट में भारत की आवाज़ सुनाने के लिए उसके सदस्य होने का निश्चय किया। पार्लमेण्ट को आप युद्ध का रणक्षेत्र समझते थे। इसी उद्देश से आप लन्दन गये। लेकिन

वहाँ सफलता न मिलने पर उसी साल वापस चले आये। काँग्रेस का कलकत्ता में जो दूसरा अधिवेशन हुआ, उसके आप ही सभापति हुए। १८८७ में लण्डन वापस जाकर आप लेखों और भाषणों द्वारा भारत के लिए आन्दोलन करने लगे। बाद में श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि का भी आपको सहयोग प्राप्त हुआ। १८९२ में पार्लमेण्ट के चुनाव में आप फिर खड़े हुए और सफल हुए। इस विजय के उपलक्ष्य में १८९३ में लाहौर में होनेवाली काँग्रेस के आप फिर सभापति बनाये गये। पार्लमेण्ट में आप भारत के लिए निरन्तर लड़ते-झगड़ते रहे। १८९५ में आपके प्रयत्नों से भारतीय आर्थिक स्थिति की जाँच के लिए एक शाही कमीशन बनाया गया। लिबरल दल के पतन के साथ यह पार्लमेण्ट तीन साल में ही भंग हो गई। १९०५ में आप चुनाव में फिर खड़े हुए, पर सफल नहीं हुए। १९०६ में आप तीसरी बार कांग्रेस के सभापति चुने जाकर भारत आये। बम्बई में आपका विराट् स्वागत किया गया।

कलकत्ता की १९०६ की काँग्रेस एक विशेष महत्त्व रखती है। बंग-भंग के कारण राष्ट्र में एक हलचल-सी हो रही थी। नरम और गरम दलों का निर्माण हो चुका था। काँग्रेस का सभापतित्व झगड़े की चीज़ था। लेकिन आपके नाम के प्रस्ताव पर दोनों दल चुप होगये। इस अधिवेशन में आपने काँग्रेस के मंच पर से पहलेपहल उस शब्द का प्रयोग किया, जो आज प्रत्येक भारतीय की ज़बान पर चढ़ा हुआ है। वह शब्द है 'स्वराज्य'। देश की माँग इससे पहले इतने स्पष्ट और निश्चित शब्दों में नहीं रक्खी गई थी। उसके बाद आप काँग्रेस के कार्यों में विशेष भाग न ले सके।

उस समय आपकी अवस्था ८१ वर्ष की हो चुकी थी। फिर भी आप लण्डन पहुँचे और भारत के लिए आन्दोलन करते रहे। पर, आपका

वयोवृद्ध शरीर यह अन्याय सहन नहीं कर सका और आप बीमार पड़ गये। डाक्टरों की सलाह से भारत में अपने गाँव में आकर रहने लगे। कई वर्षों तक आपका गाँव वरसोवा तीर्थ बना रहा। भारत के नेता आते और मातृभूमि के इस आजन्मसेवक के पुण्य दर्शन करते, सलाह लेते और अधिक शक्ति व प्रेरणा प्राप्त कर वापस चले जाते। ३० जून १९१७ को भारत के इस पितामह का देहावसान होगया और भारत का एक महान् सेनापति उठ गया।

: १८ :

रासविहारी घोष

[१८४५—१९२१]

तेईसवां अधिवेशन, सूरत—१९०७

चौवीसवां अधिवेशन, मदरास—१९०८

सूरत में १९०७ में होनेवाले कांग्रेस के वदनाम अधिवेशन के, जोकि आपस के झगड़ों के कारण दरअसल हो ही नहीं पाया, सभापति चुने जाने वाले डा० रासविहारी घोष एक ऐसे व्यक्ति थे जो पैदा तो हुए थे मध्यम श्रेणी के एक परिवार में, परन्तु अपनी प्रतिभा और अध्ययन-शीलता के कारण अपने समय में चोटी पर पहुँच गये थे। यह ठीक है कि उस समय भी आपके विचार 'गरम' नहीं थे और सूरत में झगड़ा खड़ा होने का मुख्य कारण भी यही था, परन्तु थे आप सच्चे अर्थों में भारतीय। आपने खुद ऊँचे उठकर ही भारत का मान नहीं वढ़ाया, वल्कि देश और उसकी प्रतिष्ठा पर जव भी कोई प्रहार हुआ तव आप सदा उसके विरोध में खड़े होते दिखाई दिये।

वंगाल के तोरेकोना गाँव ज़िला वर्दवान में २३ दिसम्वर १८४५ को आपका जन्म हुआ था। अपने पिता वावू जगवन्धु घोष के आप सव-से वड़े पुत्र थे। प्रारम्भिक शिक्षा वाँकुड़ा क़स्वे में हीं हुई, जहांसे कलकत्ता आकर १८६० में आपने एण्ट्रेस-परीक्षा पास की। १८६१ की शुरुआत में कलकत्ता में ही प्रेसिडेंसी-कालेज में पढ़ने लगे। १८६२ में एफ़० ए० में पास होनेवालों में सर्वप्रथम रहे। जनवरी १८६५ में वी० ए० में लगभग वैसी ही सफलता मिली और जनवरी १८६६ में

फर्स्ट क्लास आनर्स के साथ अंग्रेज़ी में एम० ए० किया, जो किसी भारतीय के लिए पहली ही बात थी। १८६७ में बी० एल० भी फ़र्स्टक्लास में पास किया और सब विद्यार्थियों में सर्वप्रथम रहने के कारण १००) का स्वर्ण-पदक पाया। फ़रवरी १८६७ में वकालत शुरू की, लेकिन अध्ययन फिर भी जारी रहा और चार साल बाद आनर्स-इन-लॉ के इम्तिहान में शरीक होकर पास हुए। धीरे-धीरे आपकी योग्यता और वकालत की सर्वत्र ख्याति फैलने लगी।

क़ानून के आप प्रकाण्ड पण्डित थे। हिन्दू, मुस्लिम और इंग्लिश क़ानूनों का तुलनात्मक अध्ययन आपका बहुत अधिक था। रात दिन पढ़ने में लगे रहने और स्मृति बहुत तेज़ होने के कारण आपने इसमें बहुत ज्यादा प्रगति की और सबने आपका लोहा माना। १८७५-७६ में आप कलकत्ता-यूनिवरसिटी की टैगोर प्रोफ़ेसर ऑफ़ लॉ की चेयर के लिए चुने गये, जिसके सिलसिले में भारत के बन्धक क़ानून पर आपके बारह व्याख्यान हुए। वे इतने ऊँचे दर्जे के थे कि पाठ्य-पुस्तक के लिए पसन्द किये गये और सुप्रीम कोर्ट के लॉ-मेम्बर डा० व्हिटले स्टोक्स ने इस सम्बन्धी क़ानून बनाते समय उनसे बड़ी मदद ली, जिसका अपनी 'एंग्लो-इण्डियन कोड्स' पुस्तक में उन्होंने उल्लेख भी किया है। इसके बाद ही आपकी मानप्रतिष्ठा खूब बढ़ने लगी थी और वकालत भी बहुत चमक उठी थी।

१८७७ में आप पहलेपहल कलकत्ता-यूनिवरसिटी की बी० एल० परीक्षा के परीक्षक बनाये गये और १८७९ में यूनिवरसिटी के तत्कालीन वाइस-चान्सलर सर विलियम मार्कबी के कहने पर यूनिवरसिटी के 'फ़ेलो' नामज़द हुए। १८८४ में आपको यूनिवरसिटी से 'डॉक्टर ऑफ़ लॉ' की डिग्री मिली और १८८७ में यूनिवरसिटी-सिण्डिकेट के सदस्य

चुने गये, जो १८९९ तक रहे। १८८९ में बंगाल-कौंसिल के सदस्य नियुक्त हुए और १८९१ में, सर रमेशचन्द्र दत्त की मृत्यु हो जाने पर, सुप्रीम कौंसिल के सदस्य नियुक्त हुए और १८९३ में फिर उसके सदस्य बनाये गये। १८९३ में कलकत्ता-यूनिवरसिटी की लॉ-फ़ैकल्टी के प्रधान चुने गये और १८९५ तक रहे।

वंग-भंग का आपने विरोध किया, स्वदेशी का समर्थन किया और यूनिवरसिटी-कन्वोकेशन के भाषण में लार्ड कर्जन ने भारतीयों पर जो लाँछन लगाये थे, उसके विरोध में १० मार्च १९०५ को जो मशहूर सभा हुई थी, उसके सभापति भी आप ही हुए थे। कौंसिल में प्रायः सभी मामलों में आपने दिलचस्पी ली और दो महत्वपूर्ण बिल स्वयं पेश किये, जिससे १८९६ में सी० आई० ई० बनाकर सरकार ने आपका सम्मान किया। इन दो बिलों में एक तो ज़ाब्ता फ़ौजदारी में यह धारा जोड़ने का था कि जिस आदमी की अचल सम्पत्ति किसी डिक्री के लिए बेच दी गई हो, वह यदि तीस दिन के अन्दर-अन्दर इतनी रक़म जमा कर दे जो सम्पत्ति की बिक्री की रक़म से पाँच प्रतिशत ज्यादा हो, तो उसकी सम्पत्ति लौटाई जा सकती है। दूसरा बिल संयुक्त परिवार के सम्पत्ति-विभाजन के बारे में था, जिसमें यह विधान रक्खा गया था कि संयुक्त परिवार का कोई हिस्सेदार यदि मकान के दूसरे हिस्से के लिए उतनी ही रक़म देने को तैयार हो जितनी कोई अन्य व्यक्ति लगाता हो, तो वह हिस्सा दूसरे को न देकर उसे देदिया जायगा। कहना न होगा कि इन दोनों बिलों को सरकार ने मंजूर करके क़ानून बना दिया। सिडीशस मीटिंग्स एक्ट का विरोध करते हुए अपने क़ानूनी पाण्डित्य के ज़ोर पर आपने बताया था कि यह क़ानून शायद रूस को छोड़कर किसी भी देश के क़ानून से मेल नहीं खाता, हालांकि राजद्रोहियों की कहीं भी

कमी नहीं है बल्कि आधुनिक यूरोप में अनार्किस्टों व सोशलिस्टों की गुप्त संस्थाओं का जाल बिछा हुआ है। वजट की भी आपने बड़ी योग्यतापूर्ण आलोचनायें कीं। इन्हीं सब कारणों से जनता व सरकार दोनों ने आपका सम्मान किया। सरकार ने बाद में आपको 'सर' की उपाधि दी, इधर देश ने काँग्रेस का सभापतित्व प्रदान करके आपका सम्मान किया।

काँग्रेस के साथ आपकी सहानुभूति सर्वविदित है। काँग्रेस के प्रारम्भिक वर्षों में आप उसके प्रतिनिधि हुए और बाद में उसकी कार्रवाई में क्रियात्मक भाग भी लेते रहे। १९०६ में कलकत्ता में हुई बाईसवीं काँग्रेस के आप स्वागताध्यक्ष हुए थे, पीछे सूरत में होनेवाली १९०७ की काँग्रेस के सभापति चुने गये। नरम-गरम के झगड़े में वह काँग्रेस भंग होजाने पर १९०८ में मदरास में जो क़न्वेन्शन हुआ, उसके भी आप ही सभापति थे। उसमें काँग्रेसभक्तों के लिए दो महत्वपूर्ण ध्येय बनाये गये थे। आपस के झगड़ों को लेकर काँग्रेस का मज़ाक उड़ानेवालों को आपने खूब जवाब दिया।

राष्ट्रीय शिक्षा के आप समर्थक थे और औद्यौगिक शिक्षा के लिए आपने भारी रक़में दान की थीं। १९१० में कायस्थ महासभा के सभापति-पद से इलाहाबाद में आपने जो भाषण दिया था, उससे मालूम पड़ता है कि साम्प्रदायिता से आप बिलकुल मुक्त थे। स्त्री-शिक्षा के लिए आपने अपनी माता के नाम पर पदक के रूप में एक पुरस्कार की स्थापना की थी।

वस्तुतः आप अध्ययन-जीवी व्यक्ति थे। आपका ज्यादातर समय अध्ययन में जाता और रात को हमेशा देर तक पढ़ते रहते, जिससे सुबह नौ बजे सोकर उठते। अदालत की छुट्टियों के बीच विदेशों का ज्ञान

प्राप्त करने निकल जाते और ऐसा करते हुए सीलोन ही नहीं बल्कि फ्रांस, इटली व इंग्लैण्ड तक का आपने भ्रमण किया। विवाह आपने दो बार किया, पर रहे निःसन्तान और आखिरी दिनों में आपको विधुर जीवन ही बिताना पड़ा। हाँ, नाते-रिश्तेदारों की आप हमेशा फ़िक्र रखते और उन्हें सहायता पहुँचाते रहे। पोशाक में आप सदा हिन्दुस्तानी रहे। अंग्रेजी के इतने विद्वान् होने पर भी आप सदा अचकन ही पहनते रहे।

१९१७ में आपको कलकत्ता में वकालत करते हुए पचास साल हो चुके थे, इसलिए वकील असोसियेशन और कलकत्ता-यूनिवरसिटी ने उस अवसर पर मान-पत्र देकर आपका सम्मान किया। १९२१ की २८ जनवरी को आपने इस संसार से विदा लेली और भारत का एक चमकता हुआ सितारा अस्त होगया।

: १६ :

विलियम वेडरबर्न

[१८३६—१९१८]

पांचवाँ अधिवेशन, बम्बई—१८८९

पच्चीसवाँ अधिवेशन, इलाहाबाद—१९१०

भारत-हितैषी सर विलियम वेडरवर्न राजर्षि गोखले के शब्दों में अत्यन्त आदरणीय व्यक्ति और आधुनिक ऋषि थे। आधी शताब्दी तक निरन्तर भारत की निःस्वार्थ सेवा करनेवाले काँग्रेस के संस्थापक इस महापुरुष के यथार्थ स्वरूप को अभिव्यक्त करने के लिए महादेव गोविन्द रानाडे ने भी ठीक ही कहा था कि "जितने अंग्रेज़ों से मेरा परिचय हुआ, उनमें से कोई भी सर विलियम वेडरवर्न के साथ खड़ा नहीं किया जा सकता।"

आपका जन्म ग्लौसेस्टरशायर (इंग्लैण्ड) में २५ मार्च १८३६ को हुआ था। एडिनवरा यूनिवरसिटी में शिक्षा प्राप्त कर इण्डियन सिविल-सर्विस की परिक्षा दी और २५ नवम्बर १८६० को वम्बई प्रान्त की सिविल सर्विस में प्रवेश किया।

१८६० से १८८५ तक आपने विविध पदों पर काम किया। वरसों तक आप ज़िला मजिस्ट्रेट, कुछ समय तक हाईकोर्ट के जज तथा वम्बई-गवर्नर की कौंसिल के सदस्य रहे और वाद में वम्बई-सरकार के पोलिटिकल सेक्रेटरी होगये। उसके वाद आपने अन्य भी कितने ही ऊँचे

पदों पर काम किया, लेकिन पच्चीस वर्षों के इस सेवा-काल में एक बात जो स्पष्टरूप से प्रजा के सामने रही, वह यह है कि आप जहाँ गये वहीं आपने अपनी सहृदयता, कर्तव्य-बुद्धि, लगन और सेवा-भाव से लोकप्रियता प्राप्त की। सबसे अधिक ध्यान आपका जिस प्रश्न की ओर गया, वह था भारतीय किसानों की समस्या। उन दिनों होनेवाले दुर्भिक्षों से तो आपका हृदय विदीर्ण होगया। आपने अनुभव किया कि ब्रिटिश सरकार की शासन-नीति के कारण ही ग्रामीण भारतीयों की अवस्था दिन-प्रति-दिन खराब होती जा रही है। आप सदा उच्च अधिकारियों का ध्यान भारत के इस महान् किन्तु दरिद्रतम अंग की ओर खींचते रहे। १८८२ में आपने पूना के पुरन्दर ताल्लुके के किसानों की आर्थिक स्थिति के सुधार के लिए एक योजना तैयार की। इस योजना का स्थूल रूप यह था कि सब कर्ज़दार किसानों का कर्ज़ महाजनों से समझौता कर उन्हें सरकार चुका दे और एक कृषि-बैंक खोलकर बहुत कम सूद पर कृषकों को रुपया दिया जाय, जो छोटी-छोटी किस्तों में उनसे वसूल किया जाय। उस योजना को बम्बई-गवर्नर के पास भेजने से पूर्व किसानों और महाजनों को भी आपने उससे सहमत कर लिया। बम्बई-गवर्नर सर जेम्स फ़र्गुसन और तत्कालीन वाइसराय ने उस योजना को स्वीकृत कर भारत-मंत्री की अनुमति के लिए उसके पास भेजा। कई वर्ष उसके बारे में पत्र-व्यवहार करने और आपत्तियाँ उठाने में बिता देने के बाद भी १८८७ में बतौर परीक्षण के अमल में लाने तक से इन्कार कर दिया गया।

१८८५ में आप सिविल सर्विस से अलग होगये, लेकिन भारत की सेवा से आप अन्त तक विमुख नहीं हुए। स्वतन्त्र होकर और भी अधिक उत्साह और लगन के साथ आप भारत की सेवा में लग गये। जिन

समस्याओं का अध्ययन आपने नौकरी के दिनों में किया था, उनके लिए आन्दोलन करने का काम आपने इंग्लैण्ड में शुरू किया। १८८९ की काँग्रेस के अध्यक्ष-पद से दिये हुए भाषण में आपने कहा था कि "एक चौथाई सदी तक मैंने भारत की सेवा की और भारत का नमक खाया है। मैं आशा करता हूँ कि अपना शेष जीवन भी भारत की सेवा में अर्पित कर दूँगा।"

जीवन के अन्तिम दिन तक आपने अपने इस व्रत को निभाया। लेखनी और वाणी द्वारा आप भारतीयों के लिए जोरों के साथ आन्दोलन करते रहे। १८९३ में आप पार्लमेण्ट के सदस्य चुने गये। दादाभाई नौरोजी भी उस समय पार्लमेण्ट के सदस्य थे। आप दोनों ने मिलकर भारतीय पक्ष को ज़ोरों के साथ पार्लमेण्ट के सामने रखना शुरू किया।

१८९३ से १९०० तक आप पार्लमेण्ट के सदस्य रहे। वहाँ आप बराबर ब्रिटिश शासन को भारतीयों की शोचनीय अवस्था का मुख्य कारण बताते रहे। आप कहा करते कि शासन-प्रबन्ध में भारतीयों की कोई आवाज़ नहीं है। हम उनके कष्टों को जान नहीं सकते। जूता कहाँ काटता है, यह पहननेवाला ही बता सकता है, पहनानेवाला नहीं। भारतीय किसान की आर्थिक अवस्था और दुर्भिक्षों की जाँच निष्पक्ष रूप से करने पर ज़ोर देते हुए आप कहा करते कि हम खूब बहस के बाद अपने एक-एक पैसे का व्यय करने की स्वीकृति देते हैं, लेकिन भारत के बजट को, जिसका सम्बन्ध तीस करोड़ भारतीयों से है, अन्धाधुन्ध पास कर देते हैं। इण्डियन फेमिन यूनियन के अध्यक्ष, फ़ाइनेंस कमीशन के सदस्य और हाउस आफ़ कामन्स की पोलिटिकल कमेटी के चेयरमैन रहकर भी आपने भारत की सेवा की।

काँग्रेस के तो आप संस्थापक ही थे। १८८९ में काँग्रेस का सभापति

चुनकर आपको आपकी सेवाओं के लिए सम्मानित किया गया। उस काँग्रेस की एक विशेषता यह भी थी कि उसमें १८८९ ही प्रतिनिधि आये थे। आपकी सबसे बड़ी सेवा ब्रिटिश काँग्रेस कमेटी का संचालन करना था। काँग्रेस के कर्णधारों की उन दिनों यह धारणा थी कि ब्रिटिश जनता और ब्रिटिश पार्लमेण्ट के सामने ज़ोरों से आन्दोलन किया जाना चाहिए। इसीलिए ब्रिटिश काँग्रेस कमेटी की स्थापना की गई थी। वरसों आप उसके प्रधान रहे। उसके लिए दस हज़ार से पचास हज़ार रुपये तक प्रतिवर्ष खर्च किया जाता था। भारत से मिलनेवाली अपनी पेंशन आप भारत के लिए ही खर्च कर देते थे। १८९७ से १९१७ तक लगातार छब्बीस अधिवेशनों में आपकी सेवाओं के लिए आपके प्रति काँग्रेस की ओर से कृतज्ञता प्रकट की जाती रही।

कहने को राजनैतिक अधिकारों किन्तु वास्तव में सरकारी नौकरियों तथा पदों के बँटवारे के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता की चर्चा का सूत्रपात १९०७ के लगभग हुआ था। जब यह चर्चा ज़ोरों पर थी, तब हिन्दू और मुसलमान नेताओं का ध्यान एकाएक आपकी ओर गया। ७२ वर्ष की वृद्धावस्था में आपको इंग्लैण्ड से भारत आने के लिए निमन्त्रित किया गया। आपके सभापतित्व में दोनों पक्षों के नेताओं की एक कान्फ्रेंस हुई। उसका आयोजन करने और उसको सफल बनाने का अधिकांश श्रेय आपको ही था। अनेक समस्यायें उसमें सुलझा ली गई थीं। सर आगाखाँ को भी आपने सहमत कर लिया था। उसी वर्ष इलाहाबाद में काँग्रेस के आप दुबारा सभापति चुने गये थे। आपकी ही प्रेरणा से सर आगाखाँ नागपुर में मुस्लिम लीग का अधिवेशन एक दिन पहले समाप्त करके स्पेशल ट्रेन से मुसलमान प्रतिनिधियों के साथ काँग्रेस में सम्मिलित होने के लिए पहली जनवरी को इलाहाबाद पहुँचे थे।

वहाँ समझौता-बोर्ड बनाने का निश्चय करके एक कमेटी बना दी गई थी। उसके बाद आपने समस्त भारत का भ्रमण किया। पूना की सार्वजनिक सभा, बम्बई के रिपन क्लब और कलकत्ता के नागरिकों की ओर से आपको मान-पत्र दिये गये। १९०४ में भी आप सर हेनरी काटन के साथ भारत आये थे।

१९१७ तक आप इंग्लैण्ड में भारत के लिए आन्दोलन करते रहे। ब्रिटिश पत्रों में लेख लिखने के अलावा आपने भारतीय समस्यायों पर कई छोटी-छोटी पुस्तिकायें भी लिखीं। क्रिमिनल प्रोसीजर, आर्बिट्रेशन कोर्ट, एग्रिकल्चर बैंक और ग्राम्य-पंचायत आदि विषयों पर आपके पैम्फलेट बहुत अच्छे हैं। एक पुस्तक का नाम है "स्कैल्टन एण्ड दी जुबली फ़ीस्ट।" काँग्रेस के संस्थापक मि० ह्यूम का जीवनचरित्र भी आपने लिखा है। माण्ट-फोर्ड सुधारों के लिए ८० वर्ष की वृद्धावस्था में भी आपने खूब आन्दोलन किया। वृद्ध शरीर और जीर्ण स्वास्थ्य उस मेहनत का साथ नहीं दे सके।

भारत के लिए आमरण सेवाव्रत का अनुष्ठान करनेवाले इस अलौकिक महापुरुष का देहावसान १९१८ की २५ मार्च को होगया।

: २० :

बिशननारायण दर

[१८६४—१९१६]

छब्बीसवाँ अधिवेशन, कलकत्ता—१९११

"बिशननारायण मेरे राजनैतिक और साहित्यक गुरु थे। वह अंग्रेज़ी साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे। यूरोप के इतिहास का उन्होंने गहरा अध्ययन किया था। रोम, यूनान और ख़ासकर फ्रांस की राज-क्रान्ति का इतिहास उनकी ज़बान पर था। विद्यार्थियों को वह हमेशा राजनीति में हिस्सा लेने की सलाह दिया करते थे। उन्हें दुःख था कि इलाहाबाद-विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को राजनीति और नागरिक-शास्त्र पढ़ाने का कोई प्रबन्ध नहीं है। काँग्रेस के जन्म के समय युक्त-प्रान्त में कोई राजनैतिक जीवन न था। वह नींद में बेखबर था। काँग्रेस के चौथे अधिवेशन में पंडित अयोध्यानाथ और पंडित विश्वम्भरनाथ बड़े पशोपेश के बाद शरीक हुए। पण्डित मदनमोहन मालवीय उस समय एक अनजान अवस्था में थे। प्रान्त की ऐसी परिस्थिति में पण्डित बिशन-नारायण इंग्लैण्ड से लौटते ही काँग्रेस के आन्दोलन में कूद पड़े। युक्त-प्रान्त से वही सबसे पहले काँग्रेस के प्रतिनिधि थे। १८८७ में लखनऊ से स्वर्गीय गंगाप्रसाद वर्मा ने 'एडवोकेट' नामक अंग्रेज़ी अर्ध-साप्ताहिक-पत्र निकला। पण्डित जी ही उसके पहले सम्पादक थे। काँग्रेस की राज-

नीति पर वह उस पत्र में बड़े जोरदार लेख लिखते थे। वह युक्तप्रान्त के राजनैतिक आदर्शों के जन्मदाता थे, उसके बाद दूसरे नेताओं ने उनके काम को आगे बढ़ाकर प्रसिद्धि प्राप्त की।" माननीय डा० तेजबहादुर सप्रू ने इलाहाबाद की एक सार्वजनिक सभा में ऊपर के शब्दों में पण्डित विशननारायण दर का परिचय दिया था।

आपका जन्म सन् १८६४ में युक्तप्रान्त के बाराबंकी ज़िले में हुआ था। आपका ख़ान्दान लखनऊ के काश्मीरी ब्राह्मणों में बड़ा प्रतिष्ठित समझा जाता था। आपके पितामह पण्डित हरिराम दर संस्कृत के विद्वान और फ़ारसी के आलिम थे। जीविका की तलाश में वह अपनी जन्मभूमि काश्मीर छोड़कर लखनऊ आये। उनकी विद्वत्ता का स्वागत हुआ। वह कलकत्ता में अवध दरबार की ओर से शाही अखबार-नवीस मुकर्रर हुए। आपके पिता भी एक सरकारी पद पर थे। कलकत्ता-हाईकोर्ट के पहले हिन्दुस्तानी जज पण्डित शम्भूनाथ दर आपके ही चाचा थे।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। अपने ख़ान्दान के रिवाज के अनुसार आपको शुरू में उर्दू और फ़ारसी की शिक्षा दी गई। घर की तालीम खत्म होने पर आपको मिशन हाईस्कूल में अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए भरती कर दिया गया। जब आप अंग्रेज़ी मिडल में पढ़ते थे, तभी कोर्स की किताबों के अलावा, आपने स्माइल की 'सेल्फ हेल्प' और 'केरक्टर' नामक पुस्तकें पढ़ीं। आपके कोमल दिमाग़ पर इन पुस्तकों का बड़ा असर हुआ। जब आप एण्ट्रेन्स में पहुँचे, आपको कार्लाइल की मशहूर पुस्तक 'हीरो एण्ड हीरो वरशिप' मिल गई। उस पुस्तक से भी आपके चरित्र-निर्माण में बड़ी सहायता मिली। एण्ट्रेन्स की परीक्षा पास करने के बाद आप लखनऊ के कैनिंग कालेज में एफ० ए० में भरती होगये। कालेज में अंग्रेज़ी भाषा से आपका प्रेम बढ़ गया। अपनी कालेज की

किताबों के अतिरिक्त आपने मशहूर अंग्रेज़ लेखक हर्बर्ट स्पेन्सर, ह्यूम, ड्रेपर, स्टुअर्ट मिल आदि की रचनाओं का अध्ययन किया। मिल की जनतंत्रात्मक रचनायें आपको बहुत प्रिय थीं। कालेज में ही आपने अंग्रेज़ी साहित्य, दर्शन, राजनीति, मनोविज्ञान आदि का अच्छा अध्ययन कर लिया था। आप कालेज के समस्त विद्यार्थियों में अपने अध्ययन और विद्वत्ता के लिए मशहूर थे। कैनिंग कालेज के प्रिन्सिपल उन दिनों डाक्टर व्हाइट थे। थोड़े ही दिनों में आप व्हाइट के अत्यन्त प्रिय शिष्य बन गये।

अंग्रेज़ी साहित्य के गहन अध्ययन ने आपके दिल में विलायत जाने की उमंग भर दी, किन्तु विलायत जाना उन दिनों आसान काम न था। भारतीय समाज समुद्र-यात्रा को महान् पाप समझता था। माता-पिता को राज़ी करना बड़ा कठिन था। किन्तु विशननारायण इरादा करके छोड़ देनेवाले जीव न थे। ज्यों-त्यों करके अपनी माँ को राज़ी कर लिया और एक दिन इलाहाबाद जाने के बहाने विलायत जाने के लिए बम्बई रवाना होगये। लण्डन पहुँचकर आपने बैरिस्टरी पढ़ने का निश्चय किया और मिडिल टेम्पल में नाम लिखा लिया। क़ानून का अध्ययन तो आपका नाममात्र को ही होता, अधिक समय तो हक्सले, टिंडल, डारविन, लैकी, बर्क, कार्लाइल, ड्रेपर, मिल आदि मशहूर लेखकों की रचनायें पढ़ने में बीतता। अंग्रेज़ी शायरी से भी आपको विशेष दिलचस्पी थी। शेक्सपियर, बायरन, शैली, कीट्स, टनीसन के हज़ारों पद्य आपको कण्ठाग्र थे।

जिन दिनों आप लन्दन में थे उन्हीं दिनों विलायत के राजनैतिक रंगमंच पर ग्लैडस्टन का बोलबाला था। उनकी उदार राजनीति ने इंग्लैण्ड के वातावरण में एक नई विचार-धारा बहाई थी। अनुदार विचारों पर जनसत्तात्मक विचार विजय पा रहे थे। आपके युवक हृदय

पर इन राजनैतिक हलचलों का गहरा असर हुआ। विलायत में ही स्वर्गीय लालमोहन घोष और श्री नारायण चन्दावरकर से आपका परिचय हुआ। वे दोनों सज्जन पार्लमेण्ट के मेम्बरों को भारत की राजनैतिक स्थिति का दिग्दर्शन कराने गये थे। आपके भावुक हृदय पर इस परिचय का अत्यधिक असर हुआ। तीन साल वीत जाने पर यथासमय आपको वैरिस्टरी का सर्टीफिकेट मिल गया और सन् १८८७ के प्रारम्भ में आप स्वदेश लौट आये।

आप जब स्वदेश लौटकर आये तो काश्मीरी समाज में काफ़ी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। आपही पहले काश्मीरी युवक थे जिन्होंने विलायत-यात्रा की थी। कुछ मालदार काश्मीरियों ने धर्म का झण्डा फहरा दिया और 'धर्म संकट में है' की दुहाई शुरू करदी। इस दल ने आपको जाति-च्युत कर दिया। कुछ नवयुवकों ने पण्डितजी का साथ दिया। दो पार्टियाँ बन गईं। एक का नाम था 'धर्मसभा' और दूसरी का 'विशन-सभा'। स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू नौजवानों की पार्टी में थे और उनके बड़े भाई वंशीधर जी पुरानी पार्टी में। विशन-पार्टी का ख़याल था कि समुद्र-यात्री प्रायश्चित्त करके शुद्ध होसकता है, किन्तु समाज के कठमुल्ले कोई समझौता क़रने को तैयार न थे। विशन-पार्टी ने यह तय किया कि इस पार्टी का कोई भी स्त्री-पुरुष, लड़का या लड़की पुरानी पार्टीवाले का छुआ पानी तक न पिये, यद्यपि चमार-पासी का छुआ खाने-पीने में उन्हें कोई संकोच न था। इस आपसी वहिष्कार के कारण जल्दी ही सुलह होगई।

सामाजिक झगड़ों से फुर्सत पाकर आप उसी वर्ष सन् १८८७ में मदरास-काँग्रेस के तीसरे अधिवेशन में सम्मिलित हुए। उस समय आप केवल २३ वर्ष के थे। युक्तप्रान्त की ओर से काँग्रेस में सम्मिलित होने-

वाले आप ही पहले प्रतिनिधि थे। इस छोटी अवस्था में आपने वहाँ जो वक्तृता दी थी, उसे सुनकर ह्यूम साहब ने कहा था कि "किसी दिन यह युवक राजनीति का धुरन्धर नेता होगा।"

पण्डितजी ने बैरिस्टरी पास तो करली थी, किन्तु बैरिस्टरी की ओर उनकी कोई विशेष रुचि नहीं थी। उनका अधिक समय साहित्य-सेवा और राजनीति में बीतता था। उनके हृदय में आत्म-सम्मान की आग थी। १८९४ के काँग्रेस-अधिवेशन में शस्त्र-कानून को मिटाने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पर बोलते हुए आपने कहा था—"यह ग़ुलामी का ऐसा बन्धन है जिसे हमने निरंकुश-से-निरंकुश स्वेच्छाचारी के समय में भी नहीं पहना। मुसलमानी काल में भी शस्त्र-क़ानून नहीं था।" १८९७ की काँग्रेस में बोलते हुए आपने कहा था—"सरकार कहती है कि मुल्क में भयानक अशान्ति और राजद्रोह है और उसका दमन आवश्यक है। इसका यह अर्थ है कि पचास वर्ष का ब्रिटिश शासन व्यर्थ गया। जैसे-जैसे शिक्षा की प्रगति होती है, वैसे-वैसे हम अंग्रेज़ों के सम्पर्क में ज्यादा आते जाते हैं और जितना अधिक हम उनके सम्पर्क में आते हैं उतनी ही उनके प्रति हमारी नफ़रत बढ़ती जाती है।" १८९९ की लखनऊ-काँग्रेस की रिपोर्ट की भूमिका में आपने लखनऊ-काँग्रेस के अधिवेशन का जिक्र करते हुए लिखा है—"विस्मृत भूतकाल की खाक पर, एक ऐसे स्थान में जहाँ हमारे पूर्वज राष्ट्रीयता और राजनैतिक झगड़ों से बेखबर खुशी से जीवन व्यतीत करते थे, आज अनेकों जातियों, मज़हब और सम्प्रदाय के लोग मिलकर एक भवन निर्माण कर रहे हैं, जहाँ मराठे और बंगाली, पंजाबी और मदरासी, हिन्दू और मुसलमान, सिख और ईसाई, जैन और पारसी एक आशा, एक विश्वास और एक भविष्य की कल्पना लेकर एकत्र हुए हैं। इस विशाल पण्डाल के सुन्दर सभामण्डप के नीचे बैठ-

कर कवि के उस सुनहले स्वप्न-जगत् की वे सृष्टि कर रहे हैं जिसमें विविध भाषाओं और जातियों के लोग प्रेम की एक छत्र-छाया में विचरण किया करेंगे।" काँग्रेस को सर्वसाधारण के लिए ग्राह्य बनाने की ओर पण्डितजी का विशेष ध्यान था। आपने लिखा था—"यदि यथेष्ठ कार्यकर्ता हों तो काँग्रेस को चन्दे में हमेशा छोटी रक़में जमा करनी चाहिएँ। इस कार्यक्रम से हम जनता के अधिक निकट जा सकेंगे और सर्वसाधारण को काँग्रेस की राजनीति की ओर आकर्षित कर सकेंगे।" अप्रैल १९११ में बरेली में होनेवाली प्रान्तीय राजनैतिक परिषद् के आप सभापति निर्वाचित हुए और उसी वर्ष दिसम्बर में कलकत्ता-काँग्रेस के सभापति भी चुने गये। काँग्रेस के सभापति-पद से दी गई आपकी वक्तृता बड़ी मार्मिक थी। उसमें आपने कहा था—"हर प्रगतिशील संस्था में एक जोशीली जमात होती है और उससे संस्था को लाभ ही होता है। मैं जानता हूँ कि नरम प्रकृति क़भी-कभी कार्यहीनता बन जाती है और खतरे से बचने की भावना भय में परिणत होजाती है। मेरा विश्वास है कि भारत को साहसी और जोशीले व्यक्तियों की आवश्यकता है। हमें छिन्न-भिन्न आशाओं वाले किंकर्तव्यविमूढ़ लोगों की ज़रूरत नहीं है। हमें ऐसे साहसी और उत्साही वीरों की आवश्यकता है जिनकी हर साँस में विद्रोह हो, और जिनका जीवन एक तूफान हो।"

देश की दुर्दशा का चित्र खींचते हुए आपने कहा था—"सोचिए, सभ्यता के पैमाने में हम कहाँ खड़े होते ह? जब कि हर हज़ार पीछे केवल चार स्त्री और अठारह पुरुष शिक्षित हैं, जबकि करोड़ों इंसानों को हम अछूत समझते हैं, जबकि हमारे यहाँ पाँच वर्ष से भी कम आयु की लाखों विधवायें हैं, जबकि हम समुद्र-यात्रा को महान् पातक समझते हैं, जबकि हिन्दू यह नहीं समझते कि साढ़े छः करोड़ मुसलमान उन्हींके

बन्धु हैं और मुसलमान यह नहीं समझते कि चौबीस करोड़ हिन्दुओं की क़िस्मत के साथ उनकी क़िस्मत नत्थी है, तब स्वराज्य का नाम लेने से भी क्या लाभ? राजनैतिक स्वराज्य के लिए आप बेशक प्रयत्न करें, किन्तु याद रखिए कि जबतक आप अपनी सामाजिक अवस्था को उन्नत नहीं बनाते तबतक आप देश का वास्तविक कल्याण नहीं कर सकते।" इन पंक्तियों के कहनेवाले के हृदय में कितनी आग होगी, इसकी कल्पना तो कीजिए।

लखनऊ म्युनिसिपैलिटी के आप कई वर्षों तक सदस्य रहे। १९१४ में आप इम्पीरियल लेजिसलेटिव कौंसिल के सदस्य चुने गये, किन्तु बाद में अपनी अस्वस्थता के कारण इस्तीफ़ा दे दिया। अनिवार्य शिक्षा के आप प्रबल समर्थक थे।

आप लेखक और कवि भी बड़े ज़बरदस्त थे। आपकी लिखी हुई चीज़ों ने बड़ी ख्याति पाई थी। साइंस आफ़ दी टाइम्स, दि डिके आफ़ जीनियस इन इण्डिया, एज्युकेशन इन इण्डिया, दी फार्मेशन आफ़ ओपीनियन, क्रिटीसीज्म आफ़ उर्दू लिटरेचर आदि आपकी मशहूर रचनायें हैं। सर रासबिहारी घोष, गोपालकृष्ण गोखले, फ़िरोज़शाह मेहता, विलियम डिगबी आदि आपसे बड़े प्रभावित थे। गोखले कहा करते थे कि विद्वत्ता में भारत में दो ही आदमी असीम हैं, एक बिशननारायण दर और दूसरे रासबिहारी घोष। आपकी स्मरणशक्ति अपूर्व थी। उर्दू शायरों में आपको 'आतिश', 'ग़ालिब' और 'अनीस' बहुत पसन्द थे। स्वयं भी शेर और रुबाइयाँ लिखते थे और मुशायरों में शरीक होते थे। आपकी कविता का एक नमूना यह है—

"असर हो सुनने से कानों को, या न हो, लेकिन—
जो फ़र्ज़ था वह अदा कर चुकी ज़बाँ अपना।

जब न सूझी राह हक़, गुमगश्त गाने दहर को—
शेख़ कोई होगया कोई बिरहमन होगया।
नियते पाक ही काफ़ी है तहारत के लिए—
न वज़ू चाहिए ज़ाहिद, न तयम्मुम मुझको।
है बेकारी भी, इस खुम ख़ाने आलम में बाकारी—
जो ख़ाली बैठे हैं वे उम्र का पैमाना भरते हैं।
बच्चों को माँ की गोद भी मकतब से कम नहीं—
इस मदरसे में हाजते लौ-व-क़लम नहीं।"

एक बार कुतुब मीनार देखने आप गये। देखकर आपने एक चौपदा लिखा—

"दुनिया की अजीब हमने हस्ती देखी,
पहुँचे जो बुलन्दी पै तो पस्ती देखी,
मीनार से कुतुब के जो की हमने निगाह,
उजड़ी हुई दिल्ली की ये बस्ती देखी।"

युक्त प्रान्त और इस देश को आपसे बड़ी आशायें थीं, किन्तु दुर्भाग्य से चालीस वर्ष की अवस्था में ही आप तपेदिक के शिकार होगये। इस मर्ज़ ने आपके सारे अरमान चूर कर दिये। स्वास्थ्य के लिए वर्ष में ७-८ मास का आपका समय अल्मोड़ा में बीतता। नियम और संयम के ही कारण इस भयंकर बीमारी को आप १२ वर्ष तक खींच ले गये। इस भयंकर बीमारी का आक्रमण भी आपकी मानसिक शांति को भंग नहीं कर सका। आप सदा हँसते दिखाई देते थे। अध्ययन भी पूर्ववत् जारी रहा। किन्तु जनता की असली सेवा की इच्छा मन की मन में ही रह गई। पण्डित मोतीलाल जी आपको 'सेज आफ़ अल्मोड़ा' कहा करते थे।

गंगाप्रसाद वर्मा और इक़बालनारायण मसालदान आपके अन्यतम

मित्रों में से थे। इन दोनों की मृत्यु ने आपका सारा उत्साह भंग कर दिया। १९१६ में जब लखनऊ में काँग्रेस होने को थी तो आप स्वागत-समिति के अध्यक्ष चुने गये थे। ४ नवम्बर को आप लखनऊ लौटे। स्टेशन से पालकी में आप घर लाये गये। उसी समय लोगों ने देख लिया था कि मृत्यु ने आपके सौम्य मुख पर अपनी छाप लगा दी है। अवस्था दिन-ब-दिन खराब होती गई और १९ नवम्बर १९१६ को प्रातःकाल आपने अपने अभागे देश से विदा ले ली। मृत्यु के समय आपकी अवस्था ५२ वर्ष की थी। आप अपने पीछे अपनी कोई सन्तान नहीं छोड़ गये, किन्तु क्या यह कीर्ति कुछ कम है कि अपने प्रान्त के काँग्रेस-प्रेमियों के सबसे पहले पथ-प्रदर्शक आप ही थे ?

: २१ :

रघुनाथ नरसिंह मुधोलकर

[१८५७—१९२१]

सत्ताईसवाँ अधिवेशन, बाँकीपुर—१९१२

पिछले दिनों, जबकि सब एकमात्र राजनीति का ही ध्यान करते थे, तब उसके साथ-साथ औद्योगिक प्रगति और समाजसुधार पर भी उतना ही ज़ोर देनेवालों में श्रीयुत रघुनाथ नरसिंह मुधोलकर का स्थान बहुत ऊँचा है। किसानों के भारी ऋण और ग़रीबी एवं आर्थिक उन्नति और कला-कौशल की शिक्षा के मामलों में आप विशेष रुचि रखते थे।

१६ मई १८५७ को धूलिया (खानदेश) में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम था श्री नरसिंहराव। वह खानदेश के ज़िला जज की अदालत में मुहाफ़िज़दफ्तर थे। पितामह भी खानदेश के मामलतदार (तहसीलदार) रहे थे। वैसे आपका मूल निवास दक्षिण महाराष्ट्र था और आपके पूर्व-पुरुष मराठा-साम्राज्य के समय पेशावर के दरबार में वकालत करते थे। प्रारम्भिक शिक्षा आपकी धूलिया में हुई। कुछ समय एरण्डोल में रहे, जब कि आपके पिता वहाँ सब-रजिष्ट्रार थे। कहानी और इतिहास की, विशेषकर मराठा-इतिहास की, पुस्तकों का आपको बहुत शौक था। दस वर्ष की आयु में सबसे बड़े भाई बलवन्त-राव आपको बरार ले गये, जहाँ वह हेडमास्टर थे और फिर शिक्षा-विभाग

के डिप्टी इंस्पेक्टर हो गये थे। वहाँ आपकी अंग्रेज़ी शिक्षा शुरू हुई और तीन बरस वहाँ बिताकर हाईस्कूल की पढ़ाई के लिए धूलिया लौट आये। आप तेज़ विद्यार्थी थे। परीक्षाओं में प्रथम आते और पुरस्कार लेते रहे। १८७३ में धूलिया हाईस्कूल से मैट्रिक पास किया। १८७४ में बम्बई के एलफिस्टन-कालेज में भर्ती हुए। यहाँसे १८७७ में बी० ए० पास किया। उसके बाद शीघ्र ही एलफिंस्टन-कालेज के 'फ़ेलो' नियुक्त हुए और इतिहास, तर्कशास्त्र एवं राजनैतिक अर्थशास्त्र पढ़ाने लगे। १८८० में एल-एल० बी० पास किया। इसके बाद बरार में जाकर वकालत शुरू की, जहाँ वकालत करनेवाले सर्वप्रथम एल-एल० बी० आप तथा आपके साले श्री बी० ए० दिवेकर ही थे। पहले १८८१ में अकोला में जमे। वहाँ एक साल में ही बहुत तरक़्क़ी कर ली। बाद में जुडीशियल कमिश्नर की अदालत अमारावती चले जाने पर, १८८२ में, आप भी अमरावती चले गये। कोई चौथाई सदी तक वहाँ वकालत की और खूब धन और यश अर्जन किया।

कमाई के साथ-ही-साथ प्रान्त व देश के सार्वजनिक जीवन में भी भाग लेना शुरू कर दिया। जहाँ और लोग एकमात्र राजनीति का ही ध्यान करते थे, आपने औद्योगिक प्रगति एवं समाज-सुधार पर भी उतना ही जोर दिया। इस दशा में आपने अमली क़दम यह रक्खा कि कुछ मित्रों के सहयोग से बरार ट्रेडिंग कम्पनी लिमिटेड की स्थापना की और स्वयं उसके मंत्री बने। वस्तुतः आपका पहला सार्वजनिक काम यही था, जिसमें आगे चलकर आपने काफ़ी सफलता प्राप्त की। राजनैतिक लोकमत तैयार करने के लिए पत्र निकालने का विचार सूझा और 'विदर्भ' नाम का पत्र निकाला, जो १६ वर्ष से अधिक समय तक जनता की सेवा करता रहा। इसमें प्रकाशित होनेवाले अंग्रेजी लेख ज्यादातर

आपके ही होते थे। १८८५ में वरार में डफ़रिन-फण्ड की स्थापना में आपने भाग लिया और उसके जीवन-सदस्य बन गये। वरार के सार्वजनिक जीवन को वम्बई-प्रान्त की वरावरी पर लाने के लिए जिन्होंने प्रयत्न किया, उनमें आप मुख्य हैं। १८८६ में वरार-सार्वजनिक-सभा की स्थापना मुख्यत: आपके प्रयत्न से हुई थी और श्री एम० वी० जोशी के साथ आप १८९८ तक उसके मंत्री रहे। उसके द्वारा विभिन्न विषयों पर सरकार को जो आवेदनपत्र भेजे गये, वे सब आपके तैयार किये होते थे।

म्युनिसिपल और प्रान्तीय कार्य में आप सदा मुस्तैदी से संलग्न रहे। १८ वर्ष तक अमरावती सिटी म्युनिसिपैलिटी के सदस्य रहे और समाचारपत्रों व सरकार को दिये जानेवाले आवेदनपत्रों द्वारा प्रान्तीय मामले उठाते रहे। नये सिरे से पैमायश होकर मालगुज़ारी का नया वन्दोवस्त होने से १८९० से १९०० के वीच के वर्षों में वरार में वहुत हलचल मची। पैमायश-अफ़सर ने वम्बई के सर्वे एण्ड सेटलमेण्ट का अनुसरण करके कर में वहुत ज्यादा वृद्धि का प्रस्ताव किया। इसका ज़ोरों से विरोध हुआ और १८९१-९२ में हज़ारों की उपस्थिति में सभायें हुईं, जिनमें आपके और श्री जोशी के भाषण हुए। यही नहीं बल्कि आपने एक विद्वत्तापूर्ण आवेदनपत्र तैयार किया, जिसमें नई पैमायश तथा मालगुज़ारी-वृद्धि की दलीलों का खोखलापन वताया और तव भारत-सरकार ने पैमायश-अफ़सर व स्थानिक सरकार के प्रस्तावों में आंशिक संशोधन किये। किसानों के भारी ऋण-भार पर भारत-सरकार के होम-डिपार्टमेण्ट ने जो नोट तैयार किया, उसपर 'सार्वजनिक सभा' की सम्मति लगभग ८० फुल्सकेप पृष्ठों में तैयार की। आपने महाजनों तथा व्यवसाइयों द्वारा काश्तकारों के शोषण को आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक दृष्टि से वड़ा ख़तरा माना और प्रस्तावित उपाय से असहमति

दरसाते हुए जमीन पर काश्तकारों का स्वामित्व रहने की आवश्यकता बताई। संकुचित क़ानून की अपेक्षा शिक्षा, हितकर मालगुज़ारी-नीति और पर्याप्त रूप में सस्ती पूँजी मिलने पर आपका अधिक विश्वास था। बरार में कौंसिल नहीं थी, पर जब कोई क़ानून बनाया जाता तो उसपर विचार करने के लिए सरकार उपसमितियाँ बना देती थी। आपको उनमें ज़रूर रक्खा जाता था। उस समय बरार के लिए जो भी क़ानून बनते, वे 'फ़ारेन जूरिस्डिक्शन एक्ट' के मातहत प्राप्त अधिकार द्वारा कौंसिल सहित ब्रिटिश-भारत के गवर्नर-जनरल के हुक्म से बनते थे, क्योंकि बरार को ब्रिटिश भारत का अंग नहीं माना जाता था। आपने इस स्थिति को देश के सामने रक्खा, कांग्रेस तथा प्रान्तीय परिषदों के अधिवेशनों में आपने प्रस्ताव पेश किये और आज हम देखते हैं कि बरार की स्थिति पहले से कहीं श्रेष्ठ है।

कांग्रेस में आप पहलेपहल इलाहाबाद में होनेवाले चौथे अधिवेशन (१८८८) में शामिल हुए, और पुलिस-सम्बन्धी प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए कहा—"पुलिस के सिपाही का तो फ़र्ज़ है कि वह प्रजा का प्रेम जीते, लेकिन अब वह कैसी घृणा का पात्र बन गया है ?" शीघ्र ही कांग्रेस में आपने अपना प्रमुख स्थान बना लिया और उसके उत्साही कार्यकर्त्ता बन गये। सिर्फ़ १९०२ के अधिवेशन को छोड़कर, जिसमें एक घरेलू आपत्ति-वश उपस्थित नहीं हो सके थे, आप सब अधिवेशनों में भाग लेते रहे। १८९० में इंग्लैण्ड जानेवाले शिष्ट-मण्डल में आप भी थे और अपने साथी श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा एर्डली नॉर्टन के साथ आपने भी १८९२ के शासन-सुधारों की भूमिका बहुत कुछ तैयार की। बरार के काँग्रेसी साथियों के सहयोग से १८९७ में कांग्रेस को अमरावती में आमंत्रित किया और अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी उसे सम्पन्न

किया। इसी बीच १८९६ में वर्षा न होने से मध्यप्रान्त, उत्तर-भारत और दक्षिण-भारत में भारी अकाल पड़ा; जिसका असर वरार पर भी हुआ। उस समय अकाल-पीड़ितों को वाज़ार-भाव से कम दामों पर अनाज देने और ग़रीबों के लिए भोजनालय खोलने की योजना श्री० एम० वी० जोशी के साथ आपने तैयार की और सरकारी अधिकारियों के सहयोग से उसपर अमल किया। मार्च १८९७ में वरार में अकाल-फ़ण्ड की शाखा खुली और एक अन्य भारतीय के साथ आप उसके मंत्री नियुक्त हुए। आपके काम की सरकार तक ने तारीफ़ की और १८९८ में आपको 'रायवहादुर' का खिताव दिया। १८९९–१९०० में फिर अकाल पड़ा, जो आधुनिक काल में भारत का सबसे वड़ा अकाल कहा जाता है। तव भी आप आगे आये और फिर अकाल-फण्ड के मंत्री नियुक्त हुए। कांग्रेस-विधान वनाने में भी आपका हाथ रहा है। उसके लिए १८९८ में वनी उपसमिति के आप मंत्री थे और आपके वनाये नियमों को वहुत थोड़े हेर-फेर के साथ १८९९ में लखनऊ में स्वीकार किया गया था। वरार में महारानी विक्टोरिया का स्मारक वनाने में आपने इस शर्त पर सरकार से सहयोग किया कि उसे टेकनिकल इण्डस्ट्रियल स्कूल का रूप दिया जाय। उसमें वहुत विघ्न पड़े, पर आपके सतत उद्योग से उसमें आँशिक सफलता मिल ही गई। १९०७ में आप रायपुर में होनेवाली तृतीय वरार व मध्यप्रान्तीय परिषद् के सभापति हुए। १९१२ में वांकीपुर में होनेवाले अधिवेशन के सभापतित्व का सम्मान आपको देशवासियों ने प्रदान किया। १३ जनवरी १९२१ को आपका देहावसान हो गया। आज आप हमारे वीच नहीं रहे, पर आपकी स्मृति आज भी यह प्रेरणा कर रही है कि राजनीति के साथ-साथ देश की औद्योगिक और सामाजिक स्थिति के विकास पर भी हमें ध्यान रखना चाहिए।

: २२ :

सैयद मुहम्मद बहादुर

[१८६९—१९१९]

अट्ठाईसवाँ अधिवेशन, कराची—१९१३

"आपको मत न देना मदरास की जनता के प्रति अपराध और विश्वासघात करने के समान होगा। आपने जनता की जो सेवा की है, दूसरा कोई व्यक्ति उसके सौवें हिस्से के समान भी न कर सकेगा। कौंसिल के लम्बे अरसे की सेवा में आपने एक भी शब्द अर्थहीन या महत्वहीन नहीं कहा, अथवा ऐसा नहीं कहा जो जनता के हितों के लिए न कहा गया हो।" नवम्बर १९०७ में दीवानबहादुर श्री रघुनाथराव सी० आई० ई० ने नवाब सैयद मुहम्मद बहादुर की इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल की उम्मीदवारी का समर्थन करते हुए ऊपर के शब्द कहे थे। नवाबसाहब पक्के राष्ट्रवादी, दृढ़ देशभक्त और परखे हुए लोकसेवक थे। आपका जन्म सैदापेट-अड्यार (मदरास) में सन् १८६९ में एक पुराने सम्मानित परिवार में पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद के वंश की ५९ वीं पीढ़ी में हुआ था। आपके पितामह नवाब पीर असदुल्लाखाँ चेतपुर के जागीरदार और नवाब सफदरअलीखाँ बहादुर के दीवान थे। मैसूर रियासत के प्रसिद्ध हैदरअली से भी आपकी रिश्तेदारी थी। आपकी दादी शाहज़ादी आहरुख़ बेगम टीपू सुलतान के चतुर्थ पुत्र शाह-ज़ादा सुलतान यासीन की पुत्री थी। आपके पिता आनरेबल मीर हुमायूँ-

जाह वहादुर सी० आई० ई० भी मदरास के सुप्रतिष्ठित नागरिक थे। १८६७ में उनको सरकार ने मदरास लेजिस्लेटिव कौंसिल में नामजद किया था। उसके वाद मृत्युपर्यन्त वह उसके सदस्य रहे। १८९३ में जव पहली वार प्रान्तीय कौंसिल के सदस्यों को सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल के लिए प्रतिनिधि चुनने का अधिकार प्राप्त हुआ, तव उसके प्रतिनिधि चुने गये थे, किन्तु चुनाव के वाद ही उनका देहान्त होगया था। १८८० में उनको सरकार ने सी० आई० ई० का ख़िताव दिया था।

नवाव साहव की प्रारम्भिक शिक्षा का प्रवन्ध घर पर ही किया गया था। जल्दी ही आपने अंग्रेज़ी में विशेष योग्यता प्राप्त कर ली। १८९६ में मदरास शहर के आप शैरिफ़ वनाये गये थे। आप पहले मुसलमान शैरिफ थे। १८९७ में आपको 'नवाव' और 'खाँवहादुर' के ख़िताव दिये गये थे। १९०० और १९०२ में आप दो वार मदरास लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य नियुक्त किये गये थे। १९०३ में आप अपने पिता के समान मदरास प्रेसीडेंसी की ओर से सुप्रीम कौंसिल के सदस्य चुने गये। कौंसिल में आपने जिन विलों पर हुई वहस में विशेष भाग लिया, उनमें कुछ ये हैं—आफिशियल सीक्रेट विल, यूनिवरसिटी विल, कोआपरेटिव क्रेडिट सोसाइटीज़ विल और यूनीवरसिटी वैलिडेशन विल। जून १९०८ के शिमला-अधिवेशन में एक्सप्लोसिव विल और इन्साइटमेण्ट टू मरडर्स विल के वारे में आपने जो भाषण दिये, उनसे आपकी अगाध विद्वत्ता और उस समय की परिस्थिति के आपके गहरे अध्ययन का पूरा परिचय मिलता है। मिण्टो-मार्ले-रिफार्म से पहले और वाद में भी दो-दो वार आप मदरास प्रेसीडेंसी की ओर से वाइसराय की कौंसिल के सभासद चुने गये थे। १९१७ में आप व्यक्तिगत कारणों से उससे अलग होगये।

आप १८९४ में काँग्रेस में शामिल हुए और मृत्यु-पर्यन्त उसके दृढ़ समर्थक रहे। आप पहले भारतीय और वाद में मुसलमान थे। १८९८ के अधिवेशन में आपने लार्ड कर्ज़न के स्वागत के प्रस्ताव का अनुमोदन किया था। १९०१ में इण्डियन काँग्रेस कमेटी के सदस्य चुने गये। १९०३ में मदरास में हुई काँग्रेस के आप स्वागताध्यक्ष हुए थे। तव आपने कहा था कि "शासन-सुधारों के सम्वन्ध में तवतक आगे नहीं वढ़ा जा सकता, जवतक कि इस विशाल देश में रहनेवाली हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियाँ समान हित के लिए एक होकर काम नहीं करतीं।" १९०४ में आप काँग्रेस का विधान तैयार करनेवाली कमेटी के और १९०६ में काँग्रेस स्टैंडिंग कमेटी के सभासद् चुने गये। १९०६ में दादाभाई आपसे मिलकर वहुत प्रसन्न हुए थे। उस समय मुसलमानों से काँग्रेस में शामिल होने के लिए आपने वहुत ज़ोरदार अपील की थी। १९०८ में मदरास में हुई कनवेंशन-काँग्रेस के सभापतित्व के लिए डा० रासविहारी घोष के नाम का प्रस्ताव आपने ही उपस्थित किया था। १९१३ में कराची में हुए काँग्रेस-अधिवेशन के आप सभापति चुने गये थे। उस समय दिया हुआ आपका विस्तृत भाषण हिन्दू-मुसलमानों की एकता की अपील से ओत-प्रोत था। साम्प्रदायिकता आपको विलकुल छू तक न गई थी। आप दृढ़ देशभक्त थे। राष्ट्रीयता आपके सव भाषणों में ओत-प्रोत रहती थी। हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतिपादन करते हुए आपने यह सलाह दी थी कि दोनों जातियों के नेताओं को समय-समय पर एकत्र होकर सार्वजनिक हित के सव प्रश्नों पर मिलकर काम करने का मार्ग ढूँढ़ते रहना चाहिए। भारत-मन्त्री की कौंसिल में चुने हुए प्रतिनिधि रखने पर आपने ज़ोर दिया, जिसके लिए १८५८ से आन्दोलन हो रहा था। कौंसिल, म्युनिसिपैलिटियों, प्रारम्भिक तथा औद्योगिक शिक्षा,

जमीन-बन्दोवस्त, पब्लिक सर्विस कमीशन और सेना के भारतीकरण आदि विषयों की चर्चा आपने विशेष रूप से की थी। एकता के लिए इन शब्दों में अपील करते हुए आपने अपना भाषण समाप्त किया था कि "आओ, हम सब हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई भाई-भाई की तरह कन्धे-से-कन्धा मिलाकर अपने ध्येय पर विश्वास रखते हुए आगे बढ़ चलें। ठोकरें खाना और त्याग करना तो हमारे लिए अनिवार्य है।" इसी ध्येय से प्रेरित होकर आप सदा काम करते रहे। १९१६ में लखनऊ-काँग्रेस में तैयार किया गया हिन्दू-मुस्लिम-पैक्ट (काँग्रेस-लीग-योजना) आपके ही परिश्रम का परिणाम था। १९१३ में मिण्टो-मार्ले-सुधारों के सम्बन्ध में साक्षी देने के लिए सरकार ने आपको निमन्त्रित किया था।

काँग्रेस के अलावा अन्य अनेक सार्वजनिक संस्थाओं से भी आपका विशेष सम्बन्ध था। मदरास के सेण्ट्रल मुहम्मद एसोसियेशन और दक्षिण भारत के मुहम्मडन एजूकेशन एसोसियेशन के आप उपाध्यक्ष थे। मदरास महाजन सभा के १८९२ में ट्रस्टी और १९०४ से १९१७ तक अध्यक्ष रहे। मदरास एथलैटिक एसोसियेशन की प्रबन्ध कमेटी के सदस्य और १९१३ में स्थापित नेशनल फण्ड एण्ड इण्डस्ट्रियल एसोसियेशन के आप ट्रस्टी थे।

१९१६ में आपको आर्थिक कष्टों की वजह से सार्वजनिक जीवन से विरक्त हो जाना पड़ा और रामपेटा (मदरास) ५० वर्ष की आयु में १२ फरवरी १९१६ को आपका देहावसान हो गया। मुस्लिम विचार-धारा के प्रवाह को उलटी दिशा से रोककर राष्ट्रीयता की ओर लाने के लिए अहोरात्र यत्न करनेवाला न केवल दक्षिण किन्तु समस्त भारत और काँग्रेस का एक सच्चा राष्ट्रवादी सेवक आपकी मृत्यु से उठ गया।

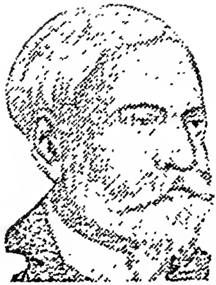

: २३ :

भूपेन्द्रनाथ वसु

[१८५९—१९२४]

उन्नीसवां अधिवेशन, मदरास—१९०४

अपने समय के सर्वाधिक प्रतिभाशाली और बंगाल में चाणक्य के नाम से प्रसिद्ध श्री भूपेन्द्रनाथ वसु का जन्म कृष्णनगर समाज के सुप्रतिष्ठित खानकुल के कायस्थ-परिवार में १८५९ के जनवरी मास में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा का आरम्भ बंगला की शिक्षा के साथ हुआ। १८७५ में इंगलिश हाईस्कूल से मैट्रिक पास करके १८८० में प्रेसीडेंसी कालेज से आपने बी० ए० पास किया। घरवालों के आग्रह से पढ़ाई छोड़ कलकत्ता के सुप्रसिद्ध सालिसिटर निमाईचरण वसु की फर्म में सालिसिटर का काम सीखना शुरू कर दिया और उस काम में लगे हुए ही आपने १८८१ में एम० ए० और बी० एल० की परीक्षाएं पास कीं। १९ मार्च १८८४ में आपने स्वतन्त्र रूप से सालिसिटर का काम शुरू किया। अपने व्यवसाय में अपनी योग्यता और अध्यवसाय के कारण चमकने में आपको अधिक समय नहीं लगा। बी० एल० वसु एण्ड कम्पनी के आप ही प्रधान थे। हाईकोर्ट के जजों और जनता दोनों का आपने स्नेह और विश्वास जल्द ही सम्पादन कर लिया। ३२ वर्षों तक आप अपने इसी व्यवसाय में लगे रहे। आपकी पारिवारिक प्रतिष्ठा का दर्जा भी बहुत ऊंचा था। सम्मिलित परिवार के आदर्श का पालन वसु-परिवार

में पूरी तरह अबतक भी होरहा है। आपका स्वभाव अत्यन्त सरल, नम्र और मिलनसार था। 'एज ऑफ कन्सेण्ट विल' का समर्थन करने के कारण सनातनी आपसे बुरी तरह नाराज़ होगये थे। अपने भतीजों और अनेक सम्बन्धियों को शिक्षा के लिए विरोध रहने पर भी आपने विलायत भेजा था। फिर भी आपको विलायतीपन की बू छू तक भी न गई थी। प्राचीन मर्यादा का पालन आप पूरी तत्परता के साथ करते थे। पोशाक, भोजन, रहन-सहन आदि में आप सोलह आना बंगाली थे। आपके विस्तृत परिवार में एक भी अन्तर्जातीय विवाह नहीं हुआ। परदे की प्रथा तक आपके परिवार से दूर नहीं हुई।

वंग-भंग के आन्दोलन के दिनों में आपने अपनेको सार्वजनिक जीवन के साथ तन्मय कर दिया था। घर-घर घूमकर आप स्वदेशी एवं बहिष्कार का प्रचार किया करते थे। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के उन दिनों में आप परम सहायक थे। बरीसाल की उस कांफ्रेंस में भी आप शामिल हुए थे, जो सर बैम्फील्ड फुलर के हुक्म पर जबरन भंग करदी गई थी। बंगाल नेशनल बैंक के संस्थापकों में आप प्रमुख थे और बहुत समय तक उसके संचालक भी रहे थे। सर अलैक्जैण्डरमैकेंजी के समय में नये म्युनिसिपल एक्ट के विरोध में जिन अट्ठाईस सदस्यों ने त्यागपत्र दे दिये थे, उनमें आप भी एक थे। उसी घटना को लेकर श्री अमृतलाल बोस ने "शाबास अट्ठाईस" नाम से एक नाटक लिखा था, जो कलकत्ता में कई बार कई स्थानों पर खेला गया था। उस समय आपके साहसपूर्ण कार्य की बहुत प्रशंसा की गई थी। बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल के भी आप कई वर्ष तक सभासद रहे थे। सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल के लिए आप सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के मुक़ाबिले में खड़े हुए और सफल भी हुए। वहाँ 'ब्राह्मो मेरिज एक्ट' को स्वीकृत कराने के लिए आपने विशेष यत्न किया।

कांग्रेस के साथ उसकी स्थापना के समय से ही आपका सम्बन्ध था। जब कलकत्ता में १८८६ में कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन हुआ था, तव आप स्वयंसेवक-दल के सेनापति थे। उसके वाद कलकत्ता में होनेवाले अधिवेशन की स्वागत-समिति के मंत्री १९११ में हुए अधिवेश के स्वगताध्यक्ष और १९१४ में मदरास में हुए अधिवेशन के सभापत्ति चुने गये। वहुत पहले मैमनसिंह में हुई वंगाल प्रान्तीय राजनैतिक परिषद् के भी आप अध्यक्ष हुए थे। आप स्वेच्छा से राजनैतिक कार्यों में भाग लिया करते थे। आप उच्चकोटि के वक्ता थे। आपकी यह दृढ़ धारणा थी कि कांग्रेस को सम्राट् की विरोधी संस्था होकर काम नहीं करना चाहिए। कांग्रेस सभापति-पद से दिये गये भाषण में आपने भारत की स्वशासन-सम्बन्धी माँग और योरप के महायुद्ध का उल्लेख करते हुए कहा था कि "पश्चिम से उठती हुई जीवन की विशाल व विस्तृत लहर को पूर्व की ओर आने से रोका नहीं जा सकता। भारत में अंग्रेजी शासन का अर्थ यदि नौकरशाही का गोला-वारूद है, सदा की पराधीनता तथा संरक्षण है, और भारत की आत्मा पर वढ़ता हुआ भारी भार है, तो यह सभ्यता के लिए भयानक अभिशाप और मनुष्यता के लिए भारी कलंक है।"

इतने पर भी आप उग्र विचारों के राजनीतिज्ञ कभी नहीं हुए। माडरेट दल के लोगों में भी आप सवसे अधिक माडरेट थे। माण्टेगु ने आपके इस माडरेटपन से पूरा लाभ उठाया और आपके साथ ऐसा स्नेह-सम्वन्ध वनाया कि आपको जनता की ओर से हटाकर विलकुल सरकार के साथ मिला लिया। आप उनके दाहिने हाथ वन गये। माण्टफोर्ड-शासन-सुधारों सम्वन्धी अनेकों जटिल समस्याओं को आपने ही सुलझाया था। ली कमीशन के आप अकेले ही भारतीय सदस्य थे। उसके लिए आप लोकापवाद के भी शिकार हुए। पर, उसकी आपको तनिक भी

परवा नहीं। १९१७ में भारत-मंत्री की कौंसिल का आपको सदस्य नियुक्त किया गया।

शिक्षा के क्षेत्र में आपने सराहनीय कार्य किया। सर आशुतोष मुकर्जी के वाद कलकत्ता यूनिवरसिटी का आपको वाइस-चांसलर वनाया गया था। मृत्यु के कुछ सप्ताह पहले तक आप उस कार्य की जिम्मेदारी वड़ी योग्यता और तत्परता के साथ निभाते रहे थे। १९२३ में वंगाल-सरकार की शासन-सभा के भी आप सदस्य नियुक्त किये गये थे।

ली-कमीशन का कार्य करते हुए दिल्ली में ही आप वीमार पड़ गये थे। वृद्धावस्था के अन्तिम दिनों में आपकी सव सन्तानों का एक-एक करके देहान्त होगया। एक पुत्र और एक पुत्री शेष थीं। मृत्यु ने उनको भी उठा लिया। इन दुर्घटनाओं का आपके वृद्ध शरीर एवं मस्तिष्क पर वहुत वुरा असर पड़ा और आप भी कुछ दिन वीमार रह कर १६ दिसम्वर १९२४ को कलकत्ता में स्वर्गधाम सिधार गये।

: २४ :

सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह

[१८६४—१९२८]

तीसवाँ अधिवेशन, बम्बई—१९१५

ऊँची-से-ऊँची सरकारी मान-प्रतिष्ठा सबसे पहले प्राप्त करनेवाले लार्ड (आनरेबल सर) सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह का जन्म वीरभूम (बंगाल) ज़िले के रायपुर गाँव के एक सम्पन्न और कुलीन-घराने में जून १८६४ में हुआ था। आपके पिता ईस्ट इण्डिया कम्पनी में मुन्सिफ थे। बाद में सदर अमीन बना दिये गये थे। आप दो ही वर्ष के थे कि आपके पिता का देहान्त होगया। चार भाइयों में आप सबसे छोटे थे। सबसे बड़े भाई वीरभूम में सरकारी वकील थे। दूसरे भाई घर की जमींदारी सम्हालते थे, तीसरे भाई मेजर एन० सी० सिंह आई० एम० एस० थे। तीनों भाइयों की जल्दी ही मृत्यु होगई।

माता ने आपकी और आपके सब भाइयों की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा वीरभूम ज़िला स्कूल में हुई। आप बड़े होशियार, प्रतिभा-सम्पन्न और कुशाग्र बुद्धि थे। पूरी मेहनत और ध्यान से पढ़ते थे। १८७७ में आपने मैट्रिक पास किया। प्रेसिडेंसी कालेज कलकत्ता से पहले विभाग में एफ० ए० पास किया। १८८० में आपका विवाह हुआ। उसी वर्ष आपका भाग्य कुछ ऐसा चमका कि उसने सारा ही जीवन बदल दिया। ईरस्किन एण्ड कम्पनी में आपके

पिता ने बहुत-सा रुपया जमा किया हुआ था। बड़े भाई एन० पी० सिंह को उस रुपये का पता था। दोनों ने मिलकर सारे सम्बन्धियों और घरवालों के विरोध करते रहने पर भी इंग्लैण्ड जाने का निश्चय कर लिया। १८८१ में दोनों भाई घर से निकल पड़े। डायमण्ड हारबर तक घरवालों ने पीछा किया, पर आप हाथ न लगे और लुकछिपकर जहाज पर सवार होगये। वहाँ आपने रोमन और लैटिन का अभ्यास किया। डा० हण्टर की कृपा से रोमन-लॉ, जूरिस्प्रूडेंस, कांस्टीट्यूएंट लॉ और इण्टरनेशन लॉ के अध्ययन के लिए आपको चार वर्षों के लिए ५० पौंड का वार्षिक वजीफ़ा मिल गया। इसी प्रकार तीन वर्षों के लिए १०० पौण्ड का लिनकोन का वजीफ़ा भी आपको मिल गया। १८८६ में वैरिस्टरी का सार्टिफिकेट प्राप्त करने के बाद आपने सारे यूरोप का दौरा किया और कई यूरोपियन भाषायें सीख लीं।

१८८६ में स्वदेश लौटकर २३ वर्ष की आयु में आपने कलकत्ता-हाईकोर्ट में वकालत करनी शुरू की। थोड़े ही समय में सच्चाई, अध्यवसाय और धैर्य से आपने वकालत में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। कुशाग्रबुद्धि और प्रतिभाशाली होने के कारण आप क़ानून की बारीकियों को खूब समझते थे और कानून की पेचीदगियों को भी सहज में सुलझा लेते थे। १८९४ में आपकी वकालत खूब चमकी और १८९९ में चोटी के वकीलों में आपकी गिनती होने लगी। १९०३ के भारत-सरकार के आप स्थायी वकील नियुक्त हुए। १९०६ में अस्थायी और १९०८ में स्थायी एडवोकेट-जनरल और अप्रैल १९०९ में गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्य बनाये जाने वाले पहले भारतवासी आप ही थे। उसके बाद आपने कलकत्ता-हाईकोर्ट में फिर से वकालत शुरू की। कहा जाता है कि उस समय आपकी मासिक आय तीस-चालीस हज़ार थी।

१८९४ में पहली बार आप काँग्रेस-अधिवेशन में सम्मिलित हुए। १८९६ में कलकत्ता में काँग्रेस के बारहवें अधिवेशन में आपने देशी नरेशों को ऐसे पब्लिक ट्रिब्यूनल के सामने दोषी प्रमाणित किये बिना गद्दी से अलग करने का विरोध किया, जिसपर सरकार और राजाओं का एक-समान विश्वास हो। उसके बाद भी कई अधिवेशनों में आप काँग्रेस में शरीक हुए, फिर हम नरम दलवालों के विचार भी आपको उग्र मालूम होते थे। इसीलिए काँग्रेस में आपकी लोगों से बहुत कम बनती थी। १९१५ में बम्बई में हुए काँग्रेस के अधिवेशन के आप सभापति चुने गये। वहाँ आपका राजकीय स्वागत हुआ। सभापति के पद से जो आपने भाषण दिया था, वह नरमदलवालों को भी बहुत ढीला मालूम हुआ। लार्ड मिण्टो आपको नरम विचारों वाला काँग्रेसवादी कहा करते थे। बम्बई-काँग्रेस में ही काँग्रेस के प्रति जनता की रुचि फिर से जागृत होने लगी थी। इसी अधिवेशन में एक कमेटी मुकर्रर की गई थी, जिसको काँग्रेस और मुस्लिम लीग में एकता का भार सौंपा गया था। महात्मा गाँधी विषय समिति में नहीं चुने जा सके थे और सभापति ने उनको अपनी ओर से मनोनीत किया था। इस अधिवेशन के बाद आपने काँग्रेस में कभी कोई हिस्सा नहीं लिया।

१९१७ में महाराजा बीकानेर के साथ आप इम्पीरियल कान्फ्रेंस में भारत के प्रतिनिधि बनाकर भेजे गये। वहीं युद्ध-सम्मेलन में भी सम्मिलित कर लिये गये। १९१७ में आप बंगाल सरकार की एक्जीक्यूटिव कमेटी के मेम्बर मुक़र्रर हुए, किन्तु १९१८ में आप फिर इम्पीरियल वार केबिनेट के मेम्बर बनकर विलायत चले गये। यूरोप के युद्ध के बाद १९१९ में आप अकेले ही सन्धि-सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से शामिल हुए थे। उसी वर्ष लायड जार्ज ने आपको अपने मंत्रि-

मण्डल में अण्डर सेक्रेटरी आफ़ स्टेट फार इण्डिया (भारत-उपमन्त्री) बनाकर शामिल कर लिया। आप पार्लमेण्ट के मेम्बर नहीं थे। इसलिए बैरन (लार्ड) बनाकर हाउस आफ़ लार्ड्स में जगह दी गई। फ्रीमैन आफ़ दि सिटी आफ़ लन्दन बनने का सौभाग्य भी अपने देशवासियों में सबसे पहले आपको ही प्राप्त हुआ था। आप ही पहले भारतीय थे जिनको १९१९ में भारत के एक प्रान्त (बिहार) का गवर्नर बनाया गया, किन्तु अस्वस्थता के कारण आपने शीघ्र ही स्तीफ़ा दे दिया। १९२६ में प्रीवी कौंसिल की जुडीशल कमेटी के मेम्बर होनेवाले भी आप ही पहले भारतीय थे।

आप सदा नरम विचारों के रहे। आपको भारत का कल्याण ब्रिटिश शासन की संरक्षकता में ही दिखाई देता था। समाचारपत्रों के सिरों पर सदा लटकी रहने वाली प्रेस-एक्ट की नंगी तलवार का निर्माण सरकार ने आपसे ही करवाया था। वाइसराय की कौंसिल के जब आप क़ानूनी सदस्य थे, तब उसकी सृष्टि हुई थी। आपके ही कारण स्वर्गीय गोखले ने भी उसका समर्थन किया था। १९२८ की ५ मार्च को आपका देहावसान हो गया।

: २५ :

अम्बिकाचरण मजूमदार

[१८५१—१९२२]

इकतीसवाँ अधिवेशन, लखनऊ—१९१६

पूर्वी बंगाल के वृद्ध पितामह श्री अम्बिकाचरण मजूमदार का जन्म फरीदपुर ज़िले के सेन्दिया गाँव के वैद्य परिवार में ६ जनवरी १८५१ को हुआ था। आपके पिता श्री राधाचरण मजूमदार फ़ारसी तथा संस्कृत के उद्‌भट विद्वान् और धार्मिक विचारों के अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति थे। माता सुभद्रादेवी भी विलक्षण प्रतिभा और असाधारण ज्ञान रखने-वाली नारी थी।

सात वर्ष की आयु में अपने गाँव की संस्कृत पाठशाला में आपकी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ था। सहज में ही आप गुरुजनों के कृपा-भाजन बन जाते थे। आपका यह स्वभाव आपके चरित्र-निर्माण में बहुत सहायक सिद्ध हुआ। दुष्ट-स्वभाव के बालक गुरुजी का लाड़ला शिष्य होने से आपसे बिगड़े रहते थे। एक बार षड्‌यन्त्र रचकर उन्होंने आपको झूठ-मूठ दोषी ठहरा दिया और सजा दिलवा दी। उस अन्याय को सहन न कर सकने पर आपने पाठशाला जाना ही छोड़ दिया। कुछ दिन घर पर पढ़ने के बाद पास के एक गाँव खलिया के ऐंग्लो-वर्नाक्यूलर-स्कूल में आप भर्ती हुए। विद्यार्थियों में अग्रणी स्थान प्राप्त करने और अपने गुरुओं

का कृपा-भाजन बनने में आपको अधिक समय नहीं लगा। पर, वहाँ भी ऐसी ही एक घटना घट गई, जिससे स्वाभिमानी बालक ने फिर स्कूल जाना बन्द कर दिया। सेन्दिया से खलिया जाने के लिए एक नदी नाव द्वारा पार करनी पड़ती थी। एक दिन नाव न मिलने से स्कूल पहुँचने में देर होगई। मुख्याध्यापक को आपने देरी का कारण समझाने का यत्न किया। पर परिणाम कुछ न निकला। स्वाभिमानी बालक के पास उस अन्याय का एक ही प्रतिकार था। उसने दूसरे दिन से स्कूल जाना छोड़ दिया। घरवालों ने बालक को आवारागर्द समझ पढ़ाने की चिन्ता करनी छोड़ दी। पर, माता का दिल न माना। माता ने उसको बारीसाल ज़िला-स्कूल में पढ़ने के लिए भेज दिया। वहाँ प्रधानाध्यापक श्री गौरनारायण राय का प्रिय शिष्य बनने में आपको अधिक समय नहीं लगा। उनकी संगति से अंग्रेज़ी साहित्य में अभिरुचि पैदा हुई। १८६९ में फर्स्ट डिवीजन में मैट्रिक पास करके छात्रवृत्ति प्राप्त की। कलकत्ता प्रेसिडेंसी कालेज में उच्च-शिक्षा का अध्ययन शुरू किया। वहाँ भी आपने प्रो० प्यारीचरण सरकार की कृपा सहज में ही सम्पादन करली। सरकार केवल योग्य शिक्षक ही न थे, बल्कि सादा जीवन और उच्च विचार की साक्षात् मूर्ति भी थे। उनकी संगति से अम्बिकाचरण कालेज की कुसंगति और कुसंस्कारों से बचे रहे। १८७१ में आई० ए० और १८७३ में बी० ए० पास करके मेट्रोपालिटन इन्सटीटयूट में शिक्षक नियत होगये। वह इन्स्टीटयूट बाद में कालेज बन गया।

अम्बिका बाबू के जीवन का जो भविष्य छात्रावस्था में इतना संदिग्ध था, वह अब स्थिर होगया। कालेज में स्वनामधन्य श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के सम्पर्क में आने से उसमें और भी अधिक दृढ़ता पैदा होगई। १८७५ में आपने कानून का अध्ययन शुरू किया और उसी वर्ष एम०

ए० पास करके अगले वर्ष कानून की परीक्षा भी पास करली। दो वर्ष तक आप मेट्रोपालिटन इन्स्टीटयूट के प्रधानाध्यापक रहे। फिर आपको श्री सुरेन्द्रनाथ वनर्जी के सहवास का अहोभाग्य प्राप्त होगया। दोनों में इतनी घनिष्ठता पैदा होगई कि एक परिवार का-सा सम्वन्ध होगया। इन्स्टीटयूट में दोनों ने एक वादविवाद-सभा की स्थापना की। सुरेन्द्र वावू उसके अध्यक्ष थे और आप उपाध्यक्ष। उन्हीं दिनों में आप एक वार एक मकान की छत पर से गिर पड़े थे। एक पैर में उससे कुछ विकार पैदा होगया। वह आजन्म वना रहा।

१८७९ में आपने फरीदपुर में वकालत शुरू की। सफल वकील होने के साथ-साथ सार्वजनिक जीवन में भी आपने अपना विशेष स्थान वना लिया। अपने अथक परिश्रम, अदम्य उत्साह और स्वाभिमानी वृत्ति के कारण आपको लोकप्रिय वनने में अधिक समय नहीं लगा। फरीदपुर में आपने 'पब्लिक एसोसियेशन' की स्थापना की, जो पूर्वी वंगाल की उल्लेखनीय सर्वप्रधान राजनैतिक संस्था है। सन् १८८४ में जब लार्ड रिपन ने 'लोकल सेल्फगवर्मेण्ट' की नीति की घोषणा की, तव उसके अनुसार १८८६ में फरीदपुर में म्युनिसिपैलिटी कायम करने के लिए आपने अथक परिश्रम किया। उसके द्वारा आपने शहरनिवासियों की इतनी अधिक सेवा की कि आप लगातार वीस वर्षों तक उसके अध्यक्ष रहे। १९१८ में राजेन्द्र कालेज स्थापित होने पर उसके लिए भी आपने लगकर विशेष यत्न किया। १८८५ और १९०६ में देश में भयानक दुर्भिक्ष पड़ने पर दुर्भिक्ष पीड़ितों की यथासाध्य सेवा और सहायता करने में आपने कुछ भी उठा न रक्खा। श्रीमती नायडू के शब्दों में 'आप फरीदपुर के और फरीदपुर आपका' कहा जाता था।

वंगाल में राष्ट्रीय जीवन का प्रारम्भ कांग्रेस की स्थापना से भी पहले

हो चुका था। १८८३ में सर्वप्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन (नेशनल कांफ्रेंस) होकर न्याय-विभाग और शासन-विभाग को अलग-अलग करने की माँग की जाने लगी थी। आप उन सम्मेलनों और काँग्रेस को स्थापना होने पर उसमें भी वरावर सम्मिलित होते रहते थे। १९०२ में सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल में वकीलों को ज़िला जज के आधीन रखने के वारे में एक विल पेश हुआ था, जो आपके विरोध पर पास न होसका। फरीदपुर में जूरी द्वारा मुकदमों पर विचार करने की प्रथा १९१९ में आपके ही प्रयत्नों से शुरू की गई थी। ढाका डिवीज़न की म्युनिसिपैलिटियों की ओर से आप दो वार लेजिस्लेटिव कौंसिल के सभासद चुने गये थे।

वंग-भंग के प्रचण्ड आन्दोलन में आपका प्रमुख हाथ था। १९०५ से १९११ तक के स्वदेशी तथा वहिष्कार आन्दोलन के आप प्राण रहे थे। पूर्वी वंगाल के ज़िले-जिले में घूमकर आपने उस आन्दोलन को जागृत, संगठित और व्यापक वनाया था। ६ अगस्त १९०५ को वंग-भंग के विरोध में कलकत्ता के टाउन-हाल में जो विराट ऐतिहासिक सभा हुई थी, उसके आपही सभापति हुए थे। उसी दिन वंगाल में स्वदेशी और वहिष्कार के आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ था। इसलिए वंगाल के राजनैतिक इतिहास में वह दिन स्वर्णाक्षरों में लिखा जानेवाला (रेड लेटर्स डे) कहा जाता है। उसके साथ आपके नाम के संयुक्त होने से आपका नाम भी उस आन्दोलन के साथ-साथ अमर होगया है। आपने अपने इस विश्वास को सारे वंगाल में फैला दिया था कि "देश घोर ग़रीवी में तवाह होरहा है। उससे उद्धार पाने का एक ही उपाय है कि हम अपने स्वदेशी व्यवसाय को प्रोत्साहन एवं आश्रय देते हुए स्वदेशी के रंग में रंग जायँ। इसके लिए विदेशी का वहिष्कार ज़रूरी है। तभी स्वदेशी का विकास होसकेगा और देश राजनैतिक दृष्टि से कुछ आगे वढ़ सकेगा।"

१९१६ में लखनऊ में हुए काँग्रेस के ऐतिहासिक अधिवेशन के सभापति होने का सौभाग्य आपको ही प्राप्त हुआ था। एक दूर जिले के साधारण वकील को इतना ऊँचा सम्मान दिये जाने का यह पहला अवसर था। वह आपकी लोक-सेवा का सर्वथा उपयुक्त पुरस्कार था। सूरत के बाद इसी अधिवेशन में नरम और गरम दलों के सब लोग एक बार फिर एक जगह इकट्ठे हुए थे। लोकमान्य ने इसी अधिवेशन में भारतीय राष्ट्र को अपने इस महामन्त्र की दीक्षा दी थी कि "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर रहूँगा।" कांग्रेस-लीग-पैक्ट के नाम से प्रसिद्ध हिन्दू-मुस्लिम-समझौता इसी अधिवेशन में हुआ था। महात्मा गाँधी उस समय दक्षिण-अफ्रिका के सत्याग्रह में लगे हुए थे। आपने अपने भाषण में उसकी चर्चा करते हुए गाँधीजी के विजयी होने और बहुत बड़ा नेता बनने की भविष्यवाणी की थी। १८९४ में वर्दवान में और १९१० में कलकत्ता में बंगाल-प्रान्तीय राजनैतिक-सम्मेलन आप के ही सभापतित्व में हुए थे। १९१७ में दिल्ली में हुई इम्पीरियल वार कांफ्रेंस में आप बंगाल के प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए थे। "दी इण्डियन इवोल्यूशन" नाम की आपकी लिखी हुई पुस्तक राष्ट्रीय दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट, सुन्दर, उपयोगी और प्रामाणिक है।

वृद्धावस्था के कारण आपका शरीर दिन-पर-दिन रोगग्रस्त रहने लगा। २९ दिसम्बर १९२२ को पूर्वी बंगाल का यह राष्ट्रीय महारथी और काँग्रेस के शुरू के दिनों की याद दिलानेवाला महान् राष्ट्रवादी अपने देश को रुलाकर चल दिया। कलकत्ता में आपकी स्मृति में 'अम्बिका मेमोरियल हाल' और 'अम्बिका पब्लिक लायब्रेरी' स्थापित हैं। फरीदपुर का ही नहीं, बल्कि समस्त पूर्वी बंगाल का सारा ही राष्ट्रीय और सार्वजनिक जीवन आपका अचल कीर्तिस्तम्भ है।

: २६ :

एनी बेसेण्ट

[१८४६—१९३३]

बत्तीसवाँ अधिवेशन, कलकत्ता—१९१७

विलक्षण व्यक्तित्व, अपूर्व प्रतिभा, अगाध पाण्डित्य और अद्भुत कार्यशक्ति की पुञ्ज श्रीमती एनी बेसेण्ट का जन्म एक साधारण कुल में लन्दन में पहली अक्तूबर १८४७ को हुआ था। लन्दन में जन्म लेकर भी आपने भारत को अपना घर बना लिया और उसकी सेवा में अपने बाल पका दिये। आपका जीवन अत्यन्त घटनापूर्ण और अत्यन्त विरोधी दिशाओं में बहनेवाली धाराओं का स्रोत है। इतनी दीर्घ आयु और वृद्धावस्था में भी उस स्रोत का प्रवाह बन्द नहीं हुआ और न वह धीमा ही पड़ा, अपितु पूरे वेग के साथ उसका प्रवाह निरन्तर बना रहा। लिखने, बोलने तथा विचारने और संगठन, आन्दोलन तथा नेतृत्व करने की अलौकिक शक्ति न मालूम आपके किस पुण्य-संचय का शुभ-परिणाम थी? जिधर मुँह फेरती थीं, उधर ही बिजली की तरह फैलती हुई संजीवनी शक्ति का संचार कर डालती थीं। मृत शरीर में भी जीवन पैदा करने का जादू आपने अपने जीवन में कितनी ही बार कर दिखाया। भारतवासी आपकी सेवाओं के लिए आपके चिरकृतज्ञ रहेंगे।

पिता डाक्टर विलियम वेजवुड आयरिश थे, लेकिन लन्दन में व्यवसाय करते थे। आपका जन्म का नाम वुड था। कुमारी वुड ने अध्या-

पिका मैर्चंट से विविध विषयों की शिक्षा प्राप्त की थी। अध्ययन-काल में ही अध्यापिका ने आपके हृदय में विद्या एवं ज्ञान के लिए जो प्रेम तथा रुचि पैदा करदी थी, वह आपके जीवन के अन्तिम दिन तक बनी रही। अध्ययन-काल में फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओं का भी आपने ज्ञान प्राप्त कर लिया था। १८६७ में कुमारी वुड का फ्रैंक वेसेण्ट नाम के पादरी से विवाह होगया, लेकिन वह सम्बन्ध स्थायी न रह सका। आप स्वतंत्र विचारों की थीं। ईसाई धर्म की रूढ़ियों में आपका विश्वास न था। दूसरी ओर पति कट्टर पादरी था। वह प्राचीन प्रथाओं और रूढ़ियों का प्रबल समर्थक था। पति-पत्नी में अक्सर विवाद रहने लगा। इससे एनी वेसेण्ट का जीवन और भी दुःखमय होगया। उसी समय अपनी कन्या की बीमारी से ईश्वर के अस्तित्व, दयालुता और न्याय में भी सन्देह उत्पन्न होगया। आपके हृदय में यह सवाल पैदा होने लगा कि 'क्या हम लोग उस सर्वशक्तिमान् के लिए सिर्फ एक खिलौना हैं, जो हमारे दुःख से प्रसन्न होता है ?" गम्भीर चिन्तन और मनन के बाद आप नास्तिक होगईं और नास्तिकवाद का प्रचार करने लगीं। इससे पति-पत्नी का सम्बन्ध और भी कटु होगया। पति ने पत्नी पर गिरजा जाने और प्रार्थना करने आदि का दबाव डाला, लेकिन आपने अपनी आत्मा के विरुद्ध कार्य करने से इनकार कर दिया। फलतः १८७४ में पति-पत्नी एक-दूसरे को तलाक देकर जुदा होगये।

पारिवारिक जीवन से निश्चिन्त होकर एनी वेसेण्ट ने अपनेको सम्पूर्ण रूप से सार्वजनिक जीवन में लगा दिया। स्वतंत्र प्रकृति, प्रखर-प्रतिभा, अद्भुत साहस तथा अध्ययनशील होने के कारण आपने रूढ़ियों व अन्धविश्वासों को तोड़ दिया और जिधर आपको अपनी दृष्टि से सत्य दीख पड़ा उधर ही झुक गई। १८७४ से १८८६ तक आप

चार्ल्स ब्रेडला की स्वतंत्र हलचलों में उनका साथ देती रहीं और यह कहना अत्युक्ति न होगा कि चार्ल्स ब्रेडला को जो सफलता मिली उसका अधिकांश श्रेय आपकी प्रकाण्ड विद्वत्ता, लेखन-शक्ति, प्रचार और लगन को है। अनेक शहरों में आपके ईश्वर-विरोधी विचारों से उत्तेजित होकर जनता ने आपपर पत्थर तक फेंके और अखबारों व सभाओं में आपकी तीव्र आलोचना हुई, लेकिन उन सब बाधाओं से आप हतोत्साह न होकर और भी दुगने उत्साह से काम करने लगीं। सन् १८७४ में आप-पर संतति-निग्रह-सम्बधी पैम्फलेट प्रकाशित करने का अभियोग लगाया गया। न्यायाधीश ने उस अभियोग से तो आपको बरी कर दिया, लेकिन धर्मच्युत होने का अपराध लगा दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि आपको अपनी पुत्री से हाथ धोना पड़ा। वह पति को मिल गई। इस अभियोग से मुक्त होने पर आपने 'न्यू माल्थ्यूज़ियन लीग' नाम की संस्था द्वारा और भी ज़ोरों से संतति-निग्रह का प्रचार शुरू किया। कहना था कि जन-संख्या जिस अनुपात में बढ़ रही है, उस अनुपात में आपका खाद्य-पदार्थों की वृद्धि नहीं होरही है। इसलिए मनुष्य को कृत्रिम साधनों से संतति-निग्रह करना चाहिए।

सन् १८८९ में आपकी मुलाकात थियोसाफ़ी की प्रवर्तिका मेडम ब्लैवेट्स्की से हुई। इस मुलाकात ने आपके जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। इस सत्य को अनुभव करते ही कि भौतिक जीवन ही सब कुछ नहीं है, आध्यात्मिक जीवन उससे अधिक महत्वपूर्ण और वास्तविक है, आपने नास्तिकवाद और न्यू माल्थसवाद आदि को, जिनपर दृढ़ रहकर आपने इतना कष्ट सहन किया था, एकदम छोड़ दिया। आपने अत्यन्त निर्भीकता के साथ अपना भ्रम स्वीकार किया। नास्तिकों की नेता एनी बेसेण्ट आस्तिकों की नेता बन गईं।

उसके वाद आप वहुत कम वर्ष इंग्लैण्ड में रहीं। लेकिन, इंग्लैण्ड के सार्वजनिक जीवन में आपने अपना विशेष स्थान वना लिया। वहांके अनेक आन्दोलनों में प्रमुख भाग लिया। अपने नास्तिक मित्र चार्ल्स ब्रैडला को पार्लमेण्ट में प्रविष्ट कराने के लिए आपने घोर आन्दोलन किया। नास्तिक होने से चार्ल्स ब्रैडला पार्लमेण्ट में ईश्वर की शपथ लेने से इनकार करते थे, इसलिए उन्हें वहाँ वैठने नहीं दिया जाता था। श्रीमती एनी वेसेण्ट ने सरकार को वाधित करने के लिए एक विशाल दल संगठित किया, जिसके सदस्यों ने सेविंग वैंकों और उन वस्तुओं का वहिष्कार किया जिन-पर सरकारी टैक्स लगा हुआ था। अन्त में चार्ल्स ब्रैडला का पार्लमेण्ट में वैठने का अधिकार स्वीकार किया गया। जीते हुए पशु-पक्षी आदि की चीरफाड़ के विरोधी आन्दोलन में भी आपका मुख्य भाग था। मज़दूरों की दयनीय दशा देखकर आपका हृदय विचिलित होगया। आप साम्यवादिनी वन गई और फ़ेवियन सोसाइटी में सम्मिलित होगई। उसकी ओर से आपने मज़दूरों के लिए तुमुल आन्दोलन किया। ग़रीव मज़दूरों की पुलिस व मिल-मालिकों के पंजे से वचाने के लिए आपने 'सोशलिस्ट डिफेंस एसोसियेशन' कायम किया। 'लिंक' नामक पत्र भी आपने निकालना शुरू किया। भारत और आयर्लैण्ड के स्वातंत्र्य-आन्दोलनों के साथ भी आपकी पूरी सहानुभूति थी। इन सव विविध सार्वजनिक आन्दोलनों के साथ इंग्लैण्ड के विद्वत्समाज में भी आपकी विशेष प्रतिष्ठा थी। आपका अध्ययन और अनुशीलन अगाध था। विविध भाषाओं और विविध विषयों की आप पण्डिता थीं। थियोसोफ़ी में प्रवेश करने के वाद अध्यात्मशास्त्र आपका सवसे प्रिय विषय होगया।

थियोसोफ़ी की प्रवर्तिका मैडम व्लैवेट्स्की के देहान्त के वाद उस सोसायटी का समस्त भार आपके समर्थ कन्धों पर आपड़ा। उस महान्

उत्तरदायित्व को आपने अन्ततक बड़ी योग्यता के साथ निभाया। इसके लिए आपको प्रायः समस्त यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया व एशिया का भ्रमण करना पड़ा और इंग्लैण्ड का सार्वजनिक जीवन छोड़कर आपने विश्व के विशाल क्षेत्र में प्रवेश किया। कुछ समय बाद आप भारत आगईं और यहींसे थियोसोफ़िकल सोसाइटी का काम सम्पूर्ण देशों में चलाने लगीं। हिन्दू दर्शनों की आध्यात्मिकता की ओर थियोसोफ़ी का बहुत झुकाव है। इस नवीन सम्प्रदाय ने संसार के बड़े-बड़े विचारकों और वैज्ञानिकों को अपनी ओर सहज में आकर्षित कर लिया। श्रीमती एनी बेसेण्ट ने हिन्दू-धर्म का गम्भीर अध्ययन कर बीसियों विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिखे। इन ग्रन्थों ने यूरोपियन विद्वानों की आँखें खोल दीं। वे हिन्दू-धर्म व भारतीय संस्कृति का परिचय प्राप्त कर चकित रह गये। पश्चिम की चकाचौंध में पड़े बीसियों भारतीय विद्वान् भी अपने धर्म व अपनी संस्कृति के विशुद्ध रूप को समझने लगे। फिर तो आपने अपना समस्त जीवन भारत को अर्पित कर दिया। आप अपनी सम्पूर्ण शक्ति, विद्वत्ता, प्रतिभा और प्रभाव को लेकर भारत की सेवा में लग गईं। शिक्षा आपका प्रिय विषय था और आपने अनेक भारतीय मित्रों की सहायता से ७ जुलाई सन् १८९८ को बनारस में 'सेण्ट्रल हिन्दू स्कूल' खोला जो बाद में कालेज और फिर हिन्दू यूनीवरसिटी के रूप में परिणत होगया। उसको 'इण्डियन यूनिवरसिटी' बना देने के लिए आप बहुत उत्सुक थीं। सरकार के पास इस सम्बन्ध में आपने आवेदनपत्र भी भेजा। १९०६ में आपने इंग्लैण्ड जाकर भारत-मन्त्री से इस सम्बन्ध में बातचीत की थी। उधर मालवीयजी भी हिन्दू-विश्वविद्यालय की योजना बनाने में लगे हुए थे। यह निश्चय हुआ कि दोनों योजनायें मिला दी जावें। फलतः आपके खोले हुए कालेज को ही १९१६ में हिन्दू विश्वविद्यालय का रूप दे दिया गया।

ऐसा क्रियाशील और शक्तिशाली व्यक्तित्व भारत के राजनैतिक आन्दोलन से पृथक् नहीं रह सकता था। १९१३ से आपने इसमें कुछ दिलचस्पी लेनी शुरू की और इसी उद्देश्य से 'कामनवील' नामक साप्ताहिक पत्र निकालना शुरू किया। एक साल बाद १४ जुलाई १९१४ को 'मदरास स्टैण्डर्ड' नामक दैनिक पत्र मोल लेकर 'न्यू इण्डिया' नाम से एक दैनिक पत्र भी निकालना शुरू कर दिया। तब 'न्यू इण्डिया' भारत का सबसे अधिक लोकप्रिय पत्र था। उक्त दोनों पत्रों ने भारत में प्रचण्ड राजनैतिक जागृति पैदा की।

काँग्रेस में आपने आना-जाना शुरू कर दिया था। सबसे पहला महत्वपूर्ण कार्य आपने काँग्रेस के गरम और नरम दलों को मिलाने का किया। १९१४ में श्री गोखले व लोकमान्य तिलक में समझौता न होने पर भी आप प्रयत्नशील रहीं। १९१६ में दोनों विरोधी नेता एक प्लैटफार्म पर इकट्ठे हुए। उसके बाद समस्त भारत का राजनैतिक नेतृत्व सम्पादन करने में आपको अधिक समय न लगा। आपने नये विचार, नये दृष्टिकोण, नये साधन और नई शक्ति के साथ संगठन का एक बिलकुल नया ढंग लेकर काँग्रेस के क्षेत्र में पदार्पण किया। आपके व्यक्तित्व की छाप सारे जगत् पर पहले ही लग चुकी थी। पूर्व और पश्चिम के सभी देशों में लाखों की संख्या में आपके भक्त एवं अनुयायी विद्यमान थे। इसलिए आपको भारतीय राजनीति को एक नवीन जीवन प्रदान करने में अधिक समय नहीं लगा। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी प्रभृति काँग्रेसी नेता यूरोपीय महासमर में की गई भारत की सेवाओं के पुरस्कार में सरकार से राजनैतिक अधिकारों की माँग कर रहे थे। आपने इस दीन भावना का तीव्र विरोध किया और कहा कि "भारत को राजभक्ति के लिए पुरस्कार देने की बात कही गई थी। लेकिन भारत अपने पुत्रों

के रक्त और पुत्रियों के गर्वपूर्ण आँसुओं के साथ कोई सौदा या मौल-तौल करना पसन्द नहीं करता। वह तो एक राष्ट्र की हैसियत से न्याय पाने के अधिकार का दावा करता है। वह बतौर पुरस्कार के नहीं, बल्कि अधिकार के साथ न्याय चाहता है।"

काँग्रेस का कार्य जिस मन्द गति से चल रहा था, उससे आप सन्तुष्ट नहीं थीं। आपमें बिजली की-सी शक्ति समाई हुई थी। आप काँग्रेस को क्रियाशील जीती-जागती संस्था बनाना चाहती थीं। आपने इसी विचार से पहली सितम्बर १९१६ को होमरूल लीग की स्थापना की। होमरूल-लीग का काम जोरों के साथ होने लगा। सारे देश में होमरूल लीग की शाखाओं का जाल बिछ गया। सब जगह वासन्तीदेवी का नाम गूँजने लगा। देश में आपने नवजीवन का संचार कर दिया। सरकार घबरा गई। उसने एकसाथ सब हथियार आपके विरोध में उठा लिये। बरार और बम्बई प्रान्त में आपका प्रवेश बन्द कर दिया गया। आपके 'न्यू इण्डिया' और 'कामनवील' से, जो होमरूल का प्रचार करने के सर्वश्रेष्ठ साधन थे, ज़मानतें माँगी गईं। २०,००० रु० तक की ज़मानत ज़ब्त कर ली गई। अन्त में १५ जून १९१७ को आप मि० वाडिया और अरण्डेल के साथ गिरफ्तार कर ली गईं। होमरूल आन्दोलन प्रचण्ड आग की तरह चारों ओर फैलता चला गया। आपके सम्बन्ध में देश में इतना उत्साह भर गया कि आपको छुड़ाने के लिए काँग्रेस कमेटी ने सत्याग्रह करने पर विचार किया। मदरास में तो सत्याग्रह शुरू करने का निश्चय भी होगया। मदरास हाईकोर्ट के पेंशनयाफ्ता जज सर सुब्रह्मण्य ऐयर, 'हिन्दू'-सम्पादक श्री कस्तूरी रंगा ऐयर और श्री सी० पी० रामस्वामी ऐयर सत्याग्रह के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करनेवालों में अगुआ थे। सत्याग्रह प्रारम्भ होने ही वाला था कि मि० माण्टेगू की

प्रसिद्ध घोषणा हुई। उससे राजनैतिक वातावरण में शान्ति छा गई और सत्याग्रह का विचार स्थगित होगया। फिर भी सरकार के अन्याय का मुँहतोड़ जवाब देने के लिए देश ने उसी वर्ष कलकत्ता में होनेवाली काँग्रेस का आपको सभापति चुना। काँग्रेस के अधिवेशन से ठीक पहले आप छोड़ दी गईं। आपका भाषण भारत के स्वशासन पर लिखा गया एक बहुत ही सुन्दर निबन्ध है। आपके सभापतित्व में काँग्रेस का अधिवेशन तीन दिन का कोई मेला होकर नहीं रह गया था। आपही सर्व-प्रथम सभानेत्री थीं, जिन्होंने साल-भर तक अपने पद की ज़िम्मेदारी निबाहने का दावा किया था। आपही पहली महिला थीं, जिनको भारतीय राष्ट्र ने सम्मान के सबसे ऊँचे आसन पर बिठाया था। भारतीय महिला समाज में उससे अपूर्व जागृति पैदा हुई। होमरूल लीग के आन्दोलन में सम्मिलित होकर स्त्रियों ने पहलेपहल भारत के राजनैतिक जीवन में प्रवेश किया।

१९१६ से १९१८ तक सारे देश में आप-ही-आप थीं। श्री गोखले और श्री फ़िरोजशाह मेहता का देहान्त होचुका था। लोकमान्य तिलक अत्यन्त वृद्ध होचुके थे। स्वास्थ्य भी उनका ठीक न रहता था। सर दीनशा ईदलजी वाचा को बुढ़ापे ने आ घेरा था। श्री सुरेन्द्रनाथ के विचारों पर भी ज़ंग चढ़ना शुरू होगया था। गाँधीजी भारतीय राजनीति का अभी अध्ययन कर रहे थे। लाला लाजपतराय अमेरिका में निर्वासित का-सा जीवन बिता रहे थे। मालवीयजी के लिए देश को किसी नये मार्ग पर ले जाना सम्भव नहीं था। वह हिन्दू विश्वविद्यालय की धुन में लीन होगये थे। अप्रतिद्वन्दी सम्राट् की तरह देश के सार्वजनिक जीवन के नेतृत्व के सिंहासन पर आपका अभिषेक हुआ। महान् व्यक्तित्व, अदम्य साहस, अद्भुत कार्यशक्ति और विलक्षण प्रतिभा के जो गुण एक नेता में

चाहिएँ, वे सब आपमें यथेष्ठ मात्रा में पहले ही से विद्यमान थे। सेवा की भावना भी आपमें ओतप्रोत थी। विचार भी अत्यन्त उग्र थे। लेखनी व वाणी दोनों से आप आग बरसाती थीं। सरकार के अधिकारी और काँग्रेस के तत्कालीन नेता दोनों ही लोकमान्य तिलक के प्रति सशंक रहते थे, किन्तु आपने निर्भय होकर उनका साथ दिया।

१९१८ में आपने एक ऐसे बिल की माँग की, जिसके अनुसार १९२३ या अधिक-से-अधिक १९२८ तक भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जाय और बीच के इन पाँच या दस वर्षों में भी शासन की बागडोर क्रमशः भारतीयों के हाथों में आती चली जाय। १९१९ में महात्मा गाँधी के रौलेट बिल के विरोध में शुरू किये गये सत्याग्रह-आन्दोलन से मतभेद होने और नये शासन-सुधारों से सरकार के प्रति आशावादी बन जाने के कारण देश के नेतृत्व की बागडोर आपके हाथों में से निकल गई। इसलिए उसके बाद का आपका जीवन काँग्रेस की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं रहा।

काँग्रेस से अलग होकर भी अपने तरीक़े से अपने राष्ट्रीय प्रगति का काम जारी रक्खा। कुछ वर्षों बाद १९२५ में आपने 'कामनवेल्थ आफ इण्डिया बिल' नाम से भारत का एक शासन-विधान बनाया और उसे पार्लमेण्ट से पास कराने के लिए कई बार इंग्लैण्ड गईं। इस बिल का उद्देश्य था भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना। यह बिल पार्लमेण्ट में पेश होकर रह गया। १९२७ में मदरास में हुए काँग्रेस-अधिवेशन में आप पुनः सम्मिलित हुईं और पूर्ण स्वराज्य के ध्येय का आपने समर्थन किया। १९२८ में साइमन-कमीशन के बहिष्कार के देश-व्यापी आन्दोलन में आपने भी सहयोग दिया। सत्याग्रह आदि तीव्र उपायों से आप बिलकुल सहमत न थीं। इसलिए ८१ वर्ष की अवस्था

में भी आप कलकत्ता कांग्रेस में सम्मिलित हुईं और अपना मतभेद स्पष्ट शब्दों में उपस्थित किया ।

अत्यन्त वृद्ध होजाने की वजह से राजनीति से उदासीन होकर भी आप थियोसोफ़िकल सोसायटी का नेतृत्व करती रहीं । श्री कृष्णमूर्ति के नेतृत्व में आपने एक नया पन्थ चलाया, जिसे बाद में श्री कृष्णमूर्ति ने स्वयं ही भंग कर दिया । अडयार (मदरास) में थियोसोफ़िकल सोसायटी का जो केन्द्र आपने स्थापित किया है, उसीको आपका स्मृति-स्तम्भ समझना चाहिए ।

३० सितम्बर १९३३ को आपका देहावसान हुआ और धार्मिक एवं राष्ट्रीय दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति रखनेवाला एक महान् व्यक्तित्व संसार से उठ गया ।

: २७ :

सैयद हसनइमाम

[१८७१—१९३३]

विशेष अधिवेशन,

बम्बई—सितम्बर १९१८

"अपने प्रेम में पहला स्थान भारतमाता को, दूसरा अपने प्रान्त को और उसके बाद जो चाहो सो स्थान अपनी जाति को दो। यह याद रक्खो कि तुम पहले हिन्दुस्तानी हो, बाद में कुछ और।"..."हम न हिन्दू हैं और न मुसलमान। हम हिन्दुस्तानी हैं और बिहारी हैं।" बिना किसी सन्देह और संकोच के हिमालय की चोटी से अपनी इस राष्ट्रीयता की घोषणा करनेवाले राष्ट्रवादी मुसलमानों को जन्म देने का बिहार को विशेष गौरव प्राप्त है। उनमें सैयद हसनइमाम का अपना विशेष स्थान है। पटना ज़िले के नेवड़ा गाँव के मुग़ल-साम्राज्य में प्रतिष्ठा प्राप्त सैयद परिवार में ३१ अगस्त १८७१ को आपका जन्म हुआ था। पटना और आरा में आपकी अधिकांश शिक्षा हुई। इतिहास और अंग्रेज़ी साहित्य में आपकी अधिक रुचि थी। १४ वर्ष की आयु में आपने अंग्रेज़ी भाषा के अधिकांश कवियों के ग्रन्थ पढ़ लिये थे और स्कूल में पढ़ते हुए कालेज की सभाओं के विवाद में भाग लेना शुरू कर दिया था। माता की प्रेरणा से २४ जुलाई १८८९ को विद्याध्ययन के लिए विलायत गये। वहाँ श्री सच्चिदानन्द सिंह के साथ आप सहोदर भाई की तरह रहते थे। रात-दिन पढ़ाई में निमग्न रहते और लन्दन की

पैंड़िगटन पार्लमेण्ट के विवादों में पूरे उत्साह के साथ भाग लिया करते थे। समाचारपत्रों में आपके भाषणों की प्रशंसा हुआ करती थी। इण्डियन सोसायटी के, जिसके दादाभाई नौरोजी सभापति थे, आप मन्त्री थे। लन्दन की अंजुमन इस्लामिया के भी आप मन्त्री थे। विलियम डिग्बी के प्राइवेट सेक्रेटरी का काम भी आपने कई मास तक किया। १८९१ में सेण्ट्रल फिसबरी से दादभाई जब पार्लमेण्ट के लिए खड़े हुए, तब घर-घर घूमकर उनके लिए आपने मत-संग्रह करने का काम बड़ी योग्यता और लगन के साथ किया। १८९२ में वैरिस्टरी पास करके आप भारत लौटे। बड़े भाई अलीइमाम भी वैरिस्टर थे। वैरिस्टरी द्वारा दोनों भाइयों ने खूब धन और सम्मान पैदा किया। १९१० में कलकत्ता चले गये। उसी साल वहाँ हाईकोर्ट के जज बना दिये गये। बिहार में हाईकोर्ट की स्थापना होने पर प्रान्त के हर ज़िले से आपको उसका जज बनाने की माँग हुई। पर लैफ्टिनेण्ट गवर्नर सर चार्ल्स बेली के यह धमकी देने पर कि यदि वैसा किया गया तो वह त्यागपत्र दे देंगे, जनता की माँग पूरी न हो सकी। १९१३ में आपका स्वास्थ्य इतना गिर गया कि आप एक बार हाईकोर्ट की सीढ़ियों पर मूच्छित होकर गिर पड़े। यूरोप की यात्रा से भी कुछ लाभ न हुआ। तब आप कलकत्ता से पटना चले आये और वहाँ पहले के समान सफलतापूर्वक वैरिस्टरी करने में लग गये। पटना हाईकोर्ट का जज बनने के लिए आपसे कई बार अनुरोध किया गया, किन्तु उसको स्वीकार करने से आपने इन्कार कर दिया।

देश-हित के लिए आपके हृदय में सर्वोपरि स्थान था। जातिगत या साम्प्रदायिक दृष्टि से अधिकारों के बँटवारे के आप सदा विरोधी रहे और कांग्रेस के अधिवेशनों में भी विशेष उत्साह के साथ भाग लेते रहे। १९१० में इलाहाबाद में हुई कांग्रेस में आपने ज़िला और म्युनिसिपल

बोर्डों में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का घोर विरोध किया। सार्वजनिक संस्थाओं और कार्यों में हिन्दू-मुसलमान का विचार किये विना आप मुक्त हस्त से दान किया करते थे। अलीगढ़ और बनारस की दोनों यूनिवरसिटियों को आपने एकसमान दान दिया। विहार नेशनल कालेज पर जब भी आर्थिक संकट आया, आपने उसकी हज़ारों से सहायता की और कई वर्षों तक एक हज़ार रुपया वार्षिक देते रहे। १९०९ में गया में विहारी विद्यार्थी-सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन के सभापति हुए। १९१७ में जब होमरूल आन्दोलन ज़ोरों पर था और एनी बेसेन्ट के नज़रबन्द किये जाने पर देश में असन्तोष की आग भभक उठी थी, तब आप विहार-प्रान्तीय-राजनैतिक-सम्मेलन के अध्यक्ष हुए थे। सितम्बर १९१८ में बम्बई में काँग्रेस के विशेष अधिवेशन का समय भी वैसा ही नाज़ुक था। माण्टफोर्ड-सुधारों को लेकर देश बड़ी दुविधा में पड़ा हुआ था। तब देश की नज़र आपपर गई। आप उसके अध्यक्ष हुए और नरमदल के रूठे हुए लोग भी उसमें शामिल हुए।

राष्ट्रीयमहासभा का सभापतित्व आपको अनायास ही प्राप्त नहीं हुआ था। सार्वजनिक क्षेत्र में आपने कट्टर राष्ट्रवादी के जिस रूप में प्रवेश किया था, उसको आपने अन्त तक निवाहा। हाईकोर्ट के जज होने के बाद आप भी अपने बड़े भाई अलीइमाम के समान सरकारी दृष्टि से ऊँची-से-ऊँची प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते थे। पर आप जानबूझकर उससे दूर रहे। जिन महापुरुषों के त्याग, साधना और राष्ट्रनिष्ठा से विहार का निर्माण हुआ है, उनमें सय्यद हसनइमाम का स्थान बहुत ऊँचा है। १९०३ में पटना में श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के आगमन और काँग्रेस आन्दोलन का विरोध करने के लिए मुसलमानों की एक सभा हुई थी। उस सभा का प्रतिवाद करने में आपने जिस साहस, धैर्य और

हिम्मत का परिचय दिया था, वह कभी फीका या हलका नहीं पड़ा। १९११ में आप अलीगढ़ कालेज के ट्रस्टी और चन्दा जमा करने के लिए वनाई गई विहार-कमेटी के सभापति वनाये गये। हर रविवार का सारा दिन आप उस काम के अर्पण करते थे। ढाका में मुस्लिम-लीग का संगठन होने पर श्री मजहरुलहक़ के साथ आप उसमें शामिल होने के लिए वहाँ गये थे। उस समय उसको साम्प्रदायिकता से दूर रखने में आपने कोई वात उठा न रक्खी थी। 'विहारी' पत्र का संचालन जिस वोर्ड ने किया था, उसके आप अध्यक्ष थे। १९१९ में 'सर्चलाइट' को जन्म देने में भी आपका विशेष हाथ था और वर्षों तक उसके सव लेन-देन का जिम्मेदार आपने अपनेको ही वनाया हुआ था। होमरूल-लीग का डेपूटेशन आपके नेतृत्व में विलायत भेजा गया था और १९१९ में खिलाफत डेपूटेशन में भी, जिसमें आगाखाँ, छोटानी और डा० अन्सारी थे, आपको शामिल कर लिया गया था। १९२४ में ली-कमीशन के सामने आपने जो साक्षी दी थी, उसमें राष्ट्रवादी भारतीयों के दृष्टिकोण को आपने वहुत खूवी के साथ उपस्थित किया था।

आप जैसे कट्टर राष्ट्रवादी थे, वैसे ही पक्के समाजसुधारक भी थे। आपका यह स्पष्ट मत था कि "हमारी वहुत-सी कठिनाइयों का कारण हमारी हीन सामाजिक अवस्था है। राजनैतिक प्रगति से यदि पहले नहीं तो कम-से-कम उसके साथ तो सामाजिक प्रगति का काम होना ही चाहिए।" विद्यार्थी सम्मेलन के सभापति के भाषण में आपने कहा था कि "अछूतों को अनादिकालीन हीन अवस्था में और स्त्रियों को निराशा-पूर्ण उपेक्षा तथा विवेकहीन पराधीनता में रखने से हमारी प्रगति का चक्र सीधा न घूमकर उलटा घूमने लगेगा। स्त्रियों का वर्तमान अवस्था से उद्धार किये विना हमारे समानता के दावे को कौन स्वीकार करेगा?"

विचार, उच्चार और आचार में आप एक-से थे। इसलिए आप पहले बिहारी थे, जिन्होंने स्त्री-शिक्षा की ओर ध्यान दिया, लड़कों के साथ लड़कियों को भी घर वालों के विरोध की परवा न कर सुशिक्षित किया और उनको अपने साथ आप विलायत भी ले गये थे। आपकी ही प्रेरणा से टिकारी के महाराज ने अपनी तीन करोड़ की जायदाद का स्त्री-शिक्षा के लिए ट्रस्ट बना दिया था, जिसके आप एक प्रभावशाली सदस्य थे।

इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेने पर भी आपके जीवन और रहन-सहन में बहुत सादगी और सरलता थी। प्रायः बिहारी वेश-भूषा में आप पहले-दूसरे दर्जे में यात्रा किया करते थे। मदोन्मत्त गोरे सरकारी अफ़सर आप-के साथ बैठने में अपनी हेठी समझ आपका अपमान किया करते थे। तब आप अपने स्वाभिमान तथा स्वदेशाभिमान के लिए ऐसे अड़ जाते थे कि रेलवे स्टेशनों पर एक भीषण काण्ड उपस्थित होजाता था और आपका अपमान करनेवालों को आपसे माफ़ी तक माँगनी पड़ती थी।

१९२० में सत्याग्रह के प्रतिज्ञा-पत्र पर सबसे पहले हस्ताक्षर करने-वालों में आप एक थे। नमक-सत्याग्रह के भी आप समर्थक थे। ५००)रु० महीने की सहायता उसके लिए आपसे मिलती रही। आपकी यूरोपियन पत्नी श्रीमती नटी इमाम और लड़की महमूदा ने प्रान्त में जान फूंक दी थी। आप दोनों का सारे प्रान्त का दौरा, श्रीमती नटी की गिरफ्तारी और मुक़दमा प्रान्त के राजनैतिक इतिहास की गौरवपूर्ण घटनायें हैं।

१९३३ में एकाएक हृदय की गति बन्द होजाने से आपका देहान्त होगया, किंतु आपकी जगाई हुई राष्ट्रीय भावना आपके प्रान्त में आपके स्मारक के रूप में आज भी जागृत है और सदा ही जागृत रहेगी।

: २८ :

बाल गङ्गाधर तिलक

[१८५६—१९२०]

मनोनीत सभापति, दिल्ली—१९१८

महात्मा गाँधी के अलावा इस पराधीन देश की स्वतंत्रता के लिए सबसे अधिक तप और त्याग करनेवाला तथा जनता के हृदयों का सम्राट् बननेवाला यदि कोई व्यक्ति हुआ है तो वह स्वर्गीय लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक हैं। आपने देश के लिए उस समय बार-बार जेल के कष्टों को सहा था, जबकि देशभक्तों के लिए जेल जाना असाधारण बात थी। १९१८ में दिल्ली में हुई काँग्रेस के सभापति चुने जाने के बाद भी आप उसका सभापतित्व नहीं कर सके, यह दैवयोग की बात थी। "राष्ट्रदेवो भव" की राष्ट्रवासियों को दीक्षा देनेवाले आप सबसे पहले राष्ट्र-गुरु हैं। युग-निर्माता और राष्ट्र-विधाता होने से आपका स्थान सभी राष्ट्रपतियों से कहीं अधिक ऊँचा है। 'लोकमान्य' तथा 'हृदय-सम्राट् होने का सम्मान और किस नेता को प्राप्त हुआ है ?

आपका जन्म रत्नागिरी में २३ जुलाई १८५६ को हुआ था। आपके पिता गंगाधर रामचन्द्र तिलक कोंकण में रत्नागिरी जिले के निवासी थे। पहले वह वहीं एक स्कूल में अध्यापक थे, बाद को थाना और पूना जिलों

में स्कूलों के असिस्टेन्ट डिप्टी इन्सपेक्टर होगये थे। गणित और व्याकरण के वह बड़े विद्वान थे। आपका नाम रक्खा तो वलवन्तराव गया था, परन्तु घर में बोलचाल का नाम 'वाल' होने के कारण अन्त में प्रसिद्ध भी वही होगया। बचपन में पिता घर पर ही संस्कृत के श्लोक कण्ठस्थ कराते रहते थे और इसीको आपके शिक्षण का प्रारम्भ समझना चाहिए। जब पिता पूना चले गये, तब उन्होंने आपको नियमपूर्वक पूना सिटी स्कूल में भरती करा दिया। वहाँसे १८७२ में मैट्रिक पास करके १८७६ में प्रथम श्रेणी में आनर्स के साथ डेक्कन कालेज से बी० ए० पास किया। विद्यार्थी अवस्था से ही आपका स्वभाव बहुत हठी था। अध्यापकों के साथ बहुधा पढ़ाई-लिखाई की बातों पर झगड़ा होजाया करता था। कालेज-जीवन में व्यायाम करना, कुश्ती लड़ना, विद्यार्थियों को इसके लिए उत्साहित करना और शृंगार अथवा नाज़-नखरा करनेवालों को तंग करना आपके विद्यार्थी-जीवन की विशेषतायें थीं। इन्हींके कारण आपके साथियों ने आपका नाम 'डेविल' और 'ब्लण्ट' रख छोड़ा था। १८७७ में आपने गणित में एम० ए० की परीक्षा दी, परन्तु सफल न होसके। १८७९ में एल-एल० बी० की परीक्षा पास की, परन्तु वकालत नहीं की। कालेज में ही महाराष्ट्र के प्रसिद्ध समाज-सुधारक आगरकर से आपकी मित्रता होगई और दोनों ने अपना जीवन सरकारी नौकरी न करके देश-सेवा के अर्पण करने का निश्चय किया।

बहुत विचार के बाद दोनों ने यह निश्चय किया कि देश को सबसे अधिक आवश्यकता शिक्षा की है। इसलिए दोनों ने पहले शिक्षा का ही काम हाथ में लिया। दोनों ने स्वर्गीय चिपलूणकर शास्त्री की सहायता से १ जनवरी १८८० को १९ विद्यार्थी लेकर 'न्यू इंगलिश स्कूल' की स्थापना की। तीन ही मास में विद्यार्थियों की संख्या ५०० तक पहुँच

गई और १८८४ में एक हज़ार से भी ऊपर थी। मैट्रिक की परीक्षा में इस वर्ष इस स्कूल के ८१ प्रतिशत विद्यार्थी पास हुए थे। इसी स्कूल के अनेक अध्यापकों ने मिलकर २४ अक्तूबर १८८४ को डेक्कन एज्यूकेशन सोसायटी का संगठन किया और २ जनवरी १८८५ को इसीने पूना के प्रसिद्ध फ़र्ग्यूसन कालेज की नींव डाली। परन्तु जल्दी ही कार्यकर्ताओं में कार्य-प्रणाली की अनेक बातों पर मतभेद पैदा होगया। मतभेद की मुख्य बात यह थी कि तिलक आदि कुछ सज्जन तो कहते थे कि कार्यकर्त्ताओं को वृत्ति-मात्र लेकर अपना सब समय, सामर्थ्य और बुद्धि संस्था की सेवा में लगा देनी चाहिए। ऊपर से होनेवाली आमदनी भी संस्था को ही दे देनी चाहिए। दूसरा पक्ष यह था कि संस्था का कार्य कर चुकने पर फालतू समय में कार्यकर्त्ताओं को अन्य काम करने की छूट होनी चाहिए। इस प्रकार के मतभेदों के कारण १४ अक्तूबर १८९० को तिलक इन शिक्षण-संस्थाओं से अलग होगये।

१८८१ में तिलक और आगरकर दोनों मित्रों ने मिलकर 'केसरी' और 'मरहटा' नामक मराठी तथा अंग्रेज़ी भाषाओं के दो साप्ताहिक पत्र निकाले। पत्रों की नीति का निर्धारण ये दोनों मित्र और चिपलूणकर शास्त्री मिलकर करते थे। तीनों मिलकर उनका सम्पादन करते थे। तिलक समाज-सुधार के मामलों में जल्दी करने के पक्षपाती नहीं थे और शेष दोनों सम्पादक उग्र समाज-सुधारक थे। यह मतभेद प्राय: बना रहता था। उधर शिक्षा-संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं में भी काफी मतभेद था। इस कारण १८९१ में तिलक दोनों पत्रों की सारी जिम्मेदारी अपने सिर लेकर मित्रों से अलग होगये। उस समय 'मरहटा' पर ७,०००) का ऋण था। मित्रों से अलग होकर तिलक को आजीविका की चिन्ता हुई। 'केसरी' और 'मरहटा' से आजीविका का प्रश्न हल नहीं होसकता था।

'मरहठा' घाटे में चलता था, 'केसरी' से जो थोड़ी-बहुत आय होती थी वह उसका ऋण उतारने और घाटा पूरा करने में लग जाती थी। अतः आजीविका का प्रश्न हल करने के लिए आपने एक लॉ-क्लास खोली और अन्य दो मित्रों के साझे में एक जिनिंग फैक्टरी चलाई। फैक्टरी से न लाभ हुआ, न हानि। वह कुछ वर्ष चलकर बंद होगई। परन्तु लॉ-क्लास से लगभग १५०) मासिक आय होने लगी। इस क्लास में पढ़ाने का काम कुछ अन्य मित्र भी करते थे। यह क्लास सन् १८९६ तक चलती रही। उसके बाद दोनों पत्रों तथा अन्य सार्वजनिक जीवन का कार्य बहुत हो जाने से उसे बन्द कर देना पड़ा।

लॉ-क्लास बन्द कर देने के बाद लोकमान्य तिलक का मुख्य कार्य लोकसेवा ही रह गया और उसका मुख्य साधन उनके दोनों पत्र थे। उन्हींके कारण आप इतने लोकप्रिय हुए, और आपको अपने जीवन में बार-बार जो कष्ट उठाने पड़े, वह भी इन्हीं पत्रों के कारण। 'केसरी' इतना लोकप्रिय था कि वह तीस हजार तक छपने लगा।

आपपर पहला मुक़दमा सन् १८८२ में चला था। उस समय 'केसरी'-सम्पादक आप और आगरकर दोनों थे। मुकदमा दोनों पर चला। आपने कोल्हापुर रियासत के सम्बन्ध में कुछ लिखा था, जिसको वहाँके दीवान श्री बरवे ने मानहानिकारक बताकर सम्पादक-द्वय पर मुक़दमा चलाया। मित्रों के अनुरोध पर सम्पादकों के क्षमा माँग लेने पर भी श्री बरवे ने मुकदमा वापस नहीं लिया और दोनों को १७ जुलाई को चार-चार मास सादी क़ैद की सजा होगई। इससे जनता में दोनों की इज्ज़त बढ़ गई और जब वे जेल से छूटे, तब हजारों की संख्या में लोगों ने जेल के फाटक पर एकत्र होकर उनका स्वागत किया।

सन् १८८८ में 'केसरी' ने एक बड़ा महत्वपूर्ण आन्दोलन उठाया।

वह 'क्राफ़र्ड' प्रकरण के नाम से प्रसिद्ध है। क्राफ़र्ड नाम का एक अंग्रेज सिविलियन रत्नागिरि का कमिश्नर था। वह अपने मातहतों की मारफत रिश्वत लिया करता था। सरकार ने उसपर तथा उसके मातहत कई भारतीय तहसीलदारों आदि पर लगाये गये आरोपों की जाँच के लिए एक कमीशन बिठाया। कमीशन ने उनको तो बरी कर दिया, पर उनके साथी भारतीयों को अपराधी ठहरा दिया। लोकमान्य ने इस अन्याय के विरुद्ध अपने पत्र 'केसरी' तथा सार्वजनिक सभाओं द्वारा बड़ा आन्दोलन किया। मि० डिग्बी और ब्रेडला आदि ब्रिटिश पार्लमेण्ट के सदस्यों से पत्र-व्यवहार करके इस विषय को पार्लमेण्ट में भी उठवाया। इसपर इंग्लैण्ड में बहुत खलबली मच गई।

१८९३ और १८९४ में आपने जनता को जागृत तथा संगठित करने के दो काम और किये। गणेश-उत्सव सार्वजनिक रूप से मनाने की परिपाटी चलाई। यह प्रथा इतनी लोकप्रिय हुई कि आजतक वह महाराष्ट्र का सबसे प्रमुख उत्सव बना हुआ है। अनेक स्थानों पर मुसलमान भी यह उत्सव मनाते हैं। दूसरा उत्सव शिवाजी-उत्सव के नाम से आरम्भ किया। इन उत्सवों पर राजनैतिक विषयों पर विचार, विवाद और भाषण आदि होते हैं।

१८९५ में लोकमान्य बम्बई प्रान्तिक लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य चुने गये। कौंसिल में आप लोक-पक्ष का समर्थन बड़ी योग्यता तथा निर्भीकता से करते थे। १८९६ में महाराष्ट्र में अकाल पड़ा। आपने 'केसरी' द्वारा तो अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए आन्दोलन किया ही, ग्राम-ग्राम में कार्यकर्ता भेजकर भी लोगों की अन्नादि द्वारा सहायता की, उन्हें संगठित होकर परस्पर सहायता करने का उपदेश दिया और स्थान-स्थान पर सस्ते अन्न की दुकानें खुलवाई। इस मामले में सरकार की उदासीनता की आपने तीव्र आलोचना की।

अभी अकाल शान्त नहीं हुआ था, कि अगले वर्ष १८९७ में सारे प्रान्त में ज़ोर का प्लेग फैल गया। सरकार ने प्लेग का प्रचार रोकने के लिए 'क्वारण्टीन' बिठाई और लोगों को अपने घरों से निकालने के लिए पुलिस के अतिरिक्त गोरे सैनिकों से भी काम लिया। ये पुलिसमैन और सैनिक ग्रामीण-जनता से दुर्व्यवहार करते थे। लोगों से पैसे ऐंठने के लिए उन्हें नाना प्रकार से सताते थे, उनका असबाब आदि बेमतलब फेंक देते थे, घरों में घुसकर चोरी कर लेते थे, और कहीं-कहीं तो स्त्रियों से छेड़छाड़ करने की भी शिकायतें सुनी गईं थीं। जनता में सरकारी कार्य-कर्ताओं के विरुद्ध इतने तीव्र भाव फैले कि चापेकर नाम के एक मनचले युवक ने २२ जून १८९७ की रात को प्लेग-कमेटी के चेयरमैन मि० रैण्ड का खून कर दिया। इससे सर्वत्र बड़ी सनसनी फैल गई, और सरकार ने इसका यह अर्थ लगाया कि 'केसरी' में लिखे हुए लोकमान्य के लेखों का ही यह परिणाम है। फलतः उसने कुल लेख चुनकर लोकमान्य पर राज-द्रोह का मुकदमा चलाया और १४ सितम्बर १८९७ को १८ माह क़ैद की सज़ा दे दी। सज़ा के विरुद्ध अपील करने का भी यत्न किया गया, लेकिन सफलता नहीं मिली।

लोकमान्य शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करते हुए अपनी विद्वत्ता की छाप अनेक विद्वानों के मन पर बिठा चुके थे। उन्हीं दिनों आपने ज्योतिष-शास्त्र के आधार पर 'ओरायन' नाम से एक निबन्ध लिखा था, जिसमें वेदों की प्राचीनता सिद्ध की गई थी। यह निबन्ध ओरिएण्टल सोसायटी में पढ़े जाने के लिए लिखा गया था और बाद को १८९२ में उसी संस्था की तरफ़ से पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ था। इस निबन्ध से विदेशों के मैक्समूलर आदि विद्वानों के मन में तिलक के लिए बहुत आदर-भाव बैठ गया था। उन्होंने तथा भारतस्थ अनेक भारतीय तथा यूरोपियन

मित्रों ने तिलक को छुड़वाने का बहुत यत्न किया। इसका फल यह हुआ कि सज़ा की पूरी अवधि से ६ मास पूर्व आप छोड़ दिये गये।

जेल से छूटने के कुछ ही समय बाद आपके एक धनी मित्र सरदार बाबा महाराज का निःसन्तान देहान्त होगया। उन्होंने अपनी सम्पत्ति का एक ट्रस्ट बना दिया। आप भी ट्रस्टियों में से एक थे। ट्रस्टियों ने सरदार की युवती विधवा ताई महाराज को एक लड़का गोद दिला दिया। आपके विरोधियों ने ताई को भड़का दिया और आपपर उससे यह आरोप लगवाया कि आपने लड़का उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे ज़बरदस्ती गोद दिलवाया है। सरकार ने इसी आधार पर आपपर जाली दस्तावेज़ बनाने का मुकदमा चलाया। परन्तु उसमें आप निरपराध सिद्ध हुए। उलटा सरकारी अधिकारियों पर ऐसा करने का आरोप प्रमाणित हुआ। आपको फँसाने की सरकारी अधिकारियों की चाल बेकार गई।

आप कांग्रेस में भी आगे आ चुके थे। काँग्रेस का नियन्त्रण आपके हाथों में न होने पर भी आपकी आवाज़ उसमें महत्व रखती थी। १९०५में जब बंग-भंग होकर राजनैतिक आन्दोलन में चेतनता आई, तब आपके नेतृत्व में उग्र राजनैतिक विचारों के युवक-दल ने कांग्रेस पर अधिकार करने का यत्न किया। दो-तीन वर्ष तक काँग्रेस के अधिकारी चालबाजी से उस दल की उपेक्षा करते रहे। आखिर सन् १९०७ में सूरत की कांग्रेस में दोनों दलों में झगड़ा होकर आपका उग्र-दल कांग्रेस से अलग होगया।

१९०८ के जून में सरकार ने आपपर फिर राजद्रोह का मुकदमा चलाया। 'केसरी' के कुछ लेखों से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया कि ये राजद्रोह तथा हिंसा के पोषक हैं। आपको छः वर्ष के लिए काला-पानी और १,०००) रु० जुरमाने की सज़ा हुई। आपने अपने वक्तव्य में कहा था—"जूरी ने यद्यपि मेरे विरुद्ध राय प्रकट की है, पर मेरा अन्त-

रात्मा कहता है कि मैं पूर्णतः निर्दोष हूँ। मानवी शक्ति से दैवी शक्ति अधिक समर्थ है। क़दाचित् ईश्वर की इच्छा यही है कि मेरे स्वतन्त्र रहने की अपेक्षा मेरे कारागृह में रहने और कष्ट भोगने से मेरा अंगीकार किया हुआ कार्य आगे बढ़ेगा।" ध्येय-निष्ठा और आत्म-विश्वास का कैसा सुन्दर उदाहरण है ? हाईकोट में फुल वेंच के सामने अपील हुई, पर सज़ा वहाल रही और आपको माण्डले में नजरवन्द रक्खा गया। अपना अमर और अलौकिक ग्रन्थ 'गीता-रहस्य' आपने माण्डले की नजरवन्दी में ही लिखा था और तभी १९१२ में आपकी पत्नी का देहान्त होगया था।

१९१४ में माण्डले से मुक्त होकर आप स्वदेश लौटे। परन्तु कुछ ही समय विश्राम करने के वाद आपने श्रीमती एनी वेसेण्ट के साथ मिलकर होमरूल-आन्दोलन आरम्भ कर दिया। महाराष्ट्र में गाँव-गाँव घूमकर आपने 'होमरूल लीग' की शाखायें क़ायम कीं और लोगों को 'स्वराज्य' का सन्देश सुनाया। इसी दौरे में वेलगाँव में दिये गये एक व्याख्यान पर फिर राजद्रोह का मुकदमा चला। ज़िला-मजिस्ट्रेट ने आपको अपराधी ठहरा दिया था, लेकिन हाईकोर्ट से निरपराध सिद्ध हुए।

१९१६ में आप अपने अनुयायियों सहित काँग्रेस में फिर सम्मिलित हुए। वह ज़माना यूरोपियन महायुद्ध का था। सरकार सेना में अधिक-से-अधिक रँगरूट भरती करने के लिए देश के रईसों, ज़मींदारों और नेताओं को सहायता देने के लिए प्रेरित कर रही थी। वम्बई में इसी कार्य के लिए प्रान्त के प्रमुख व्यक्तियों की एक विशेष कांन्फ्रेंस की गई थी। आप भी उसमें सम्मिलित हुए थे। आपने उस कांफ्रेन्स में यह कहकर सबको आश्चर्य में डाल दिया कि सरकार हमें स्वराज्य देने का वचन दे तो हम रंगरूट भर्ती करने में उसकी सहायता कर सकते हैं। ऐसे विकट समय में अपना कार्य साध लेने का साहस और दूरदर्शिता आपसे पूर्व और वाद को भी

आजतक किसी भारतीय नेता ने नहीं दिखाई। इसी बात को लेकर आपका गाँधीजी से मतभेद होगया था। गाँधीजी इस प्रकार की शर्त लगाना अधर्म समझते थे और आप उसे धर्म बतलाते थे।

जब आप माण्डले में नज़रबन्द थे, तभी सर वैलेण्टाइन शिरोल ने 'इण्डियन अनरेस्ट' नाम की पुस्तक लिखी थी और उसमें आपपर भी अनेक अपमानजनक आक्षेप किये गये थे। सन् १९१८ में विलायत जाकर आपने शिरोल पर मानहानि का मुकदमा चलाया। भारत-सरकार नें उसमें इतनी दिलचस्पी ली कि शिरोल की सहायता के लिए यहाँसे तमाम सरकारी कागज़ात लेकर एक विशेष अफ़सर विलायत भेजा गया। अंग्रेज़ों ने इसे अपनी और अपने देश की प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। मुकदमे का फैसला लोकमान्य के विरुद्ध हुआ।

मुकदमे से निबटकर लोकमान्य ने अपना समय इंग्लैण्ड में भारतीय स्वराज्य के लिए आन्दोलन करने में लगाया। उन दिनों माण्टेगु-चेम्फोर्ड-शासन-विधान ब्रिटिश पार्लमेण्ट के सामने पेश था। उसमें भी आवश्यक सुधार करने के लिए आन्दोलन किया। भारतीय कांग्रेस की लन्दन-शाखा की बड़ी अव्यवस्था थी। उसका पुनः संगठन किया और वहांकी लेबर पार्टी के अनेक नेताओं की भारत में विशेष रूप से दिलचस्पी उत्पन्न की और उस पार्टी को भारत के लिए आन्दोलन करने को पचास हज़ार रुपये दिये। उसके बाद लोकमान्य जब स्वदेश लौटने को हुए तब उनके भक्तों ने सोचा कि यहाँ आते ही उनका स्वागत, उनकी साठवीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में उनको एक लाख रुपये की थैली भेंट करके, किया जाय। इतनी बड़ी धन-राशि केवल एक मास में एकत्र होगई। इसीसे उनकी लोकप्रियता का पता लग जाता है। जनता की इस भेंट को स्वीकार करके आपने उसे होमरूल-लीग को दान कर दिया।

दिल्ली में १९१८ में हुई कांग्रेस के आप सर्वसम्मति से सभापति चुने गये, किन्तु शिरोल के मुकदमे के लिए इंग्लैण्ड चले जाने के कारण आप सभापति न होसके।

मांण्टफोर्ड-सुधार-योजना के सम्बन्ध में कार्य-शैली स्थिर करने के लिए आपने 'डेमोक्रेटिक स्वराज्य पार्टी' बनाई ही थी कि जून (१९२०) मास के अन्त में किसी मुकदमे के सम्बन्ध में बम्बई आने पर ऐसे बीमार पड़े कि फिर उठ न सके और ३१ जुलाई की रात को आपका 'सरदार-गृह' में देहावसान होगया। जुलाई का सारा महीना, विशेषकर अन्तिम ८-१० दिन देशवासियों ने ऐसी चिन्ता, व्यग्रता और उद्विग्नता में बिताये जैसे कि घर में घर का ही कोई आदमी बीमार पड़ा हो। सर्वसाधारण के साथ अपनेको तन्मय करके 'लोकमान्य' और 'हृदय-सम्राट्' दोनों शब्दों को सार्थक करनेवाले भगवान तिलक के लिए वैसा होना स्वभाविक ही था। कैसा विचित्र संयोग था! पहली अगस्त को राष्ट्रीय हड़ताल मनाने का निश्चय किया जा चुका था। उस हड़ताल की तैयारी में लगे हुए देशवासी बड़े सवेरे ही यह वेदनापूर्ण समाचार सुनकर निस्तब्ध रह गये। राष्ट्रीय हड़ताल मातम की हड़ताल में परिणत होगई। वैसा सार्वजनिक मातम इस देश ने उससे पहले कभी नहीं मनाया गया था। आपकी दुःखद मृत्यु के साथ देश के राष्ट्रीय क्षितिज में देदीप्यमान सूर्य अस्ताचल को चला गया और गाँधीजी के रूप में सोलह कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा ने उसका स्थान ले लिया।

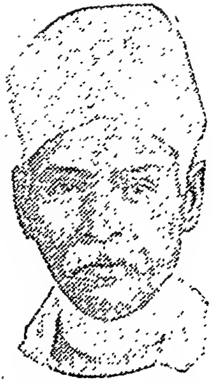

: २६ :

मदनमोहन मालवीय

[जन्म—२५ दिसम्बर १८६१]

चौबीसवाँ अधिवेशन, लाहौर—१९०९

तेतीसवाँ अधिवेशन, दिल्ली—१९१८

"महामना मालवीयजी ही एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो साबरमती के सन्त के साथ खड़े किये जा सकते हैं। वह सिर से पैर तक हृदय ही हृदय हैं।" इलाहाबाद के 'लीडर' के स्वनामधन्य सम्पादक श्री सी० वाई० चिन्तामणि ने मालवीयजी के व्यक्तित्व का यथार्थ वर्णन ऊपर के शब्दों में किया है। मालवीयजी का महान् जीवन अनुकूल तथा प्रतिकूल दिशाओं में बहनेवाली विरोधी धाराओं का सम्मिश्रण है। इसीसे वह एक गूढ़ समस्या है, जिसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बहुत मनोरंजक है। आपका दिल गरम है और दिमाग़ नरम। जब आपका दिल बोलता है तब आप आग बरसाने लगते हैं, और जब दिमाग़ बोलता है तब आप आगे बढ़ते हुए राष्ट्र या समाज का 'ब्रेक' बन जाते हैं। आपके सार्वजनिक जीवन की कहानी दिल और दिमाग़ के संघर्ष का जीवित इतिहास है। दिल जब दिमाग़ को जीत लेता है, तब आप स्वयं रोते, दूसरों को रुलाते और अपने सर्वस्व की बाजी लगा, सैकड़ों-हजारों के सिर हथेली पर रखवा, आत्मोत्सर्ग का होम रच डालते हैं; और जब दिमाग़ दिल को हरा देता

है, तब आप किन्तु-परन्तु के चक्कर में पड़ प्रगति के मार्ग पर अग्रसर राष्ट्र को भी पीछे घसीटने में लग जाते हैं। इसपर भी आपकी महानता निर्विवाद, लोकसेवा उत्कृष्ट, देशभक्ति असन्दिग्ध, व्यक्तित्व वंदनीय, जीवन अनुकरणीय और चरित्र निष्कलंक है।

आपका जन्म २५ दिसम्बर १८६१ को इलाहाबाद में हुआ था। आपके पूर्वज मालवा से आकर इलाहाबाद में बसे थे। वे संस्कृत के उद्भट विद्वान् थे। आपके पिता पं० ब्रजनाथजी ने संस्कृत में कई ग्रन्थ लिखे थे, जिनको बाद में आपने प्रकाशित करवाया। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा सर्वज्ञानोपदेशक संस्कृत पाठशाला में और धर्मवर्द्धिनी-सभा की पाठशाला में हुई थी। गवर्मेण्ट हाईस्कूल में पढ़ाई करके आपने १८७९ में कलकत्ता में मैट्रिक की परीक्षा पास की थी। म्योर कालेज अहमदाबाद से १८८४ में बी० ए० किया। एम० ए० की पढ़ाई शुरू करके छोड़ दी और गवर्मेन्ट स्कूल में ५०) पर नौकरी करली। तीन वर्ष में आपको ७५) मिलने लगे।

कालाकांकर के राजा रामपालसिंह ने अपने यहाँसे 'हिन्दुस्तान' नाम का एक दैनिक-पत्र १८८७ में शुरू किया था। आप अध्यापकी छोड़कर २५०) मासिक पर उसके सम्पादक होगये। आपकी वक्तृत्व-शक्ति, प्रतिभा और योग्यता देखकर ह्यूम साहब, पण्डित अयोध्यानाथ, राजा रामपालसिंह और पण्डित सुन्दरलाल आदि ने आपको वकालत पढ़ने के लिए प्रेरित किया। सम्पादकी करते हुए ही आपने १८९१ में वकालत पास कर १८९३ में वकालत शुरू करदी। अच्छे-अच्छे मुक़दमों को हाथ में लेकर अच्छी आमदनी कर लेने पर भी आपने अपनेको वकालत के साथ तन्मय नहीं किया। सार्वजनिक जीवन और देशसेवा के कार्य को निभाने के लिए उसको आपने सिर्फ साधनरूप में अपनाया। इस बारे

में हाईकोर्ट के एक जज ने ठीक ही कहा था कि 'गेंद आपके सामने पैरों के पास पड़ी थी, पर आपने उसे उठाया नहीं।'

विद्यार्थी-जीवन से ही आपको सार्वजनिक कामों का विशेष शौक था। 'इलाहाबाद लिटरेरी इंस्टीट्यूट' और 'हिन्दू समाज' की आपने उन्हीं दिनों स्थापना की थी। काँग्रेस में आपने १८८६ में कलकत्ता में हुए उसके दूसरे अधिवेशन से जाना शुरू किया था। वाणी की मधुरता, भाषा के प्रवाह और भावों की प्रखरता के कारण आपको श्रोताओं और नेताओं दोनों ही को जीतने में और कांग्रेस में अपना स्थान बना लेने में अधिक समय नहीं लगा। मि० ह्यूम ने उस अधिवेशन की रिपोर्ट में लिखा था कि "जिस भाषण के लिए काँग्रेस के पण्डाल में कई बार तालियाँ बजीं और जिसको जनता ने बहुत उत्साह के साथ सुना, वह पं० मदनमोहन मालवीय का भाषण था। पण्डितजी की गौरवपूर्ण मूर्ति और हृदयग्राही मधुर भाषण ने वहाँ बैठे हुए सभीके चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर लिया।" कांग्रेस के हर अधिवेशन में आप सम्मिलित होते, महत्वपूर्ण प्रस्तावों पर आपके भाषण अवश्य होते और चारों ओर उनकी सराहना होती। १९०७ में सूरत में काँग्रेस में नरम और गरम दल का जब झगड़ा हुआ, तब समझा यह जाता था कि आप गरम-दल का साथ देंगे। पर, लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि आप नरम-दल की ओर रहे और सूरत के बाद मदरास में कन्वेंशन-काँग्रेस होने के बाद लाहौर में १९०९ में जो नरम-दली काँग्रेस हुई, उसके आप सभापति हुए। चुने तो गये थे फ़िरोज़शाह मेहता, किन्तु किसी कारण से उन्होंने अधिवेशन से छः ही दिन पहले इन्कार कर दिया था। ब्रिटिश शासन को भारत के लिए परमात्मा की देन मानकर यावच्चन्द्रदिवाकरौ यहाँ उसके बने रहने की प्रार्थना करनेवालों में आप उस समय अन्यतम थे। ऐसे ही भावों से

आपका वह भाषण ओत-प्रोत था। १९०८ में लखनऊ में होनेवाली प्रान्तिक कांफ्रेंस भी आपके ही सभापतित्व में हुई थी। काँग्रेस के साथ अपने सम्बन्ध को तबसे अबतक आपने बराबर बनाये रक्खा है और सेवक, नेता, कर्ता-धर्ता, सहयोगी असहयोगी, सत्याग्रही आदि सभी रूपों में आपने पूरे उत्साह तथा लगन के साथ उसकी सेवा की है। विरोध या मतभेद होने पर भी आपने उसका साथ नहीं छोड़ा। दूसरे लोग जहाँ विरोधी या विरक्त, विद्रोही या उदासीन होगये। वहाँ आपने उसकी ममता को बनाये रक्खा। यही कारण है कि १९१८ में दिल्ली में काँग्रेस के सभापतित्व के जिस आसन पर हृदय-सम्राट् लोकमान्य तिलक का अभिषेक होने को था, वहाँ उनकी अनुपस्थिति में आपको बिठाया गया था और १९३२ तथा १९३३ में दिल्ली तथा कलकत्ता के सरकार-द्वारा निषिद्ध अधिवेशनों का सभापतित्व करने के लिए राष्ट्र की पुकार पर सब जोखम उठाकर आप वृद्धावस्था में भी दौड़े हुए गये थे और जेल तक जाना स्वीकार किया था।

काँग्रेस-सेवा की तरह आपका धारा-सभाओं का कार्यकाल भी अच्छा लम्बा है। पं० विश्वम्भरनाथ की मृत्यु से प्रान्तिक कौंसिल में रिक्त स्थान की पूर्ति आपने १९०२ में की थी। १९१० में आप इम्पीरियल कौंसिल के सदस्य चुने गये थे। तबसे १९२९ तक आप उसके निरन्तर सभासद रहे हैं। १९३३ के निर्वाचन में भी आपके निर्विरोध चुने जाने की आशा थी, किन्तु मतदाताओं की सूची में आपका नाम न होने से आप रह गये। धारा-सभाओं में आपका जीवन और कार्य काँग्रेस के जीवन और कार्य के समान ही महत्वपूर्ण और गौरवशाली रहा है। वहाँ दिये हुए आपके प्रायः सभी भाषण बहुत मार्के के होते थे। सरकार की आलोचना या विरोध करने में आप कभी नहीं चूकते थे। रौलेट एक्ट

का विरोध और पंजाब के फ़ौजी क़ानून पर रोष प्रकट करते हुए आपने जो भाषण दिये थे, वे इतिहास में सदा ही स्मरण रहेंगे। रौलेट-एक्ट के विरोध में अन्य अनेक सदस्यों के साथ आपने भी इम्पीरियल कौंसिल से १९१८ में इस्तीफ़ा दे दिया था। उसके बाद फ़ौजी शासन की मार से जब पंजाब मूर्छित पड़ा हुआ था, तब उसकी सुधि लेने के लिए दौड़कर वहाँ पहुँचनेवालों में पहले स्वामी श्रद्धानन्द और आप थे। आपने उन दिनों में मर्माहत पंजाब की जो सेवा की, उससे सदा के लिए उसको अपना बना लिया।

१९२० में काँग्रेस में नया जीवन और देश में नया युग पैदा होने पर आपकी स्थिति प्रायः सदा ही डावाँडोल रही। १९१९ में अमृतसर में काँग्रेस के अधिवेशन में माण्टफोर्ड-सुधारों को स्वीकार कर सरकार के साथ सहयोग करनेवालों के आप अगुआ थे। गाँधीजी भी आपके साथ थे। सरकार पर उस समय भी आपको पूरा भरोसा और विश्वास था। गाँधीजी का यह विश्वास जल्दी ही हिल गया और सरकार के साथ असहयोग करने की ठानकर उन्होंने देशवासियों में स्वावलम्बन की भावना फूँकनी शुरू कर दी। काँग्रेस ने आप सरीखे नेताओं के विरोध करने पर भी गाँधीजी का कार्यक्रम स्वीकार कर लिया। अन्त में अधिकांश नेता भी उनके साथ होगये, किन्तु आपका सरकार में वैसा ही विश्वास बना रहा। सारे देश ने एक व्यक्ति के समान युवराज की भारत-यात्रा का बहिष्कार किया। जहाँ भी युवराज गये, वहाँ जबरदस्त हड़तालें हुई और काले झण्डे फहराये गये। ५० हज़ार देशवासी और मोतीलालजी, देशबन्धु व मौलाना आज़ाद सरीखे नेता जेलों में बन्द किये गये। अपनेको काँग्रेसवादी कहलानेवालों में केवल मालवीयजी ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने हिन्दू-विश्वविद्यालय में युवराज को बुलाकर

उनका स्वागत किया था। दिल उस समय दिमाग़ के आधीन था। सब देश एक ओर था और आप दूसरी ओर। माण्ट-फोर्ड-सुधारों के अनुसार बनी हुई कौंसिलों का बहिष्कार किये जाने पर भी आप उसमें गये। १९२३ में स्वराज्यपार्टी की स्थापना हुई, काँग्रेस ने कौंसिलों की लड़ाई लड़ना तय किया और १९३० में फिर से सत्याग्रह के मार्ग का अवलम्बन करने के लिए उनको त्याग दिया। इस सब उतार-चढ़ाव का आपपर कुछ भी असर न हुआ। १९२१ से १९३० तक आप अपने ही ढंग से असेम्बली में बने रहे। इसमें सन्देह नहीं कि आपने वहाँ सदैव निर्भीक, साहसी और राष्ट्रीय वृत्ति का परिचय दिया। चुनाव में काँग्रेस-स्वराज्य-पार्टी के साथ न रहकर भी वहाँ आपने उसका पूरी तरह साथ दिया। १९२६ के चुनाव के समय लाला लाजपतराय के साथ और १९३४ में लोकनायक अणे के साथ मिलकर नेशनलिस्ट-पार्टी बनाई और उसकी ओर से काँग्रेस के विरोध में चुनाव लड़ा। इस संघर्ष को देश के राष्ट्रीय जीवन का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। १९३६ में हुए प्रान्तीय चुनावों के अवसर पर भी आपको नेशनलिस्ट-पार्टी का मोह बना रहा। युक्तप्रान्त में काँग्रेस के साथ समझौता कर लेने पर भी पंजाब में नेशनलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार का समर्थन करने के लिए आप हवाई जहाज से लाहौर और अमृतसर गये।

१९२९ में दिल ने दिमाग़ पर एक बार फिर ऐसी विजय प्राप्त करली कि युवराज का स्वागत करनेवाले मालवीयजी भी साइमन-कमीशन के बहिष्कार में सबसे आगे रहे। लेकिन काँग्रेस में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव स्वीकृत किये जाने के बाद देश में सत्याग्रह की ज़बरदस्त लहर पैदा होने पर भी आप उससे दूर कुछ समय तक असेम्बली में ही रहे। अन्त में सत्याग्रही बनकर जेल तक जाने की घटनाओं से पहले

बीच की कुछ और घटनाओं का सिंहावलोकन कर लेना ज़रूरी है।

१९२१-२२ में जब सारा देश असहयोग और सत्याग्रह की आँधी में उड़ा जा रहा था और बिगुल बजने की प्रतीक्षा में युद्ध के लिए तैयार खड़े हुए सैनिकों के समान बारडोली भारत की थर्मापोली बनने को गाँधीजी के संकेत की प्रतीक्षा में था, तब ५ फरवरी १९२२ को गोरखपुर में चौरीचौरा का वह काण्ड होगया, जिससे देश की सत्याग्रह की लड़ाई ८-१० वर्ष के लिए पीछे पड़ गई। उस समय गाँधीजी को सत्याग्रह से पराङ्मुख करने में उनके 'बड़े भाई' मालवीयजी का सबसे बड़ा हाथ था। विच्छृंखल सेनाओं के नैतिक पतन के समान देश का भी राष्ट्रीय दृष्टि से नैतिक पतन होगया। साम्प्रदायिक विच्छृंखलता चारों ओर छा गई। जहाँ-तहाँ हिन्दू-मुस्लिम दंगे होने लगे। मालवीयजी में हिन्दू आस्तिकता कूट-कूटकर भरी हुई है। हिन्दू-संस्कारों का आपके दिमाग़ पर आधिपत्य है। आपके जन्म और शिक्षण के साथ हिन्दूपन के प्रबल संस्कारों का जो रंग आपपर चढ़ चुका है, वह उग्र राष्ट्रीयता छा जाने पर धीमा या फीका नहीं पड़ता। आपका वही स्वरूप आपको हिन्दू महासभा की ओर खींच लेगया। आपका एक पैर कांग्रेस में रहा, तो दूसरा हिन्दू-महासभा में। दिल और दिमाग़ के इस संघर्ष ने आपको १९२२ में हिन्दू-महासभा के साथ तन्मय कर दिया। कई वर्षों तक आप उसके सर्वेसर्वा रहे। स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय और आप उन दिनों में हिन्दू-महासभा के प्रमुख कर्णधार थे। स्वामीजी महासभा को समाज-सुधार-सम्बन्धी कार्यों में लगाकर हिन्दू-समाज को संगठित, सम्पन्न तथा बलवान बनाना चाहते थे और आप तथा लालाजी उसको हिन्दुओं की प्रातिनिधिक राजनैतिक संस्था बनाने में लगे थे। १९२६ में आप दोनों ने महासभा को नेशनलिस्ट पार्टी की ओर से लड़ी जानेवाली

असेम्बली के चुनाव की लड़ाई का साधन बना लिया। उसीका यह परिणाम है कि हिन्दू-महासभा समाज-सुधारक संस्था न बनकर साम्प्रदायिक संस्था बन गई और उसका लक्ष्य एकमात्र हिन्दुओं के नाम से चुनाव की लड़ाई लड़ना रह गया। इसीसे १९२३–२४ के दिनों के मालवीयजी १९३४ में भी हिन्दू-महासभा के पूना-अधिवेशन के सभापति हुए।

१९३४–३५ में हरिद्वार की श्री गंगासभा-द्वारा हर की पैड़ी पर हुए कथा-सत्याग्रह में आपका शामिल होना हिन्दू संस्कारों का ही परिणाम समझना चाहिए। जनवरी १९३८ में आपने इलाहाबाद में आयुर्वेद की प्राचीनतम पद्धति के अनुसार कायाकल्प का प्रयोग कर स्वास्थ्य-लाभ करने का जो यत्न किया, उससे अपने देश की प्राचीन पद्धति में आपके विश्वास एवं श्रद्धा का परिचय मिलता है और यह पता चलता है कि देश-सेवा के लिए अधिक-से-अधिक दिन जीवित रहने की आपकी इच्छा कितनी प्रबल है।

आपके इस स्वरूप की सबसे बड़ी देन बनारस का 'हिन्दू-विश्वविद्यालय' है। बहुत पहले से आपका विचार हिन्दुओं की शिक्षा के सम्बन्ध में ऐसा कोई काम करने का था। इलाहाबाद में आपने हिन्दू-बोर्डिंग-हाउस बहुत पहले खोला था। विश्वविद्यालय के लिए वैसे आपने १९०४ से आन्दोलन शुरू कर दिया था, किन्तु १९११ में उसके खोलने का आपने दृढ़ निश्चय कर लिया। उसके लिए एक योजना बना, गले में भिक्षा की झोली डाल, आप घर से निकल पड़े।' साधारण लोगों से लेकर बड़े-बड़े नेताओं और राजा-महाराजाओं तक का सहयोग आपको मिल गया। पाँच ही वर्षों में आपने एक करोड़ रुपया जमा कर लिया। ४ फरवरी १९१८ को उसकी आधारशिला रक्खी गई। सरकारी चार्टर प्राप्त करने

पर आपके अच्छे-अच्छे समर्थक भी आपसे अलग होगये और उसके लिए आपकी कड़ी टीका-टिप्पणी की गई। विरोध में चाहे कुछ भी कहा जाय, पर इसमें सन्देह नहीं कि 'हिन्दू-विश्वविद्यालय' मालवीयजी का स्थायी कीर्त्ति-स्तम्भ है और उस द्वारा आपने बनारस के शिक्षा-केन्द्र होने के प्राचीन गौरव को इस युग में भी पुनर्जीवित कर दिया है।

हिन्दू-समाज के साथ-साथ हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य की भी आपने उल्लेखनीय सेवायें की हैं। वर्तमान हिन्दी के निर्माताओं में आपकी गणना की जा सकती है। आपके उद्योग से इलाहाबाद में कभी 'प्रयाग-साहित्यिक सभा' की स्थापना की गई थी। १९०८ में आपने 'अभ्युदय' निकालना शुरू किया था। १९१० में 'मर्यादा' मासिक पत्रिका निकालनी शुरू की थी। अदालतों में सब काम उर्दू में ही होता था। इससे ग़रीब किसानों को बहुत असुविधायें होती थीं। १९०० में आपने यह क़ानून बनवाया कि अदालतों का काम उर्दू और हिन्दी दोनों में हो। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भी जन्मदाताओं में से आप एक हैं और उसके दो बार सभापति बन चुके हैं। हिन्दू-विश्वविद्यालय के द्वारा होनेवाली हिन्दी की सेवा का श्रेय भी आपको ही है।

पं० अयोध्यानाथ जी द्वारा संचालित 'इण्डियन यूनियन' पत्र का आपने कई वर्षों तक सम्पादन किया था। इलाहाबाद के सुप्रसिद्ध पत्र 'लीडर' के संस्थापक होने का भी आपको गौरव प्राप्त है।

समाज-सुधार आपके जीवन का मिशन नहीं है, फिर भी इस सम्बन्ध में आपका कार्य बहुत यशस्वी है। प्रगतिगामी सुधारक आपको सुधारों के मार्ग में बाधक मानते हैं, किन्तु पुरातनपन्थी आपपर बिगड़कर आर्य-समाजी तक होने का दोषारोपण करते रहते हैं। आपका दिल सामाजिक बुराइयों को देखकर जल पड़ता है, किन्तु दिमाग़ पर पड़े हुए संस्कार

आपको एकाएक आगे बढ़ने से रोकते हैं। आपके सम्बन्ध में यह बिलकुल ठीक कहा गया है कि "आप पुरातन और नवीन, स्थिति और गति को परस्पर बाँधनेवाली ज़ंजीर हैं।" आप सनातनी सुधारक हैं, नवीन सुधारक नहीं। सनातनियों को समाज-सुधार की ओर खींचने का उद्योग आप सतत करते रहे हैं। उसके लिए आपको सनातनियों की ओर से प्रतारणा, लाञ्छन और अपमान तक सहन करना पड़ा है। 'अछूत' कहे जानेवालों को मन्त्र-दीक्षा देने, मन्दिरों में देव-दर्शन का अवसर देने और स्कूलों, कुओं, तालाबों, उत्सवों, सभाओं आदि में स्पर्शास्पर्श न मानने का आन्दोलन करने में आप बहुत समय से लगे हुए हैं। १९२९ में श्री जमनालाल बजाज के उद्योग से इस कार्य के लिए एक कमेटी बनाई गई थी, आप उसके सभापति थे। हिन्दू-महासभा के कई वार्षिक अधिवेशनों में और कई सनातनधर्म-सम्मेलनों में इस आशय के प्रस्ताव आपकी ही प्रेरणा से स्वीकृत होते रहे हैं। रजोधर्म से पूर्व कन्या का विवाह होने के यदि आप पूरे विरोधी नहीं हैं, तो उससे पहले उसके द्विरागमन के तो आप निश्चित ही विरोधी हैं। विधवा-विवाह में आप यहाँतक आगे बढ़ आये हैं कि बाल-विधवा के पुनर्विवाह में आपको कोई आपत्ति नहीं रह गई है। १९३१ में गोलमेज-परिषद् के लिए विलायत जाकर आपने समुद्र-यात्रा का बन्धन तोड़ डाला है। हिन्दू-समाज से हरिजनों को अलग करने की सरकार की कूटनीति के विरोध में सितम्बर १९३२ में गाँधीजी ने यरवदा-जेल में जब आमरण अनशन करने का निश्चय किया था, तब पूना पहुँचकर पूना-पैक्ट करवाने का यत्न करनेवालों में आप अगुवा थे। उसी समय २५ सितम्बर को बम्बई में आपके सभापतित्व में हिन्दुओं की विराट सभा हुई थी, जिसमें अस्पृश्यता को मिटाने और अछूतों के साथ बिना किसी भेदभाव के समानता का व्यवहार करने की

प्रतिज्ञा सारे हिन्दू-समाज की ओर से की गई थी। श्री घनश्यामदास विड़ला की अध्यक्षता में हरिजनों की सेवा का कार्य करनेवाले जिस 'हरिजन-सेवक-संघ' का जाल इतने थोड़े समय में सारे देश में विछ गया है, वह उसी सभा में की गई प्रतिज्ञा का फल है। उसी वर्ष इलाहावाद के अर्धकुम्भ पर हरिजनों को शिवरात्रि पर शिव-मन्त्र की दीक्षा देने का निर्णय सनातनधर्म-महासभा ने आपके ही सभापतित्व में किया। इसी सम्वन्ध में वनारस में की गई एक सभा में आपपर सनातनियों की ओर से आक्रमण तक किया गया था। आपका यह निश्चित मत है कि हरिजनों के साथ मनुष्यता का, पूर्ण समानता का, व्यवहार होना चाहिए। १९३८ में वनारस में ब्राह्मण विद्वत् परिपद् का अधिवेशन आपके सभापतित्व में होकर ब्राह्मणमात्र में परस्पर रोटी-वेटी-व्यवहार करने का सराहनीय निश्चय किया गया है। यह आशा रखनी चाहिए कि समाज-सुधार के अन्य विपयों पर भी आपका दिल दिमाग पर विजय प्राप्त कर लेगा और आप इस क्षेत्र में भी वहुत आगे खड़े दीख पड़ेंगे। गो-रक्षा और गो-सेवा आन्दोलन के तो आप प्राण रहे हैं। इलाहावाद की सेवा-समिति आपके सेवा-भाव की जीती-जागती एक उत्कृष्ट निशानी है।

१९३० और ३२ के आन्दोलनों में मालवीयजी ने पूरा भाग लिया। इतना कि आप वार-वार जेल गये,आन्दोलन का आपने स्वयं संचालन किया और सरकारी आज्ञाओं की अवज्ञा करके देहली और कलकत्ता में कांग्रेस के अधिवेशनों को सफल वनाने की वाज़ी लगा दी। १९३० के सत्याग्रह का आरम्भ १९२९ की लाहौर-कांग्रेस की पूर्ण स्वाधीनता की घोपणा से हुआ था। वाइसराय ने गांधीजी और मोतीलालजी को उस अधिवेशन से पहले दिल्ली में मिलने के लिए वुलाकर उस अवसर को टालना चाहा था। १ नवम्वर १९२९ को असेम्वली में भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य

देने की गोलमोल घोषणा भी इसी उद्देश्य से की गई थी। मालवीयजी के दिमाग़ ने दिल को दबा लिया। सारे राष्ट्र में सत्याग्रह की तय्यारी हो जाने और राष्ट्रवादियों के असेम्बली से चले आने पर भी आप वहाँ ही बने रहे। सरकार के साथ सहयोग करने की आपकी भावना नहीं बदली। गाँधीजी ने डांडी-यात्रा के लिए प्रस्थान किया और देश में जहाँ-तहाँ सत्याग्रही सेनाओं का 'डबल मार्च' होने लगा। ६ अप्रैल को नमक-क़ानून तोड़ा गया और सरकार की ओर से दमन का नंगा नाच शुरू हो गया। मालवीयजी का दिल पिघल गया। असेम्बली त्यागकर आप भी मैदान में चले आये। स्वदेशी-प्रचार और विदेशी-बहिष्कार की आपने चारों ओर धूम मचा दी। कार्य-समिति के ग़ैरकानूनी घोषित किये जाने पर आप अपनेसे होकर उसके सदस्य हुए। जुलाई के अन्त में उसके अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए आप बम्बई गये। वहाँ १अगस्त को लोकमान्य की बर्षी का जलूस पुलिस-कमिश्नर की आज्ञा की अवज्ञा करके निकाला गया। आप सबसे आगे थे। जलूस को रोककर पुलिस-कप्तान मि० गाडविन ने कहा—"जलूस आगे नहीं जा सकता।" आपने कहा—"अच्छा, हम यहाँ खड़े रहेंगे।" "कब तक ?" पुलिस-कप्तान ने पूछा। "अपने जीवन के अन्तिम दिन तक"—आपने उत्तर दिया। अन्त में आप गिरफ्तार किये गये। १००) जुर्माना या १५ दिन क़ैद की सज़ा हुई। आप जेल चल दिये। पीछे किसीने जुर्माना चुका दिया और आप छोड़ दिये गये। आपने उसको बहुत बुरा माना। उसके बाद गुजरात का दौरा किया। २७ अगस्त १९३० को दिल्ली में कार्य-समिति की फिर बैठक हुई। डाक्टर अन्सारी के यहाँ कार्रवाई पूरी करके सब सदस्य चाय आदि पीने और गप्प-शप्प मारने में लगे हुए मानो पुलिस के आने की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। सरदार पटेल, डा० अन्सारी आदि के साथ आप

भी गिरफ्तार किये गये। छः मास की सज़ा हुई। कुछ दिन दिल्ली जेल में रहे, फिर नैनी भेज दिये गये। जेल में आपके रहन-सहन और भोजन आदि का विशेष प्रबन्ध किया गया था। फिर भी स्वास्थ्य ठीक न रहने से आपको जल्दी छोड़ दिया गया।

गाँधी-अरविन-समझौते में आपका भी हाथ था। उसके बाद कराँची काँग्रेस में भी आप शामिल हुए। दूसरी गोलमेज़-परिषद् के लिए आप भी निमन्त्रत किये गये। गाँधीजी के विना आप जाने को तैयार न थे। अन्त में २९ अगस्त १९३१ को आप गाँधीजी के साथ विदा हुए। वहाँ सब बातों में आपने गाँधीजी का पूरा साथ दिया। सेना की व्यवस्था और संरक्षणों के सम्बन्ध में आपके भाषण बहुत मार्के के हुए। यूरोप के कुछ स्थानों पर होते हुए १४ जनवरी १९३२ को जब आप स्वदेश लौटे, तब यहाँ सत्याग्रह का आन्दोलन ज़ोरों पर था और सब नेता तथा कार्यकर्त्ता जेलों में बन्द किये जा चुके थे। पुलिस के नृशंस आर्डिनेन्स-राज का चारों ओर बोलबाला था। १९३२ में दिल्ली में और १९३३ में कलकत्ता में काँग्रेस के जो निषिद्ध अधिवेशन किये गये, उन दोनों का सभापतित्व करने के लिए जाते हुए पहली बार दिल्ली में जमुना के पुल पर और दूसरी बार आसनसोल में आप गिरफ्तार किये गये थे। पाँच-सात दिन से अधिक आपको जेल में नहीं रक्खा गया।

नवम्बर १९३२ में आपने हिन्दू-मुस्लिम समझौते के लिए लगकर एक बार फिर यत्न किया। इलाहाबाद में पहले ३ नवम्बर को, फिर १३ दिसम्बर १९३२ को एकता-सम्मेलन के सफल अधिवेशन वयोवृद्ध श्री विजयराघवाचार्य के सभापतित्व में हुए। पंजाब की जटिल समस्या सुलझा ली गई थी और सिन्ध का सवाल भी हल होजाता, पर नौकर-शाही की कूटनीति के कारण आपका वह यत्न सफल न होसका।

१९३४ के प्रलयकारी विहार-भूकम्प से आहत देशवासियों की सेवा तथा सहायता के लिए आप भी विहार गये थे और विहार-केन्द्रीय-सहायक-समिति के फण्ड में दान देने के लिए आपने कई अपीलें भी निकाली थीं।

१८-१९ मई १९३४ को पटना में महासमिति की वैठक होकर पार्लमेण्टरी वोर्ड वनाने का निश्चय किया गया। उसको वनाने का कार्य-भार डा० अन्सारी और आपको सौंपा गया था। साम्प्रदायिक वटवारे के सम्वन्ध में काँग्रेस की उदासीन नीति को लेकर काँग्रेस के साथ आपका और लोकनायक अणे का मतभेद होगया। समझौते की सब चेष्टायें व्यर्थ सिद्ध हुईं। आप पार्लमेण्टरी बोर्ड से अलग होगये और नेशनलिस्ट पार्टी का आपने संगठन किया। वम्बई में आपने अपनी वात काँग्रेस के सम्मुख फिर रक्खी, पर कुछ परिणाम न निकला। असेम्वली का चुनाव अपने काँग्रेस के विरुद्ध नेशनलिस्ट पार्टी के नाम से लड़ा, पर सफलता नहीं मिली। साम्प्रदायिक समझौते के विरुद्ध देशव्यापी आन्दोलन करने और उसके विरोध में विलायत एक शिष्टमण्डल लेजाने का आपने यत्न किया। ७५ वर्ष की वृद्धावस्था में शरीर के जीर्ण और स्वास्थ्य के शीर्ण होजाने से आप इस सम्वन्ध में अपनी आकांक्षा पूरी नहीं कर सके। पीछे कई वार नेशनलिस्ट पार्टी को भंग करने के सम्वन्ध में विचार किया गया। लेकिन, नाममात्र को वह क़ायम है और आप उसके प्रधान हैं। पिछले कई मासों से तो आपका शरीर और स्वास्थ्य प्राय: गिरा रहता है। इसीसे सार्वजनिक समारोहों में आपके लिए शामिल होना सम्भव नहीं रहा। फिर भी आप १९३६ में फैजपुर में होनेवाली काँग्रेस में शामिल हुए। वहाँ आपका अत्यन्त तेजस्वी और ओजस्वी भाषण हुआ। हरिपुरा-काँग्रेस में आप शामिल नहीं होसके थे।

देशसेवा से 'रिटायर्ड' होजाने का अधिकार आपको निश्चय ही बहुत पहले मिल चुका है, किन्तु जिस हृदय में देश की स्वतन्त्रता की आग सुलग चुकी है, जो अपना सर्वस्व देश की सेवा के अर्पण कर चुका है और जिसने देशवासियों के दुःख-दर्द तथा मुसीवत में अपनेको भुला दिया है, उसके दिल और दिमाग़ में 'रिटायर' होने का विचार या कल्पना पैदा ही नहीं होसकती। वस्तुतः मालवीयजी का महान् जीवन एक संस्था है, जिसका सम्वन्ध एक व्यक्ति से न रहकर पैंतीस करोड़ देशवासियों के साथ होगया है।

डा० पट्टाभि ने कांग्रेस के इतिहास में आपके सम्वन्ध में बहुत सुन्दर शब्द लिखे हैं। उन्होंने लिखा है कि "मालवीयजी बड़े-बड़े तूफ़ानों के समय में भी, प्रशंसा और वदनामी, किसीकी भी परवा न करते हुए सदैव कांग्रेस का पल्ला पकड़े रहे हैं। मालवीयजी अकेले ही ऐसे व्यक्ति हैं, जिनमें इतना साहस है कि जिस वात को वह ठीक समझते हैं, उसमें चाहे कोई भी उनका साथ न दे, वह अकेले ही मैदान में खम ठोककर डटे रहते हैं। लोकापवाद के भय से या शिथिलता अथवा अकर्मण्यता के कारण कभी भी आप समय के प्रवाह में नहीं वहे।.........सब मिलाकर आपका स्थान अनुपम और अद्वितीय है।" इसमें सन्देह नहीं कि कांग्रेस के प्रारम्भिक दिनों का स्मरण करानेवाले ऐसे अनुपम और अद्वितीय व्यक्तित्व की देश को आज भी ज़रूरत है। इसलिए पैंतीस करोड़ देशवासी एक हृदय और एक भावना से आपके स्वस्थ्य एवं दीर्घ-जीवन की सदा ही कामना करते रहते हैं।

: ३० :

लाजपतराय

[१८६५—१९२८]

विशेष अधिवेशन, कलकत्ता—१९२०

"लालाजी एक संस्था थे । अपनी जवानी के समय से ही उन्होंने देशभक्ति को अपना धर्म बना लिया था और उनके देशप्रेम में संकीर्णता न थी । वह अपने देश से इसलिए प्रेम करते थे कि वह संसार से प्रेम करते थे । उनकी राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता से भरपूर थी । उनकी सेवायें विविध थीं । वह बड़े ही उत्साही समाज-सेवक और धर्म-सुधारक थे । ऐसे एक भी सार्वजनिक आन्दोलन का नाम लेना सम्भव नहीं, जिसमें लालाजी शामिल न थे । सेवा करने की उनकी भूख सदा ही रहती थी । उन्होंने शिक्षण-संस्थायें खोलीं, वह दलितों के मित्र बने, जहाँ कहीं दुःखी दारिद्र होता वहीं वह दौड़ पड़ते थे ।" ये शब्द गाँधीजी ने पंजाब-केसरी के देहावसान पर 'यंग इण्डिया' में लिखे थे । सचमुच ही आपका जीवन चहुँमुखी था । आपके पिता लाला राधाकृष्ण पंजाब के ज़िला लुधियाना के जगरांवा गाँव के निवासी थे, परन्तु स्कूलों के इन्सपेक्टर होने के कारण प्रायः जगरांवा से बाहर ही रहते थे । आपका जन्म अपनी ननिहाल ढोंडीग्राम में २८ जनवरी १८६५ को हुआ था । प्रारम्भिक शिक्षण पिता ने अपने पास रखकर निजीरूप से कराया । १८८० में लुधियाना के मिशन स्कूल से इण्ट्रेन्स पास किया और वहींसे

छात्रवृत्ति प्राप्त करके लाहौर जाकर एफ० ए० तथा मुख्तारी की परीक्षायें पास कीं। मुख्तारी १८८३ में पहले जगरांवा में और फिर रोहतक में की। वकालत की परीक्षा पास करने के बाद आप हिसार में 'प्रैक्टिस' करने लगे। लाहौर में विद्यार्थी-अवस्था में ही आपका परिचय श्री गुरुदत्त विद्यार्थी तथा महात्मा हंसराज आदि से होगया था और आर्यसमाज की ओर आपके विचारों का झुकाव होकर आपमें समाज-सेवा का शौक पैदा होगया था। शीघ्र ही आप हिसार की म्युनिसिपैलिटी के अवैतनिक मन्त्री बन गये। १८८६ में पंजाब के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर हिसार आये थे। म्युनिसिपैलिटी ने उन्हें मानपत्र देने का निश्चय किया। म्युनिसिपैलिटी के प्रेसिडेण्ट हिसार के डिप्टी कमिश्नर मानपत्र अँग्रेजी में देने के पक्षपाती थे और आप उर्दू में। अन्त में आप जीते और आपने ही उसे पढ़ा भी।

हिसार में आप ६ वर्ष तक रहे। १८९२ में आप लाहौर चले गये और वहीं वकालत करते हुए आर्यसमाज की सेवा करने लगे। १८८६ में दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक-कालेज की स्थापना होचुकी थी। लाहौर आने से पहले भी आप उसकी थोड़ी-बहुत सेवा करते रहते थे। लाहौर जाकर तो उसकी सेवा अध्यापक और अवैतनिक मन्त्री आदि के रूप में कई वर्ष तक करते रहे। १९०१ में आपने पंजाब में शिक्षा-संघ क़ायम किया और अपने ग्राम में पिता के नाम पर राधाकृष्ण हाईस्कूल और पंजाब में अनेक स्थानों पर प्राइमरी पाठशालायें खोलीं।

१८९६ में उत्तरी भारत में, १८९९ में राजपूताना में और १९०७–८ में बिहार में तथा संयुक्तप्रान्त के दक्षिणी जिलों में भयानक दुर्भिक्ष पड़े। उन सबमें और १९०५ के कांगड़ा-भूकम्प में आपने पीड़ितों की सेवा का बहुत बड़ा काम किया। बिहार-दुर्भिक्ष के आपके कार्य का तो

मर्दुमशुमारी की सरकारी रिपोर्ट में भी प्रशंसा के साथ उल्लेख किया गया था। सन् १९०१ में भारत-सरकार ने जो दुर्भिक्ष-कमीशन विठलाया था, उसके सामने पंजाव-सरकार की तरफ़ से गवाही देने के लिए आपको भेजा गया था।

काँग्रेस से आपके परिचित होने और उसमें प्रविष्ट होने की कथा बड़ी मनोरंजक है। काँग्रेस की स्थापना के समय तो अधिकतर ब्रिटिश अधिकारी उसके पक्षपाती थे, परन्तु दो-तीन वर्ष में ही अनेक अधिकारी उसके विरोधी होगये और उन्होंने जिन भारतीयों को उसका विरोध करने के लिए अपना हस्तक वनाया, उनमें अलीगढ़ के सर सैयदअहमद भी थे। उनमें लालाजी के पिता की गहरी श्रद्धा थी और उनके लेखों तथा भाषणों आदि को वह स्वयं बड़े शौक़ से पढ़ते तथा लालाजी को भी सुनाया करते थे। जव सर सैयद ने अपना रुख वदला। तव उनको बड़ा आश्चर्य हुआ और पिता-पुत्र दोनों ने लाहौर के उर्दू 'कोहनूर' में तथा अंग्रेज़ी पत्रों में भी सर सैयद के नाम कई खुली चिट्ठियाँ प्रकाशित करवाईं। उसी समय लालाजी का ध्यान काँग्रेस की ओर गया और १८८८ में आप पहलीवार जार्ज यूल की अध्यक्षता में हुई इलाहावाद की कांग्रेस में शामिल हुए। उस समय आपकी आयु केवल २३ वर्ष की थी। उक्त काँग्रेस में आपने कौंसिल-सुधार के प्रस्ताव पर उर्दू में ही भाषण दिया था, जिसकी वड़ी प्रशंसा हुई थी और तभी वड़े-बूढ़ों ने आपको होनहार वक्ता वतलाया था। आपने उस समय यह विचार पेश किया था कि कांग्रेस को शिक्षा और देशी उद्योग-धन्धों की ओर ध्यान देना चाहिए। काँग्रेस के साथ होनेवाली औद्योगिक प्रदर्शिनियाँ आपके उस विचार का ही परिणाम हैं। उसके वाद आप काँग्रेस के प्रायः सभी अधिवेशनों में शामिल होते रहे और अन्त तक काँग्रेस में पंजाव के मुख्य प्रतिनिधि आप ही माने जाते रहे।

काँग्रेस की ओर से इंग्लैण्ड भेजे गये डेपुटेशनों में आप दो वार शामिल हुए। पहली वार १९०६ में और दूसरी वार १९११ में। पहले डेपुटेशन मे आपके साथ श्री गोपालकृष्ण गोखले भी गये थे। इन डेपुटेशनों के अतिरिक्त आप स्वयं १९०२ में, फिर १९१० में इंग्लैण्ड गये और वहाँ व्याख्यानों, लेखों और मुलाक़ातों द्वारा आपने भारत के लिए सराहनीय काम किया। १९१४ में यूरोपियन माहयुद्ध आरम्भ होजाने के कारण आपको स्वदेश लौटने का पासपोर्ट नहीं मिला और आप अमेरिका चले गये। १९२० तक वहीं रहकर आपने भारत के लिए वड़ा जवरदस्त आन्दोलन किया। वहाँ 'इण्डियन होमरूल लीग' और 'इण्डिया इनफ़ारमेशन व्यूरो' नामक संस्थायें स्थापित कीं। प्रथम संस्था के हिन्दुस्तानियों के अलावा एक सहस्र से कुछ अधिक अमेरिकन भी सदस्य होगये थे। दूसरी संस्था का उद्देश्य अमेरिकन जनता को हिन्दुस्तान तथा हिन्दुस्तानियों के सम्बन्ध में ठीक-ठीक ज्ञान देना था। 'यंग इण्डिया' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी आपने वहाँसे निकाला था। हिन्दुस्तान के वारे में अनेक पुस्तक-पुस्तिकायें भी लिखीं और लाखों की संख्या में उनको मुफ्त बँटवाया। २० फरवरी १९२० को आपको अमेरिका से स्वदेश लौटने की आज्ञा मिली।

१९०७–८ में वंग-भंग के कारण वंगाल में जो राष्ट्रीय जागृति पैदा हुई थी, उसका प्रभाव पंजाव पर भी पड़ा था। वहाँ भी अनेक घटनायें ऐसी होगई थीं जो उस जागृति में सहायक हुई थीं। ज़िला मिण्टगुमरी के आसपास सरकार ने जो वस्तियाँ वसाई थीं, उनमें लगान आदि को लेकर अनेक झगड़े खड़े होगये थे। उस जागृति में आगे वढ़कर काम करनेवाले दो प्रमुख व्यक्ति सरदार अजीतसिंह और लाला लाजपतराय थे। मई १९०७ को पंजाव-सरकार ने लालाजी को माण्डले (वर्मा) के

क़िले में नज़रबन्द कर दिया। ११ नवम्बर १९०७ तक आपको वहीं नज़रबन्द रक्खा गया। जब आप वहाँसे छूटकर आये, तब काँग्रेस में गरम और नरम दलों का विरोध उग्ररूप धारण कर चुका था। लाल-बाल-पाल के नाम के गरम दल के जो तीन नेता उस समय देश में सर्वत्र लोकप्रिय होरहे थे, वे पंजाबकेसरी, लोकमान्य और विपिनचन्द्र पाल थे। दोनों दलों में विरोध का फल यह हुआ कि १९०७ के अन्त में सूरत में हुई काँग्रेस में झगड़ा होगया। हाथापाई के अतिरिक्त कुर्सियों से भी काम लिया गया। गरमदल उसका सभापति आपको ही बनाना चाहता था। लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में गरमदल काँग्रेस से अलग होगया। लालाजी उसके बाद भी काँग्रेस में रहकर दोनों दलों में सुलह कराने का यत्न करते रहे, परन्तु सफल न हुए। १९१२–१३ में गाँधीजी ने दक्षिण अफ़्रिका में जो सत्याग्रह किया था, उसके लिए गोखले की प्रेरणा पर आपने चालीस हज़ार रुपया पंजाब से जमा किया था।

फ़रवरी १९२० में अमेरिका से स्वदेश लौटने के तुरन्त बाद ही आप देश की राजनैतिक सेवा में लग गये। सितम्बर १९२० में गाँधीजी के असहयोग-आन्दोलन सम्बन्धी प्रस्ताव पर विचार करने के लिए कलकत्ता में काँग्रेस का जो विशेषाधिवेशन हुआ, उसके आपही सभापति बनाये गये। लड़ाका वृत्ति होने पर भी असहयोग एवं सत्याग्रह में आपका इतना विश्वास न था। अपने अन्तिम भाषण में आपने अपने इस अविश्वास को प्रकट भी कर दिया था, परन्तु नागपुर में जब काँग्रेस ने उसको अन्तिम रूप से स्वीकार कर लिया तब आप भी जी-जान से उसमें कूद पड़े। किसी भी काम को आधे मन से करना तो आप जानते ही न थे। १९२१ के आरम्भ में देखते-देखते ही पंजाब में आपने सरकारी स्कूल-कालेजों को खाली करा दिया। जिस डी० ए० वी० कालेज की जड़ों को किसी

समय आपने अपने पसीने से सींचा था, उसको खाली कराने के लिए आपको उसकी सीढ़ियों पर बैठकर धरना तक देना पड़ा। विद्यार्थियों की स्वतन्त्र राष्ट्रीय शिक्षा का प्रबन्ध लाहौर में एक कालेज खोलकर आपने किया।

पंजाब में आपके द्वारा होनेवाली राष्ट्रीय जागृति को सरकार अधिक बरदाश्त नहीं कर सकी। ३ दिसम्बर १९२१ को आपको गिरफ्तार करके १८ महीने की क़ैद और ५०० रु० जुरमाने की सजा देदी गई। थोड़े दिन बाद आप छोड़ दिये गये, परन्तु आप चुप बैठनेवाले नहीं थे। शीघ्र ही फिर गिरफ्तार कर लिये गये। ९ मार्च १९२२ को आपको राजद्रोह में दो वर्ष की सजा हुई। जेल में आपका स्वास्थ्य बहुत खराब होगया। राष्ट्रीय पत्रों में छुटकारे के लिए बहुत आन्दोलन हुआ। राजयक्ष्मा (तपेदिक़) के भयानक होजाने पर १६ अगस्त १९२३ को आपको छोड़ दिया गया। कुछ मास आराम करने के बाद आप फिर राजनैतिक कार्य में लग गये। १९२३ के अन्त में कांग्रेस-स्वराज्य-दल की ओर से आप भी लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्य निर्वाचित हुए। १९२५ में आपका उस दल से मतभेद होगया और सन् १९२६ के चुनाव में मालवीयजी के साथ मिलकर आपने नेशनलिस्ट पार्टी की स्थापना की। दलबन्दी के जोश में आप १९२६ के चुनाव में पंजाब के दो निर्वाचन-क्षेत्रों से खड़े हुए और दोनों से ही चुने गये। परन्तु स्वराज्य-दल के उस विरोध के कारण देश के राजनैतिक क्षेत्रों में आप पहले के समान लोकप्रिय नहीं रहे। १९२७ में पं० मोतीलालजी के साथ फिर आपका मेल होगया और अन्ततक वह मित्रता अधिकाधिक गहरी होती गई। नेहरू-रिपोर्ट के तैयार करने में भी आपने नेहरूजी की बड़ी सहायता की थी। आप दोनों की गहरी मित्रता और सहयोग से देश

को वड़ा लाभ होने की आशायें थीं, परन्तु १९२८ के नवम्बर में ही लालाजी इस लोक को छोड़ गये।

देश की राजनैतिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ आपके हृदय में हिन्दू-जाति के लिए भी वड़ा दर्द था। दलितोद्धार और शिक्षा-सम्वन्धी आपके काम इसी हिन्दुत्व-प्रेम के परिणाम थे। आर्यसमाज में प्रवेश और डी० ए० वी० कालेज की सेवा भी इसी कार्य के अंग थे। १९०७ में माण्डले में नज़रवन्द रहते हुए आपने कई धार्मिक निवन्ध भी लिखे थे। वहाँसे छूटने के वाद १९०९ में आपने पंजाव में हिन्दू-सभा की स्थापना की। उस समय कुछ आर्यसमाजियों ने उसका विरोध किया था। वाद को जव पं० मालवीयजी ने हिन्दू-महासभा का संगठन किया, तव हिन्दुओं का वहुत वड़ा भाग लालाजी के पक्ष में होगया। १९२३ में शुद्धि और तवलीग़ तथा संगठन और तंज़ीम आन्दोलनों के कारण हिन्दुओं में जो साम्प्रदायिक जागृति पैदा हुई, उसमें आपने पूरी तरह योग दिया। १९२५ में आप हिन्दू-महासभा के कलकत्ता में होनेवाले स्मरणीय अधिवेशन के सभापति वने। अक्तूवर १९२८ में इटावा में आप युक्तप्रांतीय हिन्दू-कान्फ़्रेंस के अध्यक्ष हुए थे। १९२६ में स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या होने के वाद हिन्दू जनता की दृष्टि आपपर ही थी। परन्तु शुद्धि तथा संगठन के पक्षपाती होते हुए भी आपके विचारों ने संकीर्ण साम्प्रदायिकता का रूप धारण नहीं किया। आप अन्ततक पृथक् निर्वाचन के विरुद्ध सम्मिलित चुनाव-पद्धति के पक्षपाती रहे।

आपकी सार्वजनिक सेवायें चौमुखी थीं। राजनीति, समाज-सुधार, शिक्षा और लोकसेवा के अतिरिक्त दलितोद्धार के लिए भी आपने वड़ा काम किया। सन् १९०० से भी पहले, जव कि कांग्रेस में किसीने इस महत्वपूर्ण कार्य की आवश्यकता को अनुभव भी नहीं किया था, आपने

सियालकोट के आसपास मेघ आदि अनेक दलित जातियों की दशा को उन्नत करने का बड़ा काम किया था। उन जातियों की आज की अवस्था को देखकर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि जब आपने उनके उद्धार का काम आरम्भ किया था, तब उनकी दशा क्या रही होगी। आपके देहान्त के बाद, आज भी, आपकी स्थापित की हुई सर्वेण्ट्स आफ़ पीपुल सोसायटी (लोक-सेवक-मंडल) के सदस्यों का मुख्य काम दलितोद्धार ही बना हुआ है। उक्त सोसायटी को आपने अमेरिका से लौटने के बाद १९२० में स्थापित किया था। उस समय आपने अनुभव किया था कि देश के नवयुवकों में राजनीति तथा अर्थशास्त्र का ज्ञान फैलाने और उनमें सेवा-भाव उत्पन्न करने की अत्यन्त आवश्यकता है। इसी विचार से पहले तिलक स्कूल आफ पॉलिटिक्स के नाम से एक स्कूल खोला और बाद को उसी स्कूल का रूपान्तर यह सोसायटी होगई। इस सोसायटी के सदस्यों को अपना ज्ञान बढ़ाने में सुगमता हो इसलिए आपने द्वारिकादास लायब्रेरी नाम से एक बड़ा पुस्तकालय भी स्थापित किया था। मृत्यु से कुछ समय पूर्व अपनी माता के नाम पर आपने तपेदिक का एक अस्पताल खोलने के लिए भी एक बड़ी धन-राशि दान दी थी। इन लोकोपकारी कार्यों में आपने अपनी प्राय: सब कमाई लगा दी थी।

आपकी साहित्यिक सेवायें भी उल्लेखनीय हैं। साहित्य को देशसेवा का आपने प्रधान साधन बनाया था। 'मेरी जायदाद मेरी क़लम है'— अपने इस कथन की सचाई को अपने जीवन में आपने पूरा कर दिखाया था। वाणी के प्रवाह की तरह लेखनी के प्रवाह पर भी आपका कमाल का क़ाबू था। जैसे वक्ता थे, वैसे ही लेखक भी थे। मेजिनी, गैरीबाल्डी, शिवाजी, कृष्ण, बन्दा वैरागी, स्वामी दयानन्द, गुरुदत्त विद्यार्थी आदि की जीवनियों द्वारा देशवासियों में देश-सेवा की भावना जगाने का आपने

सराहनीय यत्न किया था। अमेरिका रहते हुए आपने जो पुस्तकें लिखी थीं, उनमें 'आर्यसमाज,' 'भारत का राजनैतिक भविष्य' और 'यंगइण्डिया' बहुत सुन्दर और उपयोगी पुस्तकें हैं। मिस मेयो की 'मदर इण्डिया' के जवाब में लिखी गई 'अनहैपी इण्डिया' (दुःखी भारत) आपकी सर्वोत्तम रचना है। आपकी लिखी हुई अपनी 'आत्म-कथा' भी बहुत बढ़िया है। शुरू के आर्यसमाजी जीवन में आर्यसमाजी पत्रों में आपके बहुत ज़ोरदार लेख निकला करते थे। कुछ पत्रों का उन दिनों में आपने सम्पादन भी किया था। 'तिलक स्कूल आफ पॉलिटिक्स' की ओर से उर्दू में दैनिक 'वन्देमातरम्' और अंग्रेज़ी में साप्ताहिक 'पीपुल' भी निकालने शुरू किये थे, जो आपके देहान्त के बाद वर्षों तक लोक-सेवक-मण्डल की ओर से प्रकाशित होते रहे।

आपका स्वभाव बहुत मानी था। स्वाभिमान और स्वदेशाभिमान की आप मूर्त्ति थे। आप सब-कुछ सह सकते थे, परन्तु अपने अथवा अपनी मातृभूमि के अपमान को सहन नहीं कर सकते थे। आपके जीवन का अन्त भी इसी स्वभाव के कारण हुआ। १९२८ में जब ब्रिटिश सरकार ने साइमन-कमीशन की नियुक्ति की और उसमें एक भी भारतीय को नहीं रक्खा; तब देश ने एक स्वर से उसके बहिष्कार का निश्चय किया। भारत में सब जगह उस कमीशन का बहिष्कार काले झण्डों और 'साइमन वापस जाओ' के नारों से किया गया। ३० अक्तूबर १९२८ को वह कमीशन लाहौर पहुँचा। स्थानीय अधिकारियों ने उस दिन वहाँ दफ़ा १४४ लगाकर सब प्रकार के जलूसों और सभाओं को रोक दिया था। लाहौर स्टेशन के बाहर सशस्त्र पुलिस का पहरा था। आपने उन सब की परवा न कर साइमन-कमीशन के बहिष्कार का जलूस निकाला। आप स्वयं उसके आगे-आगे थे। पुलिस-अधिकारियों ने खिजकर उस

जलूस पर लाठियों से हमला किया। लालाजी के भी कई लाठियाँ लगीं। यदि रायज़ादा हंसराज उन लाठियों को अपने ऊपर न लेलेते, तो आपके बहुत चोट आती। आपके मन और शरीर पर उस अपमान का इतना गहरा असर हुआ कि उसीके कारण १७ नवम्बर के प्रातःकाल ७ बजे आपने इस लोक को त्याग दिया। पंजाबकेसरी के उस अपमान को पंजाब के युवकों ने कितना अनुभव किया था, यह बाद की घटनाओं से प्रकट है। असेम्बली में भी कई बार इसकी चर्चा हुई। आपका यह कथन देश के राजनैतिक इतिहास में सदा ही अमिट बना रहेगा कि "मेरे शरीर पर पड़ी हुई एक-एक चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफ़न की कील होगी।" आपके ये शब्द भी भुलाये नहीं जासकते कि "मेरा मज़हब हक़परस्ती है, मेरी मिल्लत क़ौमपरस्ती है, मेरी इबादत खल्क़परस्ती है, मेरी अदालत मेरा अन्तःकरण है, मेरी जायदाद मेरी क़लम है, मेरा मंदिर मेरा दिल है और मेरी उमंगें सदा जवान हैं।"

लाहौर में आपकी स्मृति को क़ायम करने का सराहनीय उद्योग किया गया है। कम्पनी बाग़ में आपकी प्रतिमा खड़ी की गई है और निवास-स्थान पर शानदार 'लाजपतराय भवन' बनाया गया है। लोक-सेवक-मण्डल भी आपका एक स्मारक ही है।

: ३१ :

चक्रवर्त्ती विजयराघवाचार्य

[जन्म, जून—१८५२]

पैंतीसवाँ अधिवेशन, नागपुर—१९२०

काँग्रेस की सुवर्ण-जयन्ती के साथ अपनी सार्वजनिक सेवाओं की सुवर्ण-जयन्ती मनाये जाने का अहोभाग्य प्राप्त करनेवाले स्वनामधन्य वयोवृद्ध श्रीयुत चक्रवर्त्ती विजयराघवाचार्य का जीवन उस विचार-प्रवाह की अटूट धारा है, जिसका उद्‌गम आज से ५०-६० वर्ष पहले, काँग्रेस की स्थापना से भी पूर्व, हुआ था और जिसने देश में पूर्ण स्वतंत्रता की उस भावना को जन्म दिया, जो आज सारे देश में व्याप रही है। ह्यूम को यदि काँग्रेस का पिता कहा जाता है, तो आपको उसका पितामह कहना चाहिए। दादाभाई को बड़ी आयु की वजह से 'पितामह' कहा जाता था, किन्तु काँग्रेस को जन्म देकर अवतक उसके साथ अपने सम्बन्ध को निभानेवाले आप सच्चे अर्थों में काँग्रेस के 'पितामह' हैं। शुरू से ही दृढ़, निर्भीक, साहसी, स्वाभिमानी और आत्मत्यागी योद्धा का-सा आपका जीवन रहा है। स्वदेशवासियों के जन्मसिद्ध अधिकारों की पताका को आपने अपने सुदृढ़ हाथों में सम्हालकर सदा ऊँचा फहराये रक्खा है। अपने ध्येय में एकनिष्ठा और आचार-विचार में निर्भीकता तथा स्वतं-त्रता आपका सबसे वड़ा गुण है। व्यक्तिगत स्वार्थ की कुत्सित भावना

का लवलेश भी आपमें नहीं है। काँग्रेस या उसके संचालकों के साथ यदा-कदा तीव्र मतभेद होजाने पर भी आपने कभी उसका विरोध नहीं किया और उसके विरोध में कभी किसी दूसरी संस्था का साथ भी नहीं दिया। शासन-विधान-सम्बन्धी क़ानून का आपका ज्ञान और सभी देशों की शासन-व्यवस्थाओं का आपका अध्ययन अगाध है। आप इन विषयों के अद्वितीय पण्डित हैं। काँग्रेस में इन विषयों पर आपकी सम्मति सदा ही प्रमाण मानी जाती रही है। विज्ञापनबाज़ी से इतना दूर रहनेवाले हैं कि काँग्रेस के खुले अधिवेशनों के प्लेटफ़ार्म पर सामने आने से भी सदा दूर रहना ही आपने पसंद किया, किन्तु उसकी अंतरंग कमेटियों, विषय-समितियों और गुप्त मन्त्रणाओं में आप प्रारम्भ से ही प्रमुख भाग लेते रहे हैं। आपको काँग्रेस का हृदय और दिमाग़ समझना चाहिए।

आपका जन्म जून १८५२ में चेंगलपेट जिले के पोनविलैन्द कलत्तूर गाँव में एक बहुत कट्टर वैष्णव परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री सतगोपाचार्य कट्टर पुरातनपन्थी और संस्कृत के महान् पण्डित थे। अनेक व्यक्ति अपनी धार्मिक आशंकाओं की निवृत्ति के लिए उनके पास आया करते थे। वह अपने पुत्र को भी अपने समान संस्कृत का विद्वान्, गण-पाठी या वेदपाठी बनाने के विचार से अंग्रेज़ी आदि कोई भी भाषा नहीं पढ़ाना चाहते थे। इसलिए चौदह वर्ष की आयु तक ब्रह्मचारी वेश में रखकर आपको केवल वेदाध्ययन कराया गया। परन्तु आपकी तीव्र इच्छा अंग्रेज़ी पढ़ने की थी और उसके लिए किसी अवसर की तलाश में आप सदा ही रहा करते थे। १५ वर्ष की आयु में आप घर से भागकर अपने गाँव के पास अपने मामा के यहाँ मदुरान्तकम् गाँव में चले गये और वहाँ मामा के लड़कों के साथ अंग्रेज़ी पढ़ने लगे। पचिअप्पा हाई-स्कूल में आपने एण्ट्रेंस की परीक्षा पास की। १८७५ में प्रेसिडेन्सी कालेज

से सेकण्ड क्लास आनर्स के साथ बी० ए० पास किया। आपने सब पढ़ाई बिना फीस के पूरी की, क्योंकि सभी परीक्षा में सर्वप्रथम रहने से आपको प्रतिवर्ष छात्रवृत्ति मिलती रही। साथ ही 'फ़र्स्टग्रेड प्लीडरशिप' की परीक्षा भी आपने पास की। अपनी प्रतिभा और होशियारी के लिए आप प्रसिद्ध थे। प्रिंसिपल डा० डंकन के, जो बाद में शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर होगये थे, आप बहुत अधिक प्रिय थे। बी० ए० पास करते ही मंगलौर के सेण्ट एलोपसिस कालेज (मिशन-कालेज) में अध्यापक नियुक्त होगये और तीन वर्ष तक उसमें अध्यापक का कार्य करते रहे। प्रिंसिपल में जाति-द्वेष कूट-कूटकर भरा हुआ था और अपने मातहत हिन्दू अध्यापकों के साथ उसका व्यवहार बहुत अपमानजनक होता था। उसको लेकर आपका उसके साथ सदा झगड़ा बना रहता था। इससे आप १८७८ में इस्तीफा देकर उससे अलग होगये। नौकरी करने के लिए आप पैदा ही नहीं हुए थे। अपनी स्वतंत्रवृत्ति को अपने समस्त जीवन में आपने क़ायम रक्खा। १८७९ में आपने सलेम में आकर वकालत शुरू की और ५० वर्ष तक वकालत करते रहे। अपनी योग्यता एवं प्रतिभा के कारण वकालत में जल्दी ही आपने नाम पैदा कर लिया और उसमें आप पैसा भी कमाने लग गये। १८८२ में आप सलेम म्युनिसिपैलिटी के सभासद् चुन लिये गये और नागरिक मामलों में दिलचस्पी लेने लगे।

उसी वर्ष सलेम में वे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनायें घटीं, जिनसे आप चारों ओर प्रसिद्ध होगये। १८७२ में सलेम के कलेक्टर ने दो सार्वजनिक सड़कों के उस चौराहे पर मुसलमानों को मसजिद बनाने की आज्ञा देदी, जहाँसे हिन्दुओं के जलूस बाजे-गाजे के साथ हमेशा गुजरा करते थे। हिन्दुओं ने आपत्ति की और आन्दोलन किया, किन्तु कुछ परिणाम न निकला। १८८० में अदालत में मामला लड़ा गया और यह

फ़ैसला हुआ कि नमाज़ के समय के अलावा अन्य सब अवसरों पर हिन्दुओं के जलूस बाजों के साथ निकल सकेंगे। कलेक्टर मि० एच० ई० स्टोक्स इस फ़ैसले को निभाते रहे। १८८२ के मध्य में उनके स्थान पर डी० मैकलीन कलेक्टर हुए। उनके समय में पहले जुलाई १८८२ में उपद्रव हुआ और समझौते की बातचीत शुरू हुई। मुसलमान कलेक्टर के बहकावे में आगये और समझौता न होसका। इसलिए अगस्त में फिर उपद्रव हुआ। बहुत-से हिन्दुओं के मकान जला दिये गये और मसजिद गिरा दी गई। सरकार ने उपद्रव के कारणों की जाँच करने के लिए स्पेशल अफ़सर की नियुक्ति की। कलेक्टर को हिन्दुओं और आप-से चिढ़ थी। उसने स्पेशल अफ़सर को भी अपने साथ मिला लिया। यह रिपोर्ट की गई कि मसजिद गिराने में सब दोष हिन्दुओं का है। बहुत-से हिन्दू गिरफ्तार किये गये और उनको लम्बी-लम्बी सजायें दी गई। बीस सुप्रतिष्ठित हिन्दुओं के साथ आपको भी षड्यन्त्र में पकड़ा गया। नवम्बर १८८२ में षड्यन्त्र के अपराध में आपको दस वर्ष की और बाकी सबको आजन्म कालापानी की सजा दी गई। बड़ी शान्ति और धैर्य के साथ आपने फ़ैसला सुना और हाईकोर्ट में अपील की। जनवरी १८८३ में आप अपील में बेदाग़ छोड़ दिये गये और हाईकोर्ट ने स्वीकार किया कि उस सब काण्ड में कोई षड्यन्त्र नहीं था।

म्युनिसिपैलिटी में आपके खरे व्यवहार और स्पष्ट भाषणों ने उनके चेयरमैन (कलेक्टर) मैकलीन को बहुत चिढ़ा दिया। उसकी आलोचना करने में भी आपने कभी संकोच नहीं किया और कभी भी उसको या किसीको प्रसन्न करने के लिए अपनी सम्मति को नहीं बदला। मदरास के 'हिन्दू' में विविध सामयिक विषयों पर आप लेख लिखते रहते थे। आपने म्युनिसिपल चुनाव के लिए 'हिन्दू-सभा' का संगठन किया। हिन्दू-

विरोधी सरकारी अधिकारियों की कूटनीति का आप भण्डाफोड़ करते रहते थे। इस सवपर नाराज़ हो कलेक्टर ने मई १८८३ में आपको म्युनिसिपल सभासदी से अलग कर दिया। सरकार से तुरन्त आपने इसका कारण पूछा। सर ग्राण्ट डफ की सरकार ने यह कोरा जवाव देकर चुप्पी साध ली कि उनको इस वारे में कुछ भी जानने का अधिकार नहीं है। इस मामले को लेकर १८८४ के शुरू में आपने भारत-मन्त्री पर नुकसान-भरपाई का दावा कर दिया। हाईकोर्ट से फैसला हुआ कि अपनी प्रतिष्ठा क़ायम रखने को आपके लिए यह मुकदमा दायर करना ज़रूरी था और आपको १०० रु० वतौर हरजाने के दिलवाया गया। सव दलों में आपके इस सत्साहस की वहुत प्रशंसा हुई और आप 'सलेम के वीर' के नाम से चारों ओर प्रसिद्ध होगये। सरकारी अधिकारियों के स्वेच्छाचार के विरोध में ऐसे सत्साहस का परिचय देना वास्तव में एक विलक्षण घटना थी।

उसके वाद आपने अपने विरुद्ध झूठी साक्षी देनेवाले लोगों पर मुकदमे चलाये। सरकार ने उनको दवाने का यत्न किया। जुलाई १८८४ में उन मुकदमों का फैसला हुआ और एक वार फिर आपके चरित्र की उत्कृष्टता प्रकट होगई। दो वर्ष के इस लम्वे अरसे में आप अपनी वकालत नहीं कर सके। सव समय और सव ध्यान आपको उन मुकदमों में ही लगा देना पड़ा। अन्य साथियों की रिहाई के लिए भी आपने यत्न किया। आप इस वारे में ए० ओ० ह्यूम से मिले और उनकी मार्फ़त लार्ड रिपन तक सव वातें पहुँचाईं। लार्ड रिपन जव मदरास में आये, तव सलेम के लोगों की ओर से उनकी सेवा में एक प्रार्थना-पत्र पेश किया गया, जिसके परिणामस्वरूप १८८४ में मदरास-सरकार को विवश होकर सव क़ैदियों को छोड़ देना पड़ा।

उन घटनाओं की सिर्फ हिन्दुस्तान के समाचारपत्रों में चर्चा होकर ही बस नहीं होगई, किन्तु पार्लमेण्ट तक में उनके बारे में सवाल-जवाब पूछे गये थे। कलकत्ता के 'अमृतबाजारपत्रिका' में उस समय के सम्पादक श्री शिशिरकुमार घोष ने कई मुख्य लेख लिखे और प्रचण्ड आन्दोलन किया। उस सब संघर्ष में आपके विजयी होने के बाद यह प्रस्ताव किया गया था कि सलेम में आपकी पीतल की मूर्त्ति स्थापित करके आपके नाम पर एक विशाल भवन बनाया जाय। आपका इस प्रकार लोकप्रिय होना सरकारी दृष्टि से आपके लिए बहुत महँगा पड़ा। अधिकारी आपसे नाराज़ होगये और आपको नीचा दिखाने का यत्न करते रहे। आपने उस नाराज़गी की परवा नहीं की और अपने मार्ग या ध्येय से विचलित नहीं हुए। म्युनिसिपल बोर्ड के अलावा आप कुछ समय तक जिला-बोर्ड के भी सभासद रहे।

१८८५ में आप प्रान्तिक कौंसिल के लिए प्रान्त के दक्षिण भाग की म्युनिसिपैलिटियों और जिला-बोर्डों की ओर से चुने गये। १८९३ में जब पहली बार चुनाव का अधिकार दिया गया था, तब भी आप चुनाव के लिए खड़े हुए थे, किन्तु केवल एक वोट से हार गये थे। १८९५ में आप फिर खड़े हुए। तब जिले के कलेक्टर मि० (बाद में 'सर') ई० फोकस ने आपकी गैरहाजिरी में जिला-बोर्ड के सभासदों पर आपको वोट न देने के लिए दबाव डाला। फिर भी आप चुनाव में सफल हुए। १९०२ तक आप तीन बार लगातार उसके सभासद चुने जाते रहे। बिलों पर विचार करने के लिए बनाई गई प्रायः सभी सिलेक्ट कमेटियों के आप सभासद होते थे। आपके भाषणों और विचारों का सभी दृष्टियों के लोग बहुत मान करते थे।

१९१३ में आप इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के सभासद चुने

गये थे। जब कांस्पिरेसी बिल पेश किया गया, तब सारे देश में उसका विरोध करनेवाले आप पहले व्यक्ति थे। वाइसराईन लेडी चैम्सफ़ोर्ड, जो उस दिन वहाँ कौंसिल-भवन में उपस्थित थीं, आपके भाषण से इतनी प्रभावित हुई थीं कि उन्होंने उसी समय पेंसिल से लिखकर एक पत्र द्वारा आपको बधाई दी थी। हिन्दू यूनिवरसिटी बिल का भी आपने विरोध किया था और कहा था कि वह जातिगत कार्य होने से राष्ट्रीयता-विरोधी है। आप जाति-विशेष का नाम न देकर अखिल भारतीय यूनिवरसिटी बनाने के पक्ष में थे। १९१६ में जब आप दुबारा खड़े हुए तो चुनाव में सफल नहीं हुए।

१९०० में कालीकट में हुई मदरास प्रान्तिक कान्फ़्रेंस के आप सभापति चुने गये थे। फिर १९१८-१९ में माण्टफोर्ड-शासन-योजना पर विचार करने के लिए की गई प्रान्तिक कान्फ्रेंस के विशेषाधिवेशन के सभापति भी आप ही हुए थे। १९०७ में मदरास-सरकार ने मार्लेमिण्टो-शासन-योजना के सम्बन्ध में जब आपकी राय माँगी, तब आपने अपने लम्बे वक्तव्य में राजाओं को लेकर बनाई गई एडवाइज़री कौंसिल को एकदम अवाञ्छनीय बताया। आपका यह मत था कि उससे राजाओं का दर्जा नीचा होता है। कौंसिलों के निर्वाचित सदस्यों की संख्या कम-से-कम आधी रखने पर आपने ज़ोर दिया था। इम्पीरियल कौंसिल में कई बार सरकार ने आपको अपनी ओर करने के लिए ललचाया। १९१८ में आपको 'दीवानबहादुर' का खिताब दिया गया था और 'सर' का खिताब देने की बात भी आपतक पहुँचाई गई थी, किन्तु आपको खिताब लेना पसन्द ही नहीं था। आप इस प्रकार पथभ्रष्ट होनेवाले देशभक्त नहीं थे।

कांग्रेस के साथ आपका सम्बन्ध यद्यपि उसके जन्म के साथ ही हो

गया था, किन्तु उसके पहले दो अधिवेशनों में आप इसलिए शामिल नहीं हो सके थे कि उन्हीं दिनों में आपके पिता का श्राद्ध पड़ा करता था। तीसरे अधिवेशन (सन् १८८७) से आपने उसमें सम्मिलित होने का निश्चय करके यह प्रबन्ध कर लिया कि श्राद्ध करनेवालों को भी साथ ले जाने लगे और जहाँ काँग्रेस होती वहीं पिता का श्राद्ध कर लेते थे। तबसे बराबर काँग्रेस में सम्मिलित होते रहे, सिवा पिछले कुछ वर्षों के, जबकि आपका स्वास्थ्य लम्बी यात्रा करने योग्य नहीं रहा। ए० ओ० ह्यूम के आप अन्तरंग सलाहकारों में से थे। १८८७ में काँग्रेस का विधान बनाने के लिए नियुक्त की गई कमेटी के आप सदस्य थे। १८९९ और १९०० में इण्डियन काँग्रेस कमेटी के आप सभासद बनाये गये थे। १९०५ में आपने उस प्रस्ताव का बड़ी योग्यता के साथ समर्थन किया था, जिससे गोखले, लाजपतराय और बिशननारायण दर को शासन-सुधारों के सम्बन्ध में आन्दोलन करने को इंग्लैण्ड भेजने का निश्चय किया गया था। १९०६ में आपने इस्तमरारी बन्दोबस्त (परमेनेण्ट सेटलमेण्ट) का प्रस्ताव पेश किया था। आपने यह विचार प्रकट किया था कि इस देश की ज़मीन का मालिक इंग्लैण्ड का राजा नहीं है, इसलिए ज़मीन पर लिया जानेवाला टैक्स 'रेण्ट' (किराया) नहीं हो सकता। बम्बई में कांग्रेस के १९१८ में हुए महत्वपूर्ण अधिवेशन में और अमृतसर में हुए १९१९ के अधिवेशन में आपने विशेष भाग लिया था। उनमें आपने विस्तार के साथ जनता के मौलिक नागरिक अधिकारों का विवेचन किया था। १९१८ में दिल्ली में हुए अधिवेशन के सभा-पतित्व के लिए महामना मालवीयजी के साथ आपका नाम पेश किये जाने पर आपने अपना नाम वापस ले लिया था। नागपुर में १९२० में हुए ऐतिहासिक अधिवेशन के आप सभापति चुने गये थे। वह अधिवेशन कई

दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। असहयोग-आन्दोलन के कार्यक्रम की वजह से उस अधिवेशन में उपस्थिति असाधारण थी। नेताओं के पारस्परिक मतभेद ने उसके सभापतित्व की जिम्मेदारी को बहुत गुरुतर बना दिया था। आपका सुविस्तृत भाषण आपके विधान-सम्बन्धी क़ानून के अगाध ज्ञान का प्रत्यक्ष प्रमाण था। उससे मालूम होता था कि यूरोप और अमेरिका के सब देशों के वैधानिक क़ानून का आपने कितना गहरा अध्ययन और कितना महान् मनन किया है। उसमें आपने नागरिकता के मौलिक अधिकारों की घोषणा की थी और भारत के लिए औपनिवेशिक विधान तथा चुनाव सम्बन्धी अपनी योजना की चर्चा की थी। पूर्ण स्वतन्त्रता की शीघ्रतम प्राप्ति के लिए सरकार से असहयोग करने के सम्बन्ध में आपने कहा था कि "ईमानदारी के साथ दो रायें प्रकट नहीं की जा सकतीं। अपने देश के शासन में आपनी वास्तविक और ठोस सुनवाई करने के लिए हम पिछले पैंतीस बरसों बल्कि उससे भी अधिक लम्बे समय से प्रार्थना, निवेदन और आन्दोलन करते आरहे हैं, किन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुआ है।" वायसराय के इस कथन का आपने सप्रमाण और युक्तिपूर्वक खण्डन किया था कि असहयोग गैरकानूनी है। आपने कहा था कि वर्तमान राजनैतिक रोग की असहयोग ही एकमात्र दवा है। आपका यह मत था कि असहयोग के आन्दोलन को धीरे-धीरे पुष्ट करके महान् शक्तिसम्पन्न बनाना चाहिए। उसको तुरन्त सर्वसाधारण जनता का आन्दोलन नहीं बना देना चाहिए। इंग्लैण्ड और भारत के पारस्परिक सहयोग को अनिवार्य रूप में आप आवश्यक मानते रहे हैं। भाषण के अन्त में गाँधीजी और माण्टेगू से जोरदार अपील करते हुए आपने कहा था कि इस देश का भाग्य इन दोनों के ही हाथों में है।

१९२२ में गया-कांग्रेस में आपने बड़े साहस के साथ उस प्रस्ताव का

विरोध किया था, जिसमें सिर्फ़ ब्रिटिश माल के वहिष्कार की वात कही गई थी। अन्त में आप उस विरोध में सफल भी हुए थे। १९२३ की काँग्रेस में आप उपस्थित नहीं हो सके थे, किन्तु आपने हिन्दू-मुसलमानों की एकता के लिए सन्देश भेजते हुए कांग्रेस को यह सलाह दी थी कि उस वारे में गाँधीजी के ही विचारों को पूरे विश्वास और दृढ़ता से काम में लाना चाहिए। १९२७ में आपने मदरास की कांग्रेस में विशेष भाग लिया था और कहा था कि यदि हम अपनी सहायता आप नहीं करेंगे, तो अंग्रेज़ यहाँसे अपने-आप जानेवाले नहीं हैं। जब देशवन्धु ने कौंसिल-प्रवेश का कार्यक्रम उपस्थित किया था तंव आप उसके विरोधी थे और आपने यह स्पष्ट ही कहा था कि वैसा करना देश की उन्नति में सहायक न होगा। १९२८ में आपने साइमन-कमीशन के वहिष्कार का समर्थन किया था। १९२८ में दिल्ली में जो सर्वदल-सम्मेलन हुआ था, उसके आप सभापति थे और उस द्वारा देश के लिए स्वराज्य-विधान वनाने के लिए जो कमेटी नियुक्त की गई थी उसके आप सभासद् थे। वही विधान वाद में 'नेहरू-रिपोर्ट' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके वनाने में आपका प्रमुख हाथ था और उसपर आपने हस्ताक्षर भी किये थे। अखिल-भारतीय-काँग्रेस-कमेटी के आप वहुत पुराने सभासद् हैं और वहुत ही कम अवसरों पर आप उसकी वैठकों से ग़ैरहाजिर रहे हैं। जून १९२९ में भारतीय स्वतन्त्रता के प्रश्न को हल करने के वारे में आपने अपनी एक निराली योजना पेश की थी। १९२८ की कलकत्ता-काँग्रेस के वाद से आपकी यह धारणा है कि 'लीग आफ़ नेशंस' से भारत को सहायता मिल सकती है। आपका यह विश्वास है कि यदि लीग चीन की तरह हिन्दुस्तान के आर्थिक पुनः संगठन में सहायता दे, तो उसकी अवस्था इस समय की अपेक्षा वहुत अधिक सुधर जायगी। इंग्लैण्ड से भारत के सर्वथा

पृथक् होने के आप अवतक भी विरोधी हैं। आपका यह दृढ़ मत है कि देसी रियासतों और व्रिटिश भारत का पारस्परिक सम्वन्ध अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार निर्धारित होना चाहिए। आप संघ-शासन-विधान के विरोधी हैं। यूनिटरी शासन-विधान में आपका दृढ़ विश्वास है। आप अन्त तक अकेले ही अपनी सम्मति पर दृढ़ रहनेवाले व्यक्ति हैं। दो वर्ष पहले मैसोर में भी आपने कहा था कि संघ-शासन-विधान में देशी नरेशों की स्थिति जमींदारों की-सी और उनकी प्रजा की रैयत की-सी होजायगी।

१९२१ के अगस्त मास में अकोला में हिन्दू-महासभा का अधिवेशन आपके सभापतित्व में हुआ था। अपने विस्तृत भाषण में आपने भारतीय समस्या पर विचार करते हुए तीन मुख्य प्रश्न सामने रक्खे थे। पहला अल्पसंख्यक जातियों विशेषतः हिन्दू-मुसलमानों का था, दूसरा था संघ-शासन-विधान का, जिसके द्वारा देशी रियासतों को व्रिटिश भारत के साथ मिलाकर एक सम्मिलित वड़ा भारत वनाया जा रहा था, और तीसरा था गाँधी-अर्विन-समझौते में प्रतिपादित संरक्षणों की अनिवार्यता का। आपने कहा था कि एकमात्र आर्थिक सुधारों के जल्दी-से-जल्दी दिये जाने से ही साम्प्रदायिक झगड़ों को दूर किया जा सकता है। १९३५ में भिक्षु उत्तमा के सभापतित्व में कानपुर में हुए हिन्दू-महासभा के अधिवेशन में भी आप सम्मिलित हुए थे। आपने वहाँ साम्प्रदायिक वंटवारे के विरुद्ध राष्ट्र-संघ से अपील करने का उसके प्रति अपने विश्वास के ही कारण वहुत ज़ोरदार शब्दों में समर्थन किया था। कानपुर से आप हरिद्वार गये और वहाँ गंगाजी के घाटों के सुधार तथा हरि की पैड़ी के विस्तार पर आपने विचार किया। 'हिन्दुत्व' के प्रति आपका यह प्रेम वचपन के संस्कारों का परिणाम था।

१९३२ के नवम्बर में मालवीयजी के उद्योग से इलाहाबाद में हुए एकता-सम्मेलन के आप ही सभापति थे। दूसरी गोलमेज़ परिषद् के बाद यह स्पष्ट होगया था कि एकता के बिना राजनैतिक सुधारों का प्राप्त करना सम्भव नहीं है। आपने उस समय कहा था कि यदि हम एक राष्ट्र बनाना चाहते हैं, तो विविध जातियों को ज़रूर ही एक होना पड़ेगा। संयुक्त-निर्वाचन-मात्र से उसका श्रीगणेश नहीं होसकता। 'कम्यूनल एवार्ड' के भी आप विरोधी रहे हैं। आपने ज़ोरदार शब्दों में यह कहा था कि अल्पसंख्यक जातियों को बहुसंख्यक जाति से डरना नहीं चाहिए और मिलकर एक दिल से काम करना चाहिए। सब नेताओं से आपने राष्ट्र की उन्नति पर ही ध्यान देने की अपील की थी।

इस वृद्धावस्था में भी आप गत वर्ष मदरास में हुई अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी की बैठक में सम्मिलित हुए थे। १९३५ के दिसम्बर मास में देश की सर्वप्रथम राष्ट्रीय संस्था 'काँग्रेस' की सुवर्ण-जयन्ती के साथ आपकी सार्वजनिक सेवाओं की भी सुवर्ण-जयन्ती मनाई गई थी, जिसके उपलक्ष्य में मदरास में सार्वजनिक समारोह का आयोजन करके आपको मानपत्र अर्पित किया गया था। सभी विचारों और सभी पक्षों के नेताओं ने उपस्थित होकर या सन्देश भेजकर आपका अभिनन्दन किया था। मानपत्र एक बहुत ही सुन्दर 'फ्रेम' में दिया गया था। उसपर १८८५ और १९३४ में हुए काँग्रेस के अधिवेशनों के चित्र बने हुए थे, मध्य में सोने में भारतमाता का चित्र अंकित था और नीचे ह्यूम, गाँधीजी और आपके चित्र थे। हाथी-दाँत की बढ़िया नक़्क़ाशी उसपर बनी हुई थी।

पिछले ३८ वर्षों से आप मदरास यूनिवरसिटी की सीनेट के सभासद् हैं। पचास वर्ष से अधिक समय तक सलेम में वकालत करते रहने

के बाद १९३३ में खून के एक मुक़दमे में तीन अभियुक्तों को फाँसी की सज़ा हुई थी। वकालत के दीर्घकाल में यही मुक़दमा था, जिसमें आप असफल हुए थे। अपने खर्च से आपने अभियुक्तों की ओर से हाईकोर्ट में मुक़दमा लड़ा और मदरास-सरकार तथा भारत-सरकार से भी अपील की, किन्तु फाँसी की सज़ा बहाल रही। इसीपर आपने वकालत करना ही छोड़ दिया और समझ लिया कि वृद्धावस्था में आपका दिमाग़ वकालत के योग्य नहीं रहा। दीवानी मामलों में आपकी अच्छी ख्याति थी। वकालत में भी आप निर्भयता, सचाई, ईमानदारी, कार्यक्षमता तथा अपने मुवक्किल के लिए दृढ़ता के लिए प्रसिद्ध थे।

आपकी देशभक्ति और आपके सार्वजनिक कार्यों में व्यक्तिगत स्वार्थ की गन्ध भी नहीं है। आपका यदि कभी किसीके साथ मतभेद हुआ, तो वह ईमानदारी, सचाई और निर्भयता के कारण हुआ। आप बहुत शान्त और एकान्तप्रिय स्वभाव के हैं। आपको आगे बढ़ने का शौक नहीं है और आप विज्ञापनबाजी से भी बहुत दूर रहनेवाले हैं। आपको ताश, शतरंज, नाव खेने और किताबें पढ़ने का बहुत शौक़ है। आप व्यक्तिगत जीवन में पुराने रीति-रिवाजों का पालन करने में पुरातन-पन्थी हैं। आपमें युवकों के उत्साह और वृद्धों की बुद्धि तथा अनुभव का एकत्र सम्मिश्रण है। आप उच्चकोटि के विद्वान् और पहले दर्जे के अतिथि-सेवक हैं। अपने व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में आप सज्जनता की साक्षात् मूर्ति हैं।

: ३२ :

मुहम्मद अजमलखाँ

[१८६५—१९२७]

छत्तीसवाँ अधिवेशन, अहमदाबाद—१९२१

"मुझे दुःख है कि भारत से विदा होने से पहले मैं आपसे मिल न सका। परमात्मा की कृपा से लौटने पर मेरी यह इच्छा पूरी होगी। मुझसे भारत की अवस्था के सम्बन्ध में यदि कोई कुछ पूछेगा, तो मुझे वहुत अधिक लज्जित होना पड़ेगा। मैं इसके सिवा और क्या कह सकूँगा की भारत की अवस्था वहुत खराव है, क्योंकि दो महान् और अभागी जातियाँ आपस में लड़ रही हैं। मैं यह सदा मनाता रहता हूँ कि दोनों के वीच की खाई गहरी और चौड़ी करने में लगे हुए लोग भारत पर, एशिया पर और अपनी-अपनी जातियों पर रहम करें, वे ठीक रास्ते पर आयें और निर्जीव काँग्रेस में जीवन पैदा करने लगें।"१९२५ में स्वास्थ्य-सुधार के लिए हकीमजी ने यूरोप जाते हुए २३ अप्रैल को मार्सेलीज से वेदना से भरा हुआ जो पत्र गाँधीजी को लिखा था, उसीकी कुछ पंक्तियाँ ऊपर दी गई हैं। हकीमजी के गाँधीजी के लिए प्रेम, काँग्रेस के लिए अनुराग, देश की दुर्दशा के लिए दर्द और हिन्दू-मुस्लिम-एकता के लिए चिन्तन की साक्षी ऊपर की पंक्तियों से वढ़कर दूसरी नहीं दी जा सकती। आपका स्वभाव सरल, सादा और मिलनसार था। व्यवहार विनय शील

और सज्जनतापूर्ण था। चरित्र-बल और धार्मिक श्रद्धा आपमें कूट-कूट-कर भरी हुई थी। इन व्यक्तिगत गुणों के कारण सहज ही गाँधीजी की ओर आपका झुकाव हुआ और वह झुकाव आपको राजनीति में बलात् खींच लाया।

आपका जन्म १८६५ में ऐसे घराने में हुआ था, जिसका वंशपरम्परागत धन्धा हकीमी था और जो मिस्र आदि मध्य-पूर्व के देशों में भी अपने पेशे की योग्यता और विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध था। आपके दादा हकीम शरीफ़ख़ाँ और पिता हकीम महमूदख़ाँ के समय में, जिनका ७४ वर्ष की वृद्धावस्था में देहान्त हुआ था, हकीमी पेशे में इस घराने की प्रतिष्ठा चरम-सीमा तक पहुँची हुई थी। उन्हींके समय में उस तिब्बिया-कालेज की छोटे-से रूप में स्थापना होचुकी थी, जो देश को हकीमजी की सबसे बड़ी और गौरवशाली देन है। पिता और दादा के समय में उस स्कूल में देश-विदेश के छात्र यूनानी की शिक्षा ग्रहण करते थे, किन्तु अपनी योग्यता, अनुभव, परिश्रम, लगन और धुन से एक छोटे-से स्कूल को जिस प्रकार आपने इतना महान् बनाया, उसी प्रकार अपने कुल और परिवार की परम्परा को क़ायम रखकर उसकी प्रतिष्ठा एवं गौरव को भी आपने दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ाया। आपके समय में आपके घराने, कालेज और पेशे की प्रतिष्ठा दादा और पिता के समय की प्रतिष्ठा को भी मात कर गई थी।

आजकल के किसी स्कूल या कालेज में आपको नहीं पढ़ाया गया था। फिर भी फारसी, अरबी, कुरान, न्याय, भौतिक विज्ञान, साहित्य, ज्योतिष, गणित और इस्लामी कानून की आपको अच्छी शिक्षा दी गई थी। अंग्रेज़ी का साधारण ज्ञान आपने बहुत समय बाद प्राप्त किया था। देश-विदेश की यात्राओं से प्राप्त अनुभव आपकी सबसे बड़ी शिक्षा थी।

सबसे पहले आपने १९०४ में फिर १९२१ में विदेश-यात्रा की थी। पहली बार मध्य-पूर्व के मुस्लिम देशों के विस्तृत भ्रमण में वहांके पुस्तकालयों का अवलोकन करके और सुप्रसिद्ध हकीमों से मिलके आपने अपने हकीमी ज्ञान को बढ़ाया था। दूसरी बार लन्दन, पेरिस, बर्लिन और वीयना आदि के अस्पतालों, मेडिकल कालेजों और पुस्तकालयों का अवलोकन आपने दिल्ली के प्रस्तावित तिब्बिया कालेज के लिए किया था। कुस्तुन्तुनिया और मिस्र में आप इसी विचार से कुछ अधिक समय तक ठहरे थे। हकीमी पर लिखे हुए आपके ग्रन्थ प्रमाण माने जाते हैं।

१९१८ तक सार्वजनिकजीवन में आपने कोई विशेष भाग नहीं लिया, तो भी आपने अलीगढ़ के एम० ए० ओ० कालेज को विश्वविद्यालय बनाने के आन्दोलन में विशेष भाग लिया था। मुस्लिम लीग का आपको उपाध्यक्ष चुना गया था। लखनऊ में हिन्दू-मुस्लिम-पैक्ट का प्रश्न उठने पर आपने उसका विशेष उत्साह के साथ समर्थन किया था। १९१८ में दिल्ली में कांग्रेस का जो महत्वपूर्ण अधिवेशन हुआ था, उसके आप स्वागताध्यक्ष थे। उसके बाद आप अपना सब समय, साधन एवं शक्ति तिब्बिया कालेज के काम में लगा देना चाहते थे। भारतीय महिलाओं में यूनानी एवं आयुर्वेद की शिक्षा फैलाने का आप विचार कर ही रहे थे कि पंजाब में फ़ौजी शासन का काला युग शुरू होगया और दिल्ली की परिस्थिति भी भयानक होगई। बार-बार गोली चलने, शहीदों की अर्थियों के बाद अर्थियाँ उठते रहने और जनता के अत्यन्त अधिक उत्तेजित होने पर भी दिल्ली में पंजाब की दुर्घटनाओं की पुनरावृत्ति और फौजी-शासन की घोषणा न होने देने का सब श्रेय आपको और दिवंगत स्वामी श्रद्धानन्द जी को था। दिल्ली-निवासी उस समय के १८ दिनों के राम-राज्य को कभी नहीं भूल सकते। हकीमजी उसके संस्थापकों में अन्यतम थे। दिल्ली

में उन दिनों में पंचायतें स्थापित करके वर्षों के झगड़ों तथा लाखों के मामलों को बात-की-बात में तय कर देने में हकीमजी अत्यन्त निपुण थे। पंजाब के फ़ौजी शासन ने जिन अनेकों शान्त और नरम स्वभाव के लोगों में उग्रता पैदा कर अंग्रेजी हकूमत में उनके विश्वास को हिला दिया था उनमें हकीमजी भी एक थे। आपने अपने एक मित्र को ठीक ही लिखा था कि "१९१९ के पंजाब के फ़ौजी शासन के दिनों की नौकरशाही की ओछी करतूतों से मेरे राजनैतिक विचार एकदम बदल गये हैं।" टर्की के सम्बन्ध में दिये गये वचन का ध्यान न रखकर सेवर्स की सन्धि पर हस्ताक्षर करके सरकार ने भारतीय मुसलमानों के प्रति जो विश्वासघात किया था, उसने पंजाब के फ़ौजी शासन के घावों पर नमक छिड़कने का काम किया और हकीमजी को गाँधीजी का राजनैतिकक्षेत्र में अन्यतम साथी बना दिया। अहमदाबाद में १९२१ में काँग्रेस का ऐतिहासिक अधिवेशन हुआ था। उसके सभापति देशबन्धु दास अधिवेशन से कुछ ही दिन पहले कलकत्ता में गिरफ्तार कर लिये गये थे। तब सर्व-सम्मति से उस सम्मानित आसन पर आपका अभिषेक किया गया था। यरवड़ा-जेल में आपरेशन के बाद जुहू के विश्राम और १९२४ में दिल्ली में किये गये २१ दिन के उपवास के समय में गाँधीजी के प्रति हकीमजी का स्नेह और आकर्षण बहुत अधिक बढ़ गया था। काँग्रेस की ओर से नियुक्त की गई सत्याग्रह-जाँच-कमेटी के आप सदस्य थे। हिन्दू-मुस्लिम-एकता के आप मन, वचन और कर्म से अन्यतम समर्थक थे। आपके लिए वह श्रद्धा, निष्ठा और विश्वास का विषय था। १९२२ में गाँधीजी की गिरफ्तारी के बाद आपने उनको यह लिखा था कि "देश का अभ्युदय हिन्दू, मुसलमान और अन्य सब जातियों की एकता पर ही निर्भर है। उसका आधार कोई नैतिकचाल न होकर हमारा आन्तरिक विश्वास होना चाहिए।

यद्यपि ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक नहीं है, जिनके हृदय साम्प्रदायिकता के रंग से एकदम रहित हैं, तो भी दोनों जातियों में एकता बढ़ रही है और देशवासी उस मार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं, जिससे वे शीघ्र ही उस ध्येय को प्राप्त कर लेंगे। मेरे लिए इस एकता की क़ीमत बहुत अधिक है। मैं तो यह मानता हूँ कि यदि देश और सब कुछ छोड़कर इसीका सम्पादन करले, तो उसके परिणाम-स्वरूप स्वराज्य तथा खिलाफ़त की समस्यायें अपनेआप हल होजायेंगी और मुझको उससे पूरा सन्तोष होजायगा। हृदय की पवित्रता और सचाई से ही उसको स्थिर और दृढ़ किया जा सकता है। जबतक देशवासी निःस्वार्थ भाव से देश-सेवा में नहीं लगेंगे, तबतक वह कायम नहीं होसकती।" देश को हिन्दू-मुस्लिम-एकता की अब भी सबसे अधिक आवश्यकता है और उससे भी अधिक आवश्यकता है उस एकता में हकीमजी सरीखी निष्ठा, विश्वास तथा श्रद्धा रखनेवाले लोगों की। ऐसे लोगों की कमी देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। स्वास्थ्य-सुधार के लिए १९२५ में आप फिर यूरोप गये थे, पर कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ। बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य दिन-पर-दिन अधिक-ही-अधिक गिरता गया और १९२७ की २८ दिसम्बर को वह इतना गिर गया कि रामपुर से वहाँके स्वर्गीय नवाब को देखकर लौटते हुए इस देह का भार सम्हालने से उसने अन्तिम जवाब दे दिया। एकाएक हृदय की गति बन्द होने से आपका देहावसान हुआ और हिन्दू-मुस्लिम एकता का एक ज़बरदस्त हामी उठ गया।

: ३३ :

चित्तरंजन दास

[१८७०—१९२५]

सैंतीसवाँ अधिवेशन, गया—१९२२

अहिंसात्मक असहयोग के युग में अपने त्याग, तपस्या, आत्मोत्सर्ग और कष्ट-सहन द्वारा राष्ट्र-निर्माण करनेवाले महान् राष्ट्र-पुरुषों में गाँधीजी के वाद जिन दो-एक का नाम लिया जा सकता है, उनमें देशवन्धु दास अन्यतम हैं। आपका व्यक्तित्व महान्, त्याग अपूर्व और तपस्या अलौकिक है। आपकी देशभक्ति निष्कलंक है। उग्र राजनीतिज्ञ, महान् योद्धा, विद्रोही नेता होते हुए भी आप आस्तिक और धार्मिक व्यक्ति थे; किन्तु आपकी देशभक्ति ही आपकी आस्तिकता, आपकी देशसेवा ही आपकी धार्मिकता और भारत-माता ही आपकी आराध्यदेवी थी। आपके ये शव्द हरेक राष्ट्र-प्रेमी को अपने हृदय पर लिख लेने चाहिएँ कि "वचपन से ही मैंने अपनी इस मातृभूमि को अपने सम्पूर्ण अन्तरात्मा से प्यार किया है। यौवनकाल में भी अपनी अनेक कमियों, कमज़ोरियों और आत्मिक दीनता तथा हीनता के रहते हुए भी मैंने उस प्रेम को कम नहीं होने दिया। मैंने उसकी प्रतिमा को अपने हृदय में सदा ही जागृत वनाये रखने का यत्न किया है और आज इस आयु में मृत्यु के द्वार पर खड़े हुए भी, मुझे वह प्रतिमा और भी अधिक स्पष्ट तथा सत्य प्रतीत हो रही है।"............"अपने देश के लिए काम करना मेरे लिए धर्म

का ही एक अंग है। वह मेरे जीवन के आदर्शवाद का कभी न अलग होनेवाला एक हिस्सा है। अपने देश की भावना में ही मैं ईश्वर का साक्षात्कार करता हूँ।"

भारत-माता की स्वतंत्रता के लिए सर्वमेध-यज्ञ का अनुष्ठान कर सर्वस्व उसमें होम देनेवाले दिव्य राष्ट्रपुरुष देशबन्धु का जन्म ५ नवम्बर १८७० को कलकत्ता में एक वैष्णव परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री भुवनमोहन दास कलकत्ता-हाईकोर्ट के एक एटरनी थे। आपका प्रारम्भिक शिक्षण भवानीपुर (कलकत्ता) के लन्दन मिशनरी सोसाइटी इन्स्टीटयूट में हुआ था। वहींसे १८८६ में आपने मैट्रिक और १८९० में प्रेसीडेन्सी कालेज से बी० ए० पास किया। ग्रेजुएट होचुकने पर उस समय के सुशिक्षित युवकों में प्रचलित आई० सी० एस० बनने की महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए आप भी इंग्लैण्ड चले गये और वहाँ जाकर आई० सी० एस० की परीक्षा पास करने का यत्न किया। परन्तु उसमें आप सफल नहीं हुए। इस असफलता का एक कारण लन्दन में राजनैतिक कार्यों में भाग लेते रहना भी कहा जाता है। जब आई० सी० एस० की परीक्षा के लिए आप वहाँ पढ़ रहे थे, तभी स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी फिन्सबरी के निर्वाचन-क्षेत्र से ब्रिटिश पार्लमेण्ट की सदस्यता के लिए खड़े हुए और उनकी तरफ से जोश के साथ काम करनेवालों में आप भी एक थे। दादाभाई के चुनाव में भाग लेने के अतिरिक्त भी भाषणों और लेखों द्वारा भारत के पक्ष में होनेवाले आन्दोलनों में आप भाग लेते रहते थे। उन्हीं दिनों मैकलीन नामक एक सदस्य ने अपने एक भाषण में यह कह दिया था कि अंग्रेजों ने भारत को तलवार से जीता है और तलवार के ज़ोर से ही वे उसे काबू में रख सकते हैं। उसकी इस उक्ति का विरोध करने के लिए लन्दस्थ भारतीयों ने सभाओं और लेखों द्वारा

आन्दोलन किया। श्री चित्तरंजन ने भी उसमें आगे बढ़कर भाग लिया।

आई० सी० एस० की परीक्षा में असफल होने से आपके सम्बन्धियों को स्वभावत: निराशा तो हुई, परन्तु वे निरुत्साह नहीं हुए और उन्होंने आपको अपने आनुवंशिक पेशे क़ानून में पड़ने की सलाह दी। आपके पिता और दोनों चाचा, श्री कालीमोहन दास और दुर्गामोहन दास, तो कलकत्ता-हाईकोर्ट के एटरनी थे ही, दादा श्री जगद्‌बन्धु दास राजशाही में सरकारी वकील थे। आपने बैरिस्टरी की तैयारी शुरू की और १८९३ में लन्दन के इनर टेम्पल से बैरिस्टर-एट-लॉ होकर स्वदेश लौट आये।

यहाँ आपने कलकत्ता-हाईकोर्ट में वकालत शुरू की, परन्तु अनुभवी बैरिस्टरों के मुक़ाबिले में सफलता न मिली और इसी कारण कुछ समय तक कलकत्ता से बाहर प्रैक्टिस करना उचित समझा। १८९७ में आपका विवाह आसाम की बिजनी स्टेट के दीवान श्री बरदकान्त की सुशिक्षित कन्या बासन्तीदेवी के साथ हुआ।

१९०६ में आपके पिता के एक आकस्मिक आर्थिक संकट में फँस जाने से उन्हें तथा आपको सम्मिलित रूप से हाईकोर्ट में अपनेको दिवालिया घोषित किये जाने की दरख़ास्त देनी पड़ी। आप चाहते तो पिता का ऋण अपने सिर लेने से बच सकते थे, परन्तु आपने न केवल उस समय ऐसा किया, बल्कि बाद को समर्थ होजाने पर जिन लोगों का जो-कुछ देना था वह कौड़ी-कौड़ी चुका दिया और १९१३ में हाईकोर्ट से अपना दिवालियापन रद्द करवा दिया। इससे आपकी ख्याति बहुत बढ़ गई। हाईकोर्ट के जजों तक ने उस समय आपकी ईमानदारी की तारीफ़ की थी।

१९०७-८ में बंग-भंग के कारण स्वदेशी और राष्ट्रीयता की जो

प्रचण्ड बाढ़ आई, उसमें श्री चित्तरंजन ने भी बड़ा भाग लिया था। आपने श्री अरविन्द घोष आदि कई मित्रों के साथ मिलकर 'वन्देमातरम्' नामक एक पत्र अंग्रेज़ी भाषा में निकाला। इस पत्र में श्री अरविन्द ने राजनीति को आध्यात्मिकता का रंग देते हुए 'न्यू पाथ' (नया मार्ग) नाम से जो लेख-माला लिखी थी, उससे उसकी लोकप्रियता बहुत बढ़ गई थी। 'वन्देमातरम्' की ही नीति 'सन्ध्या' और 'युगान्तर' नामक दो पत्र बंगला में क्रमशः श्री ब्रह्मबान्धव उपाध्याय और स्वर्गीय स्वामी विवेकानन्द के भाई डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त निकाला करते थे। तीनों पत्रों की उन दिनों बंगाल में धूम थी। उनके प्रभाव को कम करने के लिए सरकार ने तीनों पत्रों के सम्पादकों पर राजद्रोह के मुक़दमे चलाये। उन्हीं दिनों, ३० अप्रैल १९०८ को, मुजफ्फरपुर का प्रसिद्ध बम-काण्ड हुआ। खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी नामक दो बंगाली युवकों ने वहाँके ज़िला जज किंग्सफ़ोर्ड के भ्रम में प्रिंगल केनेडी नामक यूरोपियन की गाड़ी पर बम फेंका, जिससे उनकी पत्नी और पुत्र मारे गये। किंग्सफ़ोर्ड १९०७ में कलकत्ता का चीफ़ प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेट था और उसने वहाँ उस वर्ष बंग-भंग-विरोधी आन्दोलन में भाग लेनेवाले अनेक युवकों को कठोर सज़ायें दी थीं। युवक खुदीराम और प्रफुल्ल इसीका उससे बदला लेना चाहते थे। इस बम-काण्ड से बंगाल-सरकार विशेष चौकन्नी होगई। स्थान-स्थान पर तलाशियाँ होने लगीं। ३ मई की रात को श्री अरविन्द आदि अनेक युवक एकसाथ पकड़ लिये गये। उन्हींमें से श्री अरविन्द सहित ३६ व्यक्तियों पर माणिकतल्ला षड्यन्त्र केस चलाया गया। श्री अरविन्द की सम्मति से उस मुक़दमे में श्री चित्तरंजन को सफ़ाई का वकील बनाया गया। वह मुक़दमा अलीपुर के मजिस्ट्रेट और सेशन की अदालतों में एक वर्ष से अधिक समय तक चलता रहा। श्री चित्तरंजन ने समय और धन

की भारी क्षति उठाकर उसकी बड़ी योग्यता के साथ पैरवी की। श्री ब्रह्मबान्धव और श्री भूपेन्द्रनाथ के मुक़दमों से उनकी ख्याति हो ही चुकी थी। उस मुक़दमे की सफलता ने उनकी कीर्ति को चार चाँद और लगा दिये। उसके बाद आपके पास इतना काम आने लगा कि बहुत-सा काम अस्वीकार कर देना पड़ता था। अपने पेशे में आपकी इस सफलता का बहुत कुछ श्रेय आपकी क़ानूनी योग्यता के अलावा ईमानदारी, एकाग्रता और परिश्रम को है। जिस मामले को आप हाथ में लेते थे, उसकी सफलता के लिए तन-मन एक कर देते थे। कभी-कभी तो किसी-किसी क़ानूनी पाइण्ट पर विचार करते-करते आप योगी की भाँति तन्मय हो जाते थे। अरविन्द के मुक़दमे के बाद भी अनेकों राजनैतिक मुक़दमों की पैरवी न केवल बिना फ़ीस लिये की, वरन् बहुतों में तो अपने पास से व्यय भी किया। यूरोपियन महायुद्ध के दिनों बंगाल में जो हज़ारों नवयुवक इण्डिया डिफेन्स एक्ट (भारत-रक्षा क़ानून) के मातहत क़ैद अथवा नज़रबन्द कर दिये गये थे, उनमें से सैकड़ों की पैरवी आपने ही की थी। १९२० के अन्त में जब आपने वकालत छोड़ी, तब आपकी मासिक आय आध लाख से ऊपर पहुँच चुकी थी।

देशबन्धु दास केवल वकील और राजनीतिज्ञ ही नहीं थे, बल्कि बंग भाषा के कवि और कहानी-लेखक भी थे। आपकी कृतियाँ 'नारायण' नामक मासिक पत्र में प्रकाशित हुआ करती थीं। आपकी कविताओं के संग्रह 'मालंच', 'माला' और 'सागर-संगीत' आदि नामों से ग्रन्थ-रूप में भी प्रकाशित हो चुके हैं।

१९१७ में कलकत्ता में जो बंगाल प्रान्तिक राजनैतिक कांफ्रेंस हुई, उसके आप सभापति बनाये गये। उस समय आपने जो भाषण दिया था, वह भारत के राजनैतिक इतिहास में सदा अमर रहेगा। उस भाषण से

आपके राजनैतिक विचारों का पूरा-पूरा परिचय मिलता है। उसमें आपने वतलाया था कि हमें सबसे पहले पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता के प्रभाव से मुक्त होकर शुद्ध भारतीय बनने की, अपनेआपको पहचानने की, ग्रामों में रहनेवाली वास्तविक भारतीय जनता के सेवक बनने की, शहरों को छोड़कर ग्रामों की ओर ध्यान देने की और ग्रामीणों की दरिद्रता दूर करने की ज़रूरत है। आज भारत में चारों तरफ़ ग्राम-सुधार की आवाज़ सुन पड़ती है। देशवन्धु दास ने आज से १९ वर्ष पूर्व इसको अनुभव किया था और उन्हें यह अनुभव यूरोपियन महायुद्ध के समय पूर्व वंगाल के ग्राम-ग्राम में नज़रबन्द युवकों के परिवारों की दुर्दशा देखकर हुआ था। उस दुर्दशा का भी उन्होंने अपने उस व्याख्यान में विस्तारपूर्वक उल्लेख किया था। उनके भावुक हृदय पर उसका इतना असर पड़ा कि उससे आगे का उनका सारा जीवन और जीवन का सब कुछ देश-सेवा के अर्पण होगया।

ग्राम-सेवा के लिए ही आपने १९२२-२३ में अपने पास से तथा वंगाल के अन्य धनिकों से बहुत-सी धन-राशि एकत्र करके "देशवन्धु-पल्ली-संस्कार-समिति" नामक संस्था स्थापित की थी। वंगला में 'पल्ली' ग्राम को कहते हैं। समिति की तरफ़ से अनेक युवकों ने गाँव-गाँव घूमकर मैजिक लैण्टर्न आदि की सहायता से ग्रामीण जनता में राष्ट्रीय विचारों का प्रचार करने के अलावा ग्रामों की स्वास्थ्य-सफ़ाई, निरक्षरता-निवारण और आर्थिक दशा सुधारने आदि का काम करना शुरू किया। आपके देहान्त के बाद भी यह समिति वंगाल में काम कर रही है।

महायुद्ध के बाद १९१८ में जब इस देश को माण्ट-फोर्ड-शासन-सुधार योजना देने की बात चली, तब हाईकोर्ट की छुट्टियों में पूर्व वंगाल के जिले-जिले में घूमकर उसके विरुद्ध आपने आन्दोलन किया। १९१९

के मार्च-अप्रैल में गांधीजी ने रौलट एक्ट के विरुद्ध जो सत्याग्रह आरम्भ किया था, उसमें योग देनेवालों में भी आप अग्रणी थे। पंजाब में मार्शल-लॉ के अभियुक्त ला० हरकिशनलाल आदि अनेक नेताओं की पैरवी करने और उसके बाद फ़ौजीशासन की काली करतूतों की जाँच करने के लिए कांग्रेस द्वारा नियुक्त कमेटी की रिपोर्ट तैयार करने में आपने निजी काम का बहुत भारी हर्ज करके भी ४-५ मास का समय लगाया।

पंजाब और खिलाफ़त के प्रकरण को लेकर गाँधीजी ने असहयोग-आन्दोलन उठाया। उसपर विचार करने के लिए कलकत्ता में काँग्रेस का विशेषाधिवेशन सितम्बर १९२० में हुआ। नवम्बर-दिसम्बर में माण्ट-फोर्ड-शासन-विधान के अनुसार व्यवस्थापिका सभाओं का चुनाव होने-वाला था। लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में उनकी राजनीति के अनुयायी अनेक काँग्रेसी नेता उस चुनाव को संगठित रूप से लड़ने की तैयारियाँ कर रहे थे। दास बाबू भी उनमें से एक थे। बंगाल और महाराष्ट्र में इन तैयारियों का विशेष ज़ोर था। गाँधीजी के असहयोग-कार्यक्रम में व्यवस्थापिका सभाओं का बहिष्कार भी शामिल था। इसलिए इस विशेषा-धिवेशन में आपने असहयोग के प्रस्ताव का विरोध किया। परन्तु दिसम्बर में ही नागपुर-काँग्रेस में गाँधीजी के साथ देर तक विचार-विनिमय करने के बाद आप उनके साथ सहमत होगये। आपके ही अनुरोध पर गाँधीजीने अपने असहयोग-कार्यक्रम में सरकारी स्कूल-कालेजों के बहिष्कार और सरकारी नौकरियों के परित्याग आदि की कई बातें सम्मिलित कीं। नागपुर-काँग्रेस में जब देशबन्धु दास ने गाँधीजी के प्रस्ताव का अनुमोदन किया, तब बहुत-से लोगों को विश्वास न था कि आपने हृदय से उनका साथ दिया है। ऐसे लोगों का सन्देह कुछ ही समय बाद दूर हो गया, जब उन्होंने देखा कि आपने प्रचण्ड आँधी के समान तीव्र वेग

से बंगाल के नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में घूमकर असहयोग की धूम मचादी। स्कूल-कालेज खाली होने लगे, वकीलों ने वकालत छोड़ दी और स्थान-स्थान पर विदेशी वस्त्रों की होलियाँ जलने लगीं। अप्रैल १९२१ में आल इण्डिया काँग्रेस कमेटी ने बेजवाड़ा में बैठक करके निश्चय किया कि ३० जून से पहले-पहले तिलक-स्वराज्य-फण्ड में एक करोड़ रुपया एकत्र होजाना चाहिए, एक करोड़ राष्ट्रीय महासभा के सभासद बनाये जाने चाहिएँ और कम-से-कम २० लाख चर्खे गाँव-गाँव में चालू होजाने चाहिएँ। इस निश्चय को नियत समय में पूरा कर देने में गाँधीजी के बाद सबसे अधिक काम देशबन्धु ने किया था।

१७ नवम्बर १९२१ को इंग्लैण्ड के युवराज इस देश में आये। काँग्रेस ने उनके स्वागत का बहिष्कार करने का निश्चय किया। उस दिन सारे देश में पूर्ण हड़ताल रही। काँग्रेस और खिलाफ़त की स्वयंसेवक-संस्थाओं को सरकार ने ग़ैर-क़ानूनी घोषित कर दिया। सरकार की इस घोषणा की चुनौती पर सहस्रों युवक स्वयंसेवक-दलों में भरती हो-होकर गिरफ्तार होने लगे। इसी सिलसिले में आपकी वीर पत्नी वासन्तीदेवी, एकमात्र पुत्र स्व० चिररंजन और बहन श्रीमती उर्मिलादेवी भी गिरफ्तार हुईं। परन्तु वे शीघ्र ही छोड़ दी गईं। २४ दिसम्बर को युवराज कलकत्ता पहुँचनेवाले थे। आप उनके स्वागत के बहिष्कार का ज़ोरदार आन्दोलन कर रहे थे। दिसम्बर के अन्त में अहमदाबाद में होनेवाली काँग्रेस के आप सभापति चुने गये थे। लेकिन १० दिसम्बर की रात्रि को इसी सिलसिले में गिरफ्तार कर लिये गये। छः मास की सज़ा हुई।

देशबन्धु दास तो गिरफ्तार होगये, परन्तु उनकी जलाई हुई आग न बुझाई जा सकी। युवराज के स्वागत का तब भी कोई लक्षण प्रतीत न हुआ। तब वाइसराय लार्ड रीडिंग ने उस समय के भारत-सरकार के

लॉ मेम्बर सर तेजबहादुर सप्रू, पं० मालवीय, पं० हृदयनाथ कुंजरू, श्री जमनादास द्वारकादास और डा० एनी बेसेण्ट आदि को बीच में डालकर देशबन्धु दास से सुलह की बातचीत चलाई। कहा जाता है कि देशबन्धु दास तो सर तेजबहादुर के दबाव में आकर सुलह के लिए तैयार होगये थे, परन्तु गाँधीजी तार पर तार जाने पर भी सब राजनैतिक क़ैदियों को छोड़े बिना वाइसराय से बात करने को तैयार नहीं हुए। इसीसे वह सन्धि-चर्चा बीच में ही रह गई।

जून १९२२ में जेल से छूटने पर आपका स्वास्थ्य ख़राब हो चुका था, तो भी एक ही मास बाद आपके राजनैतिक दौरे शुरू होगये। दिसम्बर १९२२ में देशवासियों ने आपको गया-काँग्रेस का सभापति बनाकर उच्चतम राष्ट्रीय सम्मान प्रदान किया। परन्तु उस अधिवेशन के बाद ही आपने काँग्रेस के कार्यक्रम से मतभेद होने से सभापति-पद से इस्तीफ़ा दे दिया और पं० मोतीलाल नेहरू के साथ मिलकर काँग्रेस के अन्तर्गत स्वराज्य-दल का संगठन किया। स्वराज्य-दल संगठित होने पर कौंसिल-प्रवेश और कौंसिल-बहिष्कार को लेकर काँग्रेसवादियों में भारी विवाद खड़ा होगया। १९२३ में सितम्बर में दिल्ली में काँग्रेस का विशेषाधिवेशन होकर उस विवाद का अन्त हुआ। उसमें स्वराज्य-दल को कौंसिल-प्रवेश की अनुमति दी गई। नवम्बर १९२३ में कौंसिलों का चुनाव हुआ। स्वराज्यदल ने उसमें संगठित होकर भाग लिया और बहुत बड़ी सफलता हासिल की। बंगाल और मध्यप्रान्त की कौंसिलों में दल का अत्यधिक बहुमत रहा। इस देश में राजनैतिक आधार पर संगठित पार्लमेण्टरी-पार्टी-प्रणाली का सूत्रपात उसी समय से हुआ। बंगाल-कौंसिल में स्वराज्य-दल ने आपके नेतृत्व में १९२४ में दो बार मार्च तथा अगस्त में और सन् १९२५ में एक बार सरकारी मन्त्रि-मण्डल में

अविश्वास का प्रस्ताव पास कराया। पहली बार वह प्रस्ताव पास हो चुकने पर गवर्नर लार्ड लिटन ने जून में उसे पुनर्विचार के लिए कौंसिल में भेजा, परन्तु क़ानून के महारथी देशबन्धु दास ने हाईकोर्ट में दरख़्वास्त दिलवाई कि यह कौंसिल के बहुमत का अपमान है, अतः प्रेसिडेन्ट को कौंसिल में गवर्नर की आज्ञा का पालन न करने का हुक्म दिया जाय। उसमें आप सफल हुए। उसके बाद भारत-सरकार ने क़ानून में सुधार कर हाईकोर्टों का कौंसिलों की कार्रवाई में दस्तन्दाज़ी करना बन्द करा दिया। तीसरी बार अविश्वास का प्रस्ताव पेश होने के समय मार्च १९२५ में आप रोगी थे। लार्ड लिटन स्वयं कौंसिल के सदस्यों पर वैयक्तिक प्रभाव डालने के लिए कौंसिल-भवन में उपस्थित हुए थे। यह मालूम होते ही आप भी चारपाई पर लेटे हुए कौंसिल-भवन पहुँचे। परिणाम यह हुआ कि जो मेम्बर गवर्नर की उपस्थिति के कारण डावाँडोल हो रहे थे, उनकी हिम्मत बँध गई और ६३ के विरुद्ध ९९ के भारी बहुमत से सरकार को पराजित होना पड़ा।

जिन दिनों में आपने स्वराज्य-दल को संगठित किया था, उन्हीं दिनों में हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों ने भी बड़ा उग्र रूप धारण कर लिया था। विशेषतः पंजाब और बंगाल में अपनी बहुसंख्या बतलाकर मुसलमानों ने सरकारी नौकरियों तथा कौंसिलों आदि में अपनी आबादी के अनुपात से ही स्थान पाने का आन्दोलन तीव्र रूप में खड़ा कर दिया था। देश के राष्ट्रीय नेता उस झगड़े को सुलझाना चाहते थे, परन्तु वह सुलझने में न आता था। आपने कोकनाडा की कांग्रेस में अपनी तरफ़ से एक हिन्दू-मुस्लिम पैक्ट पेश करके, हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों को ही आश्चर्य में डाल दिया। उस पैक्ट में अपने निःसंकोच भाव से मुसलमानों को उनकी आबादी के अनुसार नौकरियों आदि में प्रतिनिधित्व दिया था।

उस पैक्ट पर यद्यपि कभी अमल नहीं होसका, तथापि उससे आपके राष्ट्रीय दृष्टिकोण का पता चलता है। प्रत्येक सार्वजनिक मामलें में आपकी विचार-परम्परा इसी प्रकार चला करती थी।

१९२३ में आपने स्वराज्य-दल के मुखपत्र के रूप में कलकत्ता से प्रसिद्ध अंग्रेज़ी दैनिक 'फारवर्ड' निकालना शुरू किया था। वह पत्र देखते-ही-देखते इतना लोकप्रिय होगया कि उसने भारतीय पत्रों के इतिहास में नया रिकार्ड क़ायम कर दिया। इन्हीं दिनों में काँग्रेस द्वारा नियुक्त की गई 'सत्याग्रह-जाँच-कमेटी' के आप एक प्रभावशाली सदस्य थे।

१९२४ के आरम्भ में आपने कलकत्ता-कारपोरेशन के चुनाव की लड़ाई स्वराज्य-दल की ओर से लड़ी और मतदाताओं के सम्मुख 'दरिद्र-नारायण की सेवा' का कार्यक्रम उपस्थित किया। कारपोरेशन के ७५ में से ५५ सभासद स्वराजिस्ट चुने गये और आप कलकत्ता के प्रथम मेयर निर्वाचित हुए। कारपोरेशन में रहकर आप 'दरिद्रनारायण की सेवा' का अपना कार्यक्रम पूरा नहीं कर सके। कारण यह था कि आपके वहुत-से साथी बंगाल-आर्डिनेन्स में गिरफ्तार कर लिये गये थे। आपके स्वास्थ्य ने भी आपका साथ नहीं दिया। आपके कार्यक्रम की आंशिक पूर्ति आपके पीछे आपके अनुयायियों ने की।

१९२५ के आरम्भ में आपने ज़िला हुगली के प्रसिद्ध मन्दिर तारकेश्वर का मामला अपने हाथ में लिया। मन्दिर का महन्त सतीशगिरि मन्दिर की जायदाद की कुव्यवस्था और अपने अनाचारपूर्ण जीवन के कारण हिन्दुओं के लिए वहुत कष्ट का कारण वना हुआ था। उसके विरुद्ध असन्तोष तो कई महीनों से फैल रहा था। आपने संगठित रूप से महन्त के अहाते में स्वयंसेवकों का प्रवेश-रूपी (मदाख़लत-वेजा) सत्या-

ग्रह करवाया। सैकड़ों स्वयंसेवक जेल गये। देशबन्धु का पुत्र चिररंजन भी उन स्वयंसेवकों में था। अन्त में महन्त को झुकना पड़ा और उसने मन्दिर की सब सम्पत्ति एक ट्रस्ट के आधीन करके समझौता कर लिया।

१९२३ के आरम्भ से निरन्तर ढाई वर्ष तक आपका जीवन इतना कार्य-व्यग्र और संघर्ष में बीता कि मन एवं शरीर को जरा-सा भी आराम नहीं मिला। उसीका परिणाम यह हुआ कि शरीर अत्यन्त निर्बल होगया। मई १९२५ के मध्य में आपको सब काम छोड़कर दारजीलिंग जाना पड़ा। वहाँ स्वास्थ्य में कुछ सुधार दिखाई दिया, परन्तु वह भ्रममात्र था। १६ जून की शाम को उसी रोग से आपका देहान्त होगया। दारजीलिंग से आपका शव कलकत्ता लाया गया। कलकत्ता में उस दिन कहीं पैर रखने को भी जगह न थी। केवड़ाघाट पर, जहाँ आपको चिता पर चिरनिद्रा में सुलाया गया था, आपका स्मारक सुन्दर समाधि के रूप में खड़ा किया गया है और जहाँ आप निवास करते थे वहाँ 'चित्तरंजन-सेवा-सदन' के नाम से एक सुन्दर विशाल और 'अपटूडेट' अस्पताल आपके सेवाभाव और त्याग की मूर्त्त-साक्षी के रूप में बनाया गया है। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि नेता बंगाल के नाम से प्रसिद्ध थे, किन्तु अपने नाम से बंगाल को प्रसिद्ध करनेवाले पहले नेता आप ही हुए हैं। 'देशबंधु का बंगाल' ये शब्द आपके महान् व्यक्तित्व का पूरा परिचय देनेवाले अत्यन्त भावपूर्ण हैं, जिनका उल्लेख काँग्रेस के इतिहास में अभिमान के साथ सदा ही किया जाता रहेगा। आपके देहावसान पर गाँधीजी ने ठीक ही कहा था कि "मनुष्यों में से एक देव जाता रहा है और बंगाल आज विधवा के समान होगया है।"

: ३४ :

अबुलकलाम आज़ाद

[जन्म, मक्का—१८८८]

विशेष अधिवेशन, दिल्ली सितम्बर १९२३

मौलाना अवुलकलाम आज़ाद का व्यक्तित्व ही नहीं, किन्तु जीवन भी अन्तर्राष्ट्रीय है। आपकी योग्यता और विद्वत्ता की ख्याति भारतीय राष्ट्र की सीमा पार कर समस्त मुस्लिम राष्ट्रों में फैली हुई है। आपका जन्म १८८८ में मक्का में हुआ था। वचपन में आप अरव में रहे थे और प्रारम्भिक धार्मिक शिक्षा आपकी मिस्र की राजधानी कैरो की यूनिवरसिटी अल अज़हर में हुई थी। आपने १४-१५ वर्ष की आयु में फ़ारसी तया अरवी भाषाओं, मुसलमानी धर्म तथा दर्शनशास्त्र की इतनी शिक्षा प्राप्त कर ली थी, जितनी कि क़दीम मदरसों में साधारण विद्यार्थी २५-३० वर्षों में प्राप्त करते हैं। आपके इस असाधारण व्यक्तित्व और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन का सब श्रेय आपके स्वनामधन्य पिता मौलाना मुहम्मद खैरुलउद्दीन साहब को है। वह १८५७ के स्वतन्त्रता-युद्ध के बाद विदेशों में चले गये थे और तब उन्होंने हज शरीफ़, ईराक, टर्की, मिस्र और शाम आदि की सैर की थी। फिर वह कुछ दिन बम्बई आकर रहे थे और वहाँसे कलकत्ता आकर कलकत्ता में ही बस गये थे। वह अपने समय के बहुत बड़े आलम और सूफ़ी थे। बम्बई, काठियावाड़, कच्छ,

गुजरात, कोंकण आदि में हज़ारों उनके मुरीद और मौतक़िद थे। कलकत्ता और बम्बई में भी उनको माननेवालों की बहुत बड़ी संख्या थी। लंका, जावा, मिस्र, शाम, ईराक आदि विदेशों तक में उनके मुरीद फैले हुए थे। अरबी में उन्होंने इस्लाम पर बहुत-सी पुस्तकें लिखी थीं, जो अब भी प्रमाण मानी जाती हैं और मिस्र में छपकर प्रकाशित हुई हैं। १९०८ में उनका देहान्त हुआ था। आपके पितामह रुकनुल मदरसीन मौलाना मुहम्मद मुनव्वरुलदीन अकबर शाहदानी के उस्ताद और पीर थे। अकबर के समय के दिल्ली के सुप्रसिद्ध विद्वान शेख़ जमालुद्दीन इसी ख़ानदान के बुज़ुर्ग थे। इस प्रकार आपका ख़ानदान इस देश के मुसलमान उलमाओं के ख़ानदान में बहुत पुराना है। आपने उस ख़ानदान की प्रतिष्ठा को और अधिक उन्नत करके व्यापक बनाया है। आपका ख़ानदान पुराने ढर्रे का था। इसलिए पुराने तरीक़ों पर ही आपकी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ और पहलेपहल आपको इस्लाम की धार्मिक शिक्षा दी गई। बचपन में ही आपको ईराक, मिस्र, शाम और टर्की में घूमने, वहाँके उलमाओं की संगति में रहकर विशेष शिक्षा प्राप्त करने और साथ में नई दुनिया की नई रोशनी देखने का भी मौका प्राप्त होगया था। इसका परिणाम यह हुआ कि आपके विचारों में परिवर्तन होगया। आपने यह अनुभव किया कि पुरानी शिक्षा और पुराने साहित्य की दुनिया का दायरा बहुत तंग है। आपने देखा कि नई शिक्षा और नये साहित्य ने एक नई दुनिया पैदा करदी है। यूरोप के विज्ञान और साहित्य की ओर आपका झुकाव हुआ। उसको पढ़ने की आपमें तीव्र इच्छा पैदा हुई। लेकिन परिवार की परम्परा, समाज की परिपाटी और शिक्षा की रूढ़ि के बन्धनों के कारण स्वतंत्र रूप से उस इच्छा की पूर्ति करना आपके लिए संभव नहीं था। उनसे मुक्त होने का निश्चय करते ही आपका

कायापलट होगया। पुराने ख़ानदानी अन्धकार के कोने में से निकलकर आपने एक दूसरे संसार में पेश किया। वहुत थोड़े समय में आपने अंग्रेज़ी का भी अच्छा ज्ञान हासिल कर लिया।

आपका सार्वजनिक जीवन १५ वर्ष की आयु से शुरू होजाता है। उसी आयु में आपने कलकत्ता से एक मासिकपत्र वड़ी शान के साथ निकालना शुरू किया था। लखनऊ के 'आलन्दो' और अमृतसर के 'वक़ील' में भी आप लेख लिखा करते थे। आपके लेख वहुत शौक से पढ़े जाते थे और उनके कारण आपकी प्रशंसा भी खूव हुई।

१९०९ में आपके राजनैतिक विचारों में भी परिवर्तन होगया। उस समय मुसलमान देश के राजनैतिक और सार्वजनिक जीवन से विलकुल अलग थे। काँग्रेस में वे कोई हिस्सा नहीं लेते थे। जो थोड़े-से मुसलमान काँग्रेस के साथ थे, उनको मुसलमानों का प्रतिनिधि नहीं माना ज़ाता था। १८९१ में काँग्रेस का विरोध करते हुए सर सैयद अहमदखाँ ने जो भावना उनमें भर दी थी, वह उस समय भी वैसी ही वनी हुई थी। मुसलमानों में यह खयाल कूट-कूटकर भर दिया गया था कि हिन्दुस्तान में वहुमत हिन्दुओं का है। देश की हुकूमत हिन्दुस्तानियों के हाथों में जाने का मतलव यह होगा कि यहाँ हिन्दू राज्य कायम होजायगा। मुसलमानों की मुक्ति इसीमें है कि वे इसका विरोध करें और सरकार-परस्त वने रहें। उसी मतलव से मुस्लिम-लीग भी क़ायम होचुकी थी। उसके दिल्ली के १९०८ के अधिवेशन में सैयद अमीरअली का यह पैग़ाम सुनाया गया था कि मुसलमानों के राजनैतिक आन्दोलन का ध्येय सरकार से नहीं, किन्तु हिन्दुओं से अधिकार प्राप्त करना होना चाहिए। उनका मुक़ाविला हिन्दुओं के साथ है, सरकार के साथ नहीं। आपने यह अनुभव किया कि मुसलमानों का यह रुख देश की उन्नति के लिए वाधक

है, उसको बदलना चाहिए। इसी ध्येय से आपने १९१२ में कलकत्ता से 'अल हिलाल' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला और मुसलमानों की उस भावना के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। आपने पूरे जोरों के साथ यह आन्दोलन शुरू किया कि मुसलमानों का हित हिन्दुओं के साथ मिलकर एक होने में है, उनको काँग्रेस में शामिल होना चाहिए और देश की आज़ादी को अपना आदर्श बनाना चाहिए। आपका वह पत्र यूरोपियन पत्रों के दरजे का पहला उर्दू पत्र था, जिसने उर्दू की पत्र-कला को एका-एक उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया था। आपकी भाषा और शैली में विचित्र आकर्षण था। सारे देश के मुसलमानों का ध्यान आपने तुरन्त अपनी ओर खींच लिया। बंगाल से उठी हुई आपकी आवाज़ पश्चिम में पेशावर और दक्षिण में कन्याकुमारी तक पहुँचने लगी। मुसल-मानों की विचार-धारा के साथ-साथ उर्दू-साहित्य की विचार-धारा भी बदल गई। आपकी उस शैली पर आज भी उर्दू को सच्चा गर्व है और इस समय के उर्दू लेखक भी उसके रंग-ढंग की नकल करने का यत्न करते हैं।

अलीगढ़-पार्टी और मुस्लिमलीगवालों ने आपका सख्त विरोध किया। यहाँतक कि आपको क़त्ल करने की भी धमकियाँ दी गईं। उसी समय मौलाना मुहम्दअली ने अलकत्ता से 'कामरेड' निकाला था और वे अलीगढ़-पार्टी और मुस्लिम-लीग की भावना से ही प्रेरित होकर लिखा करते थे। 'अल हिलाल' के विरोध में उन्होंने भी कई लेख लिखे थे। लेकिन आप अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए और आपकी आवाज़ दिन-पर-दिन बुलन्द होती गई। समझदार मुसलमानों के दिमाग़ फिर गये, राजनैतिक आन्दोलन की नई लहरें पैदा हुईं और मुसलमानों में बिजली की तरह चारों ओर फैल गईं। मुस्लिम-लीग को १९१३ के लख-

नऊ के अधिवेशन में नियमावली बदलनी पड़ी और हिन्दुस्तान के लिए स्वायत्त शासन को अपना ध्येय बनाना पड़ा।

१९१४ में यूरोप का युद्ध शुरू होने पर आप 'अल हिलाल' में पूरी आज़ादी के साथ अपने विचार प्रकट करने लगे थे। सरकार के लिए उस राजनैतिक विचार-धारा को सहन करना संभव नहीं रहा था, जिसको आपने अकेले ही खड़े होकर मुसलमानों में पैदा किया था; किन्तु युद्ध के सम्बन्ध में प्रकट किये जानेवाले आपके विचार तो सरकार के लिए एकदम ही असह्य होगये। बंगाल-सरकार ने पत्र के लेखों की जाँच-पड़ताल के लिए एक विशेष ब्यूरो नियुक्त किया, किन्तु पत्र की नीति, शैली और विचार-धारा ऐसी थी कि उसका उसपर कुछ भी असर नहीं पड़ा। युद्ध की घटनाओं पर सरकार के दृष्टिकोण और नाराज़गी की ज़रा भी परवा न कर, निर्भीक हो, आप टीका-टिप्पणी करते थे। इलाहाबाद का सरकारी पत्र 'पायोनियर' आपपर बुरी तरह बौखला पड़ा। उसने मुख्य लेख लिखकर सरकार का ध्यान 'अल हिलाल' की ओर आकर्षित किया। हाउस ऑफ़ कामन्स तक में उसके बारे में सवाल पूछे गये। परिणाम यह हुआ कि पत्र की ज़मानत ज़ब्त करके दस हज़ार की नई ज़मानत माँगी गई। पत्र बन्द होगया।

आप चुप बैठनेवाले नहीं थे। आपने 'अल बलाग' नाम से दूसरा पत्र निकालना शुरू किया। कोई और उपाय न देख सरकार ने आपपर 'भारत-रक्षा-क़ानून' का वार किया। दिल्ली, पंजाब, संयुक्तप्रान्त, मध्य-प्रान्त और बम्बई आदि में आपका जाना-आना रोक दिया गया। सिर्फ बंगाल और बिहार में आपपर रोक न थी। अप्रैल १९१६ में बंगाल-सरकार ने भी आपको बंगाल छोड़ देने का हुक्म दिया। तब आप राँची चले गये। चार मास बाद भारत-सरकार ने आपको वहाँ

नज़रवन्द कर दिया। श्रीयुत मज़हरुल हक़ ने कौंसिल में जब आपके नजर-वन्द किये जाने का कारण पूछा, तब सरकार ने जवाब दिया कि बंगाल की विप्लवी संस्थाओं से आपका सम्बन्ध है। नजरवन्द किये जाने पर भी आपका पैदा किया हुआ आन्दोलन मुसलमानों में पूरी दृढ़ता के साथ फैलता चला गया। १९१८ में मुसलमानों की एक बड़ी संख्या काँग्रेस में शामिल होगई और मुस्लिम-लीग के प्लेटफ़ार्म पर से भी काँग्रेस की-सी बातें होने लगीं।

चार वर्षों तक आप नजरबन्द रहे। जनवरी १९२० में आप रिहा किये गये। उसके बाद असहयोग का आन्दोलन शुरू हुआ। असहयोग के कार्यक्रम में गाँधीजी का आपने पूरी तरह साथ दिया। २२ मार्च १९२० को दिल्ली में नेताओं का पहला सम्मेलन उस कार्यक्रम पर विचार करने के लिए हुआ। उसमें केवल चार नेता सम्मिलित हुए थे—गाँधीजी, लाला लाजपतराय, हकीम अजमलखाँ और आप। इस प्रकार असह-योग-आन्दोलन के ज़न्मदाताओं में से आप एक हैं।

१९२१ के अन्त में युवराज के स्वागत के बहिष्कार को असफल बनाने के लिए सरकार ने बंगाल से दमन का श्रीगणेश किया था। क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट एक्ट के अनुसार सबसे पहले बंगाल में स्वयंसेवक-दलों और कांग्रेस कमेटियों को ग़ैरकानूनी घोषित किया गया था। तब १० दिसम्बर को देशबन्धु दास के साथ आप भी गिरफ्तार किये गये थे। देशबन्धु को छः मास और आपको एक वर्ष की सज़ा हुई। जनवरी १९२३ में जब आप रिहा हुए, काँग्रेस में परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी दो दल बन चुके थे। आपने रिहा होते ही दोनों में समझौता कराने का यत्न किया। कई महीनों के निरन्तर यत्न के बाद उसमें आप सफल हुए। मार्च १९२३ में इलाहाबाद में महासमिति की बैठक में आपका समझौता

मान लिया गया और नागपुर में महासमिति की वैठक होकर काँग्रेस का विशेष अधिवेशन करने का निश्चय हुआ। सितम्वर १९२३ में आपके ही सभापतित्व में वह अधिवेशन दिल्ली में हुआ। यूनान के विरुद्ध टर्की की फतह होकर कमालपाशा खिलाफ़त का उस समय खात्मा कर चुके थे। आपने अपने भाषण में टर्की को उसकी फतह के लिए वधाई दी और खिलाफत-आन्दोलन पर राष्ट्रीय दृष्टि से विचार करते हुए वताया कि मुस्लिम देशों पर उसका कैसा प्रभाव पड़ा है। आपने कहा था कि "पिछले चार वर्षों में मैंने खिलाफ़त की माँगों को मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुस्तानी की दृष्टि से ही देखा है। महात्मा गाँधी ने खिलाफ़त के प्रश्न को पुष्ट करके देश की वहुत भारी सेवा की है।" गाँधीजी की दूरदर्शिता, राजनीतिमत्ता और राष्ट्रसेवा का गर्व के साथ वर्णन करते हुए आपने असहयोग को सार्वभौम सचाई वताया था और कहा था कि कोई भी विजित जाति विजेता के साथ सहयोग करके अपने राजनैतिक अधिकारों को प्राप्त नहीं कर सकती। अपने इस कथन के समर्थन में आपने वहुत ही सुन्दर ऐतिहासिक और दार्शनिक विवेचन किया था। हिन्दू-मुस्लिम द्वेष की आग भी देश में सुलग चुकी थी। उसका विस्तृत विवेचन करते हुए आपने कहा था कि "सारी वातों पर विचार करने के वाद मैं निस्संकोच भाव से यह घोषणा करता हूँ कि न तो देश को हिन्दू-संगठन की आवश्यकता है और न मुस्लिम-संगठन की ही। आज केवल एक संगठन की आवश्यकता है, और वह एकमात्र भारतीय राष्ट्रीय महासभा (काँग्रेस) का संगठन है।" मसजिदों, गाजों-वाजों, पीपल की टहनियों और जलूसों की सव वातों को तय करके राष्ट्रीय संगठन को दृढ़ वनाने पर आपने ज़ोर दिया और परिवर्तनवादियों तथा अपरिवर्तनवादियों से भी आपने एक होकर कार्य करने की अपील की थी। आपके ही व्यक्तित्व तथा

प्रयत्न का यह परिणाम हुआ कि काँग्रेस में फैली हुई फूट मिट गई और दोनों ने अपने विचार, विश्वास एवं तरीके से काँग्रेस का काम शुरू कर दिया। शुद्धि और संगठन तथा तंज़ीम और तबलीग से देश में साम्प्रदायिकता की गंदगी के फैलते रहने पर भी आप राष्ट्रीयता की चट्टान पर दृढ़ रहे और अभागे देश की फिरे-दिमाग़ की दोनों महान् जातियों को एक करने में लगे रहे। मुसलमानों को मसजिदों तक में खड़े होकर आपने यह समझाने का निरन्तर यत्न किया कि मसजिद की पवित्रता और नमाज़ के ध्यान में गाजों-बाजों से कभी कुछ खलल पैदा नहीं होसकता। आपका धर्म आपके राष्ट्र का विरोधी कभी नहीं हुआ और आपकी आस्तिकता आपको राष्ट्रीयता से कभी दूर नहीं लेजा सकी। दोनों का आपमें अपूर्व मिश्रण है।

१९२४ में आप दिल्ली आगये थे। यहीं अपना प्रेस और पुस्तकालय भी लेआये थे। कुछ वर्षों के बाद आप फिर कलकत्ता चले गये और तबसे वहीं स्थिर तौर पर रहने लग गये हैं। इस बीच में हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य या समझौते के लिए नेहरू-रिपोर्ट या इस प्रकार के जितने भी यत्न हुए, उन सबका आपने स्वागत किया और उनको सफल बनाने का यत्न भी किया। देश में एकता स्थापित हो और स्वतन्त्रता के लिए सब देशवासी मिलकर यत्न करें—इसके लिए आप सदा ही लालायित रहते हैं।

१९३० और १९३१-३२ के आन्दोलनों से आप अलग नहीं रह सकते थे। १९३० में ग़ैरकानूनी कार्य-समिति के सदस्य और १९३२ के मार्च में स्थानापन्न राष्ट्रपति होने से आप गिरफ्तार किये गये थे। वैसे भी आप काँग्रेस की महासमिति के प्रायः १९२० से ही सभासद हैं और उसके कार्यों, मन्त्रणाओं तथा विचारों में पूरा भाग लेते रहे हैं। काँग्रेस

के प्रधान संचालकों में आपका विशेष स्थान है। आप प्रभावशाली वक्ता, सुयोग्य लेखक और गम्भीर विचारक हैं। काँग्रेस की विषय-समिति की वैठकों और खुले अधिवेशनों में भी आपके भाषण वहुत ध्यान से सुने जाते हैं। महत्वपूर्ण और विवादास्पद विषयों पर उनमें काँग्रेस हाई-कमाण्ड के दृष्टिकोण को उपस्थित करनेवाले कुछ प्रमुख व्यक्तियों में आप एक हैं।

सत्याग्रह स्थगित होने के वाद से काँग्रेस के धारा-सभाओं की पार्ल-मेण्टरी गति-विधि को अपनाने के वाद भी उसके कार्यों में आप विशेष महत्वपूर्ण भाग लेते रहे हैं। इस गति-विधि का नियन्त्रण करने के लिए कार्य-समिति द्वारा वनाई गई पार्लमेण्टरी उपसमिति के सरदार पटेल और राजेन्द्र वावू के साथ तीसरे सदस्य आप हैं। राजेन्द्र वावू के वीमार रहने की वजह से उक्त समिति के अधिकांश कार्य का भार सरदार पटेल के वाद आपको ही सम्हालना पड़ा है। मध्यप्रान्त में पैदा हुए मन्त्रि-मण्डल के झगड़ों को निपटाने, उड़ीसा में स्थानापन्न गवर्नर की नियुक्ति पर वैधानिक संकट की स्थिति का सामना करने, सिन्ध में मन्त्रि-मण्डल की उलझनों को सुलझाने, विहार में टैनेंसी विल को लेकर प्रान्तीय सर-कार तथा ज़मींदारों में उत्पन्न हुए मतभेदों को मिटाने और आसाम में काँग्रेसी मन्त्रि-मण्डल की स्थापना कराने आदि में आपने अपना भाग उक्त समिति के सदस्य के नाते अत्यन्त वाञ्छनीय ढंग से अदा किया है। आपका व्यक्तित्व एवं प्रभाव इसी वजह से इधर वहुत चमक उठा है। साम्प्रदायिक मामलों खासकर मुस्लिम सवालों पर आपकी राय काँग्रेस में प्रमाण मानी जाती है। गांधीजी तक इसकी प्रामाणिकता को स्वीकार करते हैं। श्री जिन्ना के साथ चलाई गई साम्प्रदायिक समझौते की वात-चीत में गाँधीजी आपको अपने साथ लेजाना चाहते थे। लेकिन, श्री

जिन्ना को आपका यह राष्ट्रीय उत्कर्ष सहन नहीं हुआ और उन्होंने गाँधीजी के साथ आपसे मिलने से इनकार कर दिया। दिल्ली में अक्तूबर १९३८ के तीसरे सप्ताह में हुई काँग्रेस की महासमिति की बैठकें राष्ट्रपति वोस की ग़ैरहाजिरी में आप ही की अध्यक्षता में हुईं। इन बैठकों में सरदार पटेल के बाद काम करनेवाला प्रभाव या व्यक्तित्व आप ही का था।

इस्लामिक फ़िलासफ़ी और धर्मशास्त्र पर आप प्रमाण माने जाते हैं। अपने पिता के समान आपने भी इन विषयों पर अनेक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे हैं और उनकी ख्याति सभी मुस्लिम देशों में एकसमान है। आपकी विद्वत्ता और योग्यता की मिस्र, टर्की, ईराक और अरब तक में धाक जमी हुई है। आपके मुरीद भी सब देशों में चारों ओर फैले हुए हैं। कलकत्ता में ईद की सार्वजनिक नमाज़ आप ही पढ़ाते हैं। आपके राष्ट्रीय विचारों से बिगड़कर कुछ लोगों ने आपके विरुद्ध बग़ावत करने का यत्न किया था। पर वे सफल न हो सके थे। इधर फिर इस आन्दोलन ने मुस्लिम-लीग के सिर उठाने के साथ-साथ उग्र रूप धारण किया है। उदार विचार के मुसलमान इस आन्दोलन के विरोधी हैं। लेकिन, मुस्लिमलीगी आपको इमाम नहीं रहने देना चाहते। ऐसे विरोध पर भी आप राष्ट्रीयता की चट्टान पर दृढ़ बने हुए हैं। आपके विचार बहुत उदार, उन्नत और प्रगतिगामी हैं। आपके सभी लेखों में आपके स्वतन्त्र व्यक्तित्व की छाप लगी रहती है। आपका कुरान-शरीफ़ का अनुवाद सबसे अधिक सरल, सुन्दर और प्रामाणिक है। उसमें जिस उदार और विशाल दृष्टि से विचार किया गया है, उसका परिचय देने के लिए उसमें से एक उद्धरण को यहाँ देना आवश्यक प्रतीत होता है। आपने लिखा है कि "कुरान ने न केवल उन सब धर्मों के संस्थापकों को सच्चा माना, जिनके माननेवाले उस समय उसके

सामने मौजूद थे, बल्कि साफ़ शब्दों में कह दिया कि मुझसे पहले जितने भी रसूल और धर्म-प्रवर्तक हुए हैं, मैं उन सबको सच मानता हूँ और उनमें से किसी एक के न मानने को भी ईश्वरीय सत्य को न मानने से इन्कार समझता हूँ। उसने किसी धर्म वाले से यह नहीं चाहा कि वह अपने धर्म को छोड़ दे। बल्कि जब कभी चाहा तो यही कि सब अपने-अपने धर्मों की असली शिक्षा पर चलें, क्योंकि सब धर्मों की असली शिक्षा एक ही है। न उसने कोई नया सिद्धान्त पेश किया और न कोई नई कार्य-पद्धति ही चलाई। उसने सदा उन्हीं बातों पर ज़ोर दिया, जो संसार के सब धर्मों की सबसे ज्यादा जानी-बूझी बातें हैं; अर्थात् एक जगदीश्वर की उपासना और सदाचार का जीवन। उसने जब कभी लोगों को अपनी ओर बुलाया है, तो यही कहा है कि अपने-अपने धर्मों की वास्तविक शिक्षा को फिर से ताजा करलो, तुम्हारा ऐसा कर लेना ही मुझे कबूल कर लेना है।" इस प्रकार के स्वतन्त्र विचार आप सदा ही प्रकट करते रहे हैं। काबुल में मुरतिद (मज़हबी बदलनेवाले) लोगों को जब पत्थर मार-मारकर जान से मार डाला गया था, तब उसके विरोध में आपने आवाज़ बुलन्द की थी और उसको इस्लाम के धर्म तथा इतिहास दोनों के ही विरुद्ध बताया था। इस देश में होनेवाली धार्मिक हत्याओं के भी आप विरोधी रहे हैं। कराची के नाथूराम महाराज की हत्या और हत्यारे अब्दुलक़यूम को गाज़ी आदि कहने की भी आपने तीव्र निन्दा की थी। आपने स्पष्ट ही कहा था कि ऐसा आदमी 'ग़ाज़ी' नहीं, 'क़ातिल' है। मुहम्मदसाहब को यदि कोई भला-बुरा कहता है तो उसको सहन करना चाहिए। ऐसे आदमी को दण्ड देने का मुसलमानों को न अधिकार है और न वह उनका फ़र्ज़ है। आपकी की हुई कुरान-शरीफ की व्याख्या या अनुवाद इस दृष्टि से अपूर्व एवं अलौकिक है।

सारांश यह है कि आपने उस विचार-धारा के विरुद्ध विद्रोह किया है, जो मुसलमानों को राष्ट्रीयता से दूर रखकर धर्मान्ध वनाये रखने के लिए इस देश में पैदा की गई थी और जिसको क़ायम रखने तथा चारों ओर फैलाने का विशेष यत्न निरन्तर किया जाता है। आप अपने विद्रोह में यद्यपि पूरी तरह सफल नहीं हुए, किन्तु उसके वीज ऐसी उपजाऊ भूमि में वखेरे जा चुके हैं कि उनके जड़ पकड़कने में अधिक समय नहीं लगेगा। उनके अंकुर फूटने के वाद जव वग़ीचा सुन्दर फूलों और मधुर फलों से लद जायगा, तव सव धर्मान्धता, अनैतिकता तथा अराष्ट्रीयता नष्ट हो-जायगी और तव पता चलेगा कि मौलाना आज़ाद ने १७-१८ वर्ष की आयु में किस ऊसर भूमि को किस प्रकार साफ किया था और उसमें दृढ़ राष्ट्रीयता तथा उदार धार्मिकता के वीज कैसे वखेरे थे। भारत के मुसलमानों में राष्ट्रीयता, उदारता तथा सहिष्णुता की भावना पैदा करनेवालों की नामावली में निश्चय ही आपका स्थान वहुत ऊँचा है।

: ३५ :

मुहम्मदअली

[१८७८—१९३०]

अड़तीसवाँ अधिवेशन, कोकनाडा—१९२३

'मौलाना मुहम्मदअली इस्लाम के लिए जिये और भारत के लिए मरे'—इस एक वाक्य में आपके सरल, भावुक, साहसी, निर्भीक, योद्धा, स्पष्टवादी, श्रद्धा-सम्पन्न, स्वतन्त्रता-प्रेमी और देशभक्ति-पूर्ण जीवन का परिचय दिया जा सकता है। १९३० की गोल-मेज़-परिषद् में लन्दन में भारत की स्वतन्त्रता के लिए ज़ोरदार वकालत करते हुए आपके जीवन का अन्त होना और जेरुसलम में इस नश्वर शरीर का अनन्त निद्रा में निमग्न होना ऊपर के कथन का सदा समर्थन करता रहेगा। आपका इस्लाम-प्रेम राष्ट्रीयता का विरोधी नहीं था, वल्कि देशभक्ति और स्वतन्त्रता की भावना का समर्थक था।

रामपुर-राज्य के एक सुप्रसिद्ध घराने में दिसम्वर १८७८ में आपका जन्म हुआ था। आपके पितामह अलीवर्दीखाँ राज्य के प्रतिष्ठित अधिकारी थे। १८५७ की लड़ाई में अंग्रेज़ों को आपने वहुत मदद दी थी। उनके पुत्र अव्दुलअलीखां भी राज्य में उच्च पदाधिकारी थे। अली-वन्धुओं के वालकपन में ही उनके पिता अव्दुलअलीखाँ का देहान्त हो-गया था। बी अम्मा ने दोनों का वड़े यत्न के साथ लालन-पालन किया। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा रामपुर में, हाईस्कूल की वरेली में और कालेज

की अलीगढ़ में हुई। १८९८ में सिविल-सर्विस के लिए आप इंग्लैण्ड गये। १९०२ तक आक्सफोर्ड में पढ़े। परीक्षा में असफल होकर भारत लौट आये। फिर विलायत जाकर बी० ए० पास किया।

भारत लौटने पर रामपुर-राज्य के शिक्षा-विभाग के प्रधान अधिकारी नियुक्त होगये। एक वर्ष बाद बड़ौदा जाकर वहाँ अफ़ीम के महकमे में १९१० तक काम किया। नौकरी में रहते हुए भी आप सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते रहते थे। १९०६ में मुस्लिम-लीग को स्थापित करनेवालों में आप भी एक थे। विद्यार्थी-जीवन से ही आपको बोलने और लिखने का शौक़ था। आक्सफोर्ड-यूनिवरसिटी-यूनियन में अपनी वाणी और बाद में समाचारपत्रों में अपनी लेखनी की आपने धाक जमा दी थी। १९११ में आपने कलकत्ता से 'कामरेड' निकाला, जिसको प्रसिद्धि प्राप्त करने में अधिक समय नहीं लगा। इसी बीच जावरा-राज्य का प्रधान-मंत्री बनने के लिए आपपर ज़ोर डाला गया। पर, ग़ुलामी का तौक़ उतारकर सार्वजनिक जीवन की ओर पग बढ़ानेवाले मुहम्मदअली फिर पीछे लौटने को तैयार न हुए। अलीगढ़ के एम० ए० ओ० कालेज को यूनिवरसिटी बनाने के लिए आपने खूब चन्दा इकट्ठा किया था।

१९१३ (३ अगस्त) को कानपुर में मछली बाज़ार की मसजिद का कुछ हिस्सा सड़क के लिए गिराये जाने पर मुसलमानों और सरकार में भयानक संघर्ष पैदा होगया था। सरकार की ओर से गोली चलाई गई और बहुतसे मुसलमान गिरफ्तार किये गये थे। उसके लिए आपने विलायत जाकर वहाँके समाचारपत्रों में आन्दोलन किया। सरकार को अन्त में हारना पड़ा। सड़क पर पुल बनाकर मसजिद का वह हिस्सा बनाया गया और गिरफ्तार किये गये मुसलमानों को छोड़ दिया गया।

१९१२ में दिल्ली के राजधानी बनाये जाने पर आप भी अपना 'कामरेड' दिल्ली ले आये और १९१३ से उर्दू में दैनिक 'हमदर्द' भी निकालना शुरू कर दिया। उसी वर्ष टर्की-बालकन-युद्ध होने पर आपने चन्दा जमा करके वहाँ एक सेवक-मण्डल भेजा। १९१४ में टर्की को जर्मनी से अलग रखने के लिए आपसे और डाक्टर अन्सारी से भारत-सरकार ने एक तार दिलवाया। पर, टर्की युद्ध में जर्मनी के साथ होकर कूद पड़ा। तब आपने तुर्कों के साथ सहानुभूति प्रकट करते हुए ज़ोरदार लेख लिखे। दोनों भाइयों को भारत-रक्षा-क़ानून में गिरफ्तार करके महरौली, लैंड्सडाउन और छिंदवाड़ा में रक्खा गया। इस क़ानून की अवधि पूरी होने पर रेगूलेशन ३ के अनुसार आपको बेतूल में रक्खा गया। लोगों में इस नज़रबन्दी पर असन्तोष पैदा हुआ, प्रतिवाद में सभायें हुईं, तार दिये गये, मेमोरियल भेजे गये, पर सब व्यर्थ सिद्ध हुए। राजनैतिक मामलों में भाग न लेने की शर्त पर छूटने से आपने इनकार कर दिया।

पंजाब के मार्शल-लॉ के बाद माण्टफोर्ड-सुधारों का नया युग लाने के लिए पंजाब के अलावा और भी प्रान्तों में बहुतसे राजनैतिक क़ैदी रिहा किये गये थे, तब दोनों भाई भी जेल से रिहा हुए। दिल्ली, अमृत-सर, कलकत्ता आदि जहाँ भी दोनों भाई गये, लोगों ने राजसी ठाठ-बाट से आपका स्वागत-अभिनन्दन किया। १९२० में खिलाफ़त-डेपूटेशन में विलायत से निराश होकर आप टर्की और अरब होते हुए यह निश्चय करके लौटे कि ग़ुलामों का रखवारा दुनिया में कोई नहीं। यहाँका वातावरण भी बहुत बदल चुका था। देश भिक्षा की परावलम्बी वृत्ति का त्याग कर असहयोग के स्वावलम्बन के मार्ग की ओर अग्रसर होरहा था। निर्भीक योद्धा की वीर वृत्ति रखनेवाले मुहम्मदअली आग में कूद पड़े। राजनैतिक असंतोष की उस आग को सब देश में उस भयानक

रूप में फैला देनेवालों में आपका नाम अभिमान से लिया जाता रहेगा। १९२१ में कराची की खिलाफत कान्फ्रेन्स में शेर मुहम्मदअली ने घोषणा की कि "इस्लाम के शत्रुओं की नौकरी मुसलमान सिपाहियों को छोड़ देनी चाहिए।" १४ सितम्बर १९२१ को विजगापट्टम में आप गिरफ्तार किये गये। दोनों भाइयों, जगद्गुरु शंकराचार्य, डा० किचलू आदि पर कराची में मुकदमा चला। दो-दो वर्ष की सजा हुई। वह भी एक समय था, जबकि उस अपराध को हजारों सभाओं में इकट्ठे होकर लाखों व्यक्तियों ने दोहराया था। दो वर्ष बाद आप जब जेल से बाहर आये, तब गाँधीजी जेल में थे। देश में परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तनवादियों में गृह-कलह ज़ोरों पर था। १९२३ की दिल्ली की विशेष काँग्रेस पर आपके उद्योग से दोनों दलों में समझौता होगया। आपके त्याग, तपस्या, कष्ट-सहन, देश-सेवा और राष्ट्र-भक्ति के फल-स्वरूप देशवासियों ने आपको १९२३ में कोकनाडा-काँग्रेस के अध्यक्ष के आसन पर बिठाकर आपको सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया। गया में स्वराज्य-दल के बनने और आपके ही सभापतित्व में काँग्रेस में कौंसिल-प्रवेश का प्रस्ताव स्वीकृत होजाने पर भी आपने कौंसिलों की ओर कभी आँख फेरकर देखा तक नहीं। १९२७ की मदरास-काँग्रेस में मुसलमानों के अधिकारों के सम्बन्ध में मतभेद होने पर आप काँग्रेस से अलग होगये। उसके बाद आप काँग्रेस में नहीं आये। 'कामरेड' और 'हमदर्द' को आपने फिर निकाला। बाद में आपका स्वास्थ्य कुछ गिर गया।

१९२० के राजनैतिक आन्दोलन के शिथिल होने पर देश में साम्प्रदायिकता का जो नंगा नाच हुआ और उसके परिणाम-स्वरूप जहाँ-तहाँ हिन्दू-मुसलमानों में जो कलह हुई, उससे आप अत्यन्त दुःखी रहते थे। दोनों में सुलह कराने में आप कभी पीछे नहीं रहे। दिल्ली के दंगे के

वाद महात्मा गाँधी के २१ दिन के उपवास पर एकता-सम्मेलन संगठित करने में आपका विशेष हिस्सा था। कट्टर मुसलमान और बहुत अंशों में धर्मान्ध होते हुए भी आपमें साम्प्रदायिकता, चापलूसी तथा राजभक्ति की वू तक नहीं थी। वह सब आपकी दृष्टि में देशद्रोह था और देशद्रोह से आपने अपनेको सदा वचाये रक्खा। अन्त में लन्दन में पहली गोल-मेज-परिषद् में ४ जनवरी १९३० को देश की दुरवस्था से व्यथित, हृद्रोग से पीड़ित मुहम्मदअली ने यह कहने के वाद अन्तिम साँस लिया कि "यदि भारत को स्वतन्त्रता न दी गई, तो यहीं आपको मेरी क़ब्र का प्रवन्ध करना होगा।" इस प्रकार देश की स्वतन्त्रता की वेदी पर शहीद होने की पहली रात को आपने अपने देशवासियों के नाम यह अपील लिखी थी कि "परस्पर सारे मतभेदों को भुलाकर राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए मिलकर काम करना ही इस समय वाञ्छनीय है।"

: ३६ :

मोहनदास करमचन्द गाँधी

[२ अक्तूबर १८६९]

उन्तालीसवाँ अधिवेशन,

वेलगाँव—१९२४

किसी विशेष मिशन और सन्देश को लेकर आनेवाले महापुरुष अपनी जाति, समाज, देश तथा राष्ट्र की सीमा पार करके अपने व्यक्तित्व और जीवन को सारे संसार और मनुष्य-मात्र की भेंट चढ़ा देते हैं। वे युग-निर्माता होते हैं। उनकी जीवन-कहानी विश्व के इतिहास का गौरवशाली अध्याय वन जाती है। थोड़े में उसका परिचय नहीं दिया जा सकता। मोहनदास करमचन्द गाँधी अहिंसा के अनुष्ठान और सत्य के प्रयोग द्वारा भारतीय राष्ट्र के निर्माण के साथ-साथ सब संसार और समस्त मनुष्य-समाज के लिए नव-युग का निर्माण करने में लगे हुए हैं। इसीलिए आप भारत की ही नहीं, किन्तु विश्व की आशा के केन्द्र हैं। आपका जन्म काठियावाड़ प्रदेश के पोरवन्दर राज्य के एक कुलीन घराने में २ अक्तूबर १८६९ (आश्विन कृष्ण १२ सम्वत् १९२५) को हुआ था। आपके पिता करमचन्द पहले पोरवन्दर में तथा वाद में राजकोट और वाँकानेर में दीवान रहे। आपकी माता पुतलीवाई वहुत साधु-स्वभाव

की, पूजा-पाठ तथा व्रत-उपवास में निष्ठा रखनेवाली थीं। माता-पिता-गुरु आदि में भक्ति और निष्ठा आपमें जन्म के साथ ही पैदा होगई थी। विद्यार्थी-जीवन में शिक्षा के साथ-साथ इन गुणों में भी वृद्धि हुई। वैसे आप मन्दवुद्धि, लज्जाशील स्वभाव और संकोची वृत्ति के थे। सात वर्ष की आयु में सगाई और चौदह वर्ष की आयु में आपका विवाह होगया। इसलिए प्रारम्भिक जीवन वहुत आसक्ति में वीतने लगा। हाईस्कूल में दिमाग़ कुछ खुला और पढ़ाई में रुचि पैदा हुई। माता-पिता में भक्ति और सत्य में निष्ठा होने से युवावस्था में कुसंगति में पड़कर मांस, वीड़ी और अनैतिकता की ओर झुकने के वाद भी आप जल्दी सम्हल गये। १८८५ में पिता का भगन्दर की वीमारी से देहावसान हुआ और आपको पहली सन्तान हुई। वालविवाह का जो परिणाम होना था, वही हुआ। सन्तान दो-चार दिन से अधिक जीवित नहीं रही। वैष्णव सम्प्रदायी होने पर भी घर में राम-नाम की वहुत महिमा थी। आपकी भी राम-नाम और रामायण में श्रद्धा पैदा होगई। १८८७ में मैट्रिक पास करके आप भावनगर-कालेज में भरती हुए। मांस, मदिरा तथा स्त्री-संग से दूर रहने का वचन देकर और माताजी तथा वड़े भाई से वहुत कठिनाई से अनुमति प्राप्त करके जातिव-हिष्कृत हो आप ४ सितम्वर १८८८ को वैरिस्टरी पढ़ने के लिए विलायत गये। वहाँ माताजी के साथ की हुई प्रतिज्ञा को आपने पूरी सचाई के साथ निवाहा। वड़ी सादगी और कम ख़र्च में वहाँ गुज़ारा किया। भोजन-सम्वन्धी कई ग्रन्थ पढ़ने से निरामिष भोजन में आपका विश्वास दृढ़ होगया और उसके प्रचार के लिए आपने वहाँ एक संस्था भी वनाई। गीता के स्वाध्याय से जीवन में सात्विक भावों का उदय हुआ। वाइवल, वुद्ध-चरित्र और थियोसोफ़िस्ट साहित्य का आपने अनुशीलन किया। सात्विक भावों के साथ-साथ आस्तिकता

पैदा हुई। ईश्वर, सत्य, अहिंसा, प्रेम और त्याग में आपकी निष्ठा दृढ़ होती गई। इसीसे नैतिक पतन की खाई के किनारे पहुँचकर भी आप उसमें गिरने से बचते रहे और यत्नपूर्वक जीवन की उस साधना में लगे रहे, जिसने आज आपको 'महात्मा' पद के उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया है। १० जून १८९१ को बैरिस्टरी पास करके १२ जून को स्वदेश के लिए चल दिये। बम्बई पहुँचने पर डा० मेहता ने अपने बड़े भाई के दामाद रायचन्दभाई से आपका परिचय कराया। रस्किन और टालसटाय के ग्रन्थों और रायचन्दभाई की संगति से आपका काया-पलट होगया। आस्तिकता और सात्विकता के भाव आध्यात्मिकता के रंग में रंग गये।

पहली चोट

एक असफल वकील के रूप में आपने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। बम्बई में ५–६ मास रहने के बाद भी आप अपने धन्धे में सफल नहीं हुए। अदालत में जाते तो सब कुछ भूल जाते, पैरवी करने खड़े होते तो हाथ-पैर काँपने लगते थे। निराश होकर राजकोट आगये और वहाँ अर्ज़ियाँ-दावे लिखकर कुछ काम चलाने लगे। बड़े भाई पोरबन्दर के राणा साहब के सलाहकार और मन्त्री थे। अपनी योग्यता के बल पर नहीं, बल्कि भाई के प्रभाव की वजह से २०० रु० महीने तक की आमदनी होने लगी। काले-गोरे के भेद-भाव की, अंग्रेज़ों के दो-रंगे व्यवहार की, पहली चोट कुछ ऐसी लगी कि काठियावाड़ से मन ऊब गया। पोलिटिकल एजेण्ट के साथ विलायत का परिचय निकालकर बड़े भाई की सिफ़ारिश के लिए आप उससे मिलने गये। उसने आपकी पूरी बात सुने बिना ही चपरासी से आपको बाहर निकलवा दिया। इसलिए मन और भी उद्विग्न होगया। किसी नौकरी की तलाश में थे कि पोरबन्दर

की एक मेमन फर्म के ४० हज़ार पौण्ड के दावे की देख-रेख करने के लिए आपको अफ़्रिका जाने का सन्देश मिला। फ़र्स्ट क्लास का किराया, मुफ्त रहन-सहन तथा भोजन और १०५ पौण्ड मेहनताना तय हुआ और आप १८९३ में अफ्रिका के लिए विदा होगये।

अफ्रिका में

अफ़्रिका में पहले ही दिन अदालत में जाने पर उस आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ समझना चाहिए, जिसने बाद में इतना प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। अदालत में आपको पगड़ी उतारने के लिए कहा गया। आप उठकर चले आये और अखबारों में आपने आन्दोलन शुरू किया। मुक़दमे के काम के लिए आप प्रिटोरिया गये, तो रास्ते में वैसी ही कई घटनायें घट गईं। आप पहले दर्जे में यात्रा कर रहे थे। रात को नौ बजे मेरीत्सवर्ग पर ट्रेन पहुँची, तो आपको उस डिब्बे में से उतरकर अन्तिम डिब्बे में बैठने के लिए कहा गया। जब आप उसके लिए तैयार न हुए, तब एक सिपाही ने आपको हाथ पकड़कर नीचे धकेल दिया और आपका सामान भी बाहर फेंक दिया। केवल एक हैंडबेग लेकर आप वेटिंग-रूम में आगये और रात-भर बिना सामान के सर्दी में ठिठुरते रहे। दूसरे दिन जनरल मैनेजर तथा अपने आफ़िस को तार दिया और हिन्दुस्तानियों के साथ होनेवाले अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन करने का निश्चय कर आपने दूसरी गाड़ी से आगे जाने का विचार पक्का किया। चार्ल्सटाउन से जोहान्सबर्ग घोड़ागाड़ी पर जाना था। वहाँ भी आपको गोरों के साथ न बिठा पीछे बैठाया गया। रास्ते में एक और घटना घटी। एक गोरे ने आपको वहाँ से हटाकर पैर रखने की जगह पर बैठने को कहा। जब आप तैयार न हुए, तो आपको उसने पीटना शुरू किया। जोहान्सबर्ग पहुँचकर आप एक होटल में गये, पर आपको वहाँ भी जगह

न मिली। जोहान्सवर्ग से आगे जानेवाले किसी हिन्दुस्तानी को पहले दर्जे का टिकट नहीं मिलता था। रेल के क़ायदे-क़ानून में वैसा कोई उल्लेख न देख, आपने स्टेशन-मास्टर से पहले दर्जे का टिकट माँगा। 'यदि रास्ते में गार्ड उतार दे तो कम्पनी पर दावा नहीं करेंगे'—इस शर्त पर स्टेशन-मास्टर ने आपको टिकट दिया। पर, गाड़ी में वैठने के कुछ ही समय वाद गार्ड ने वहाँसे उतरकर तीसरे दर्जे में जाने के लिए आपपर ज़ोर डाला। साथ में वैठे हुए गोरे ने जव गार्ड का प्रतिवाद किया, तो वह यह कहकर चला गया कि 'कुली के साथ वैठना है तो वैठो, मेरा क्या है?' रात को आप प्रिटोरिया पहुँच गये।

आप-वीती जग-वीती

आप-वीती इन घटनाओं के अनुभव के साथ-साथ आप रास्ते-भर अपने देशवासियों से ऐसे ही व्यवहार की शिकायतें सुनते आये। इसलिए प्रिटोरिया में एक मण्डल की स्थापना करके इस अन्यायपूर्ण भेदभाव के विरुद्ध आन्दोलन करने का सूत्रपात किया। ट्रान्सवाल में यह अन्याय चरमसीमा को पहुँच चुका था। मताधिकार से भारतीय वंचित थे, सड़क की पगडण्डी पर वे चल नहीं सकते थे, रात को ९ वजे के वाद विना परवाने के वे घर से वाहर नहीं निकल सकते थे, ज़मीन की मालिकी पाने का उन्हें अधिकार न था और तीन पौण्ड दिये विना वहाँ प्रवेश तक निषिद्ध था। अन्य राज्यों में भी कुछ कम-अधिक ऐसे ही अन्यायपूर्ण नियम तथा क़ानून वने हुए थे। उनके विरुद्ध आन्दोलन करने की भावना आपके हृदय में दिन-पर-दिन दृढ़ होरही थी। जिस मुक़दमे के लिए आप अफ्रिका आये थे, उसमें दोनों पक्षों में समझौता कराकर जव आप स्वदेश लौटने लगे, तव आपकी विदाई में एक भोज का आयोजन किया गया। आपने उस समय आन्दोलन की चर्चा की और

वह भोज परामर्श-सभा में परिणत होगया। हिन्दुस्तानियों से मताधिकार छीन लेने का बिल भी उन्हीं दिनों धारा-सभा में पेश हुआ था। उसपर विचार हुआ। तार दिये गये, मेमोरियल भेजे गये और समाचारपत्रों में चर्चा की गई। बिल तो पास होगया, किन्तु हिन्दुस्तानियों में कुछ चेतना, जागृति, संगठन और आत्मविश्वास के भाव पैदा होगये। आपको इसीलिए वहाँ कुछ अधिक रुक जाना पड़ा। बिल के विरोध में आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा। उपनिवेश-मन्त्री लार्ड रिपन के पास भेजे गये मेमोरियल की प्रतियाँ भारतीय नेताओं व समाचारपत्रों के पास और विलायत भी भेजी गई। उस आन्दोलन में प्राप्त हुई सफलता से आशान्वित हो लोगों ने आपसे वहीं रुक जाने का आग्रह किया और खर्च का भी सब प्रबन्ध कर दिया। वकालत से अपना खर्च पूरा करने का विचार करके आपने स्वदेश आना कुछ समय के लिए मुल्तवी कर दिया।

वकालत का धन्धा तो जीवन-निर्वाह का साधन था, किन्तु वास्तविक कार्य था रंगभेद के विरुद्ध आन्दोलन करना। १८९४ में 'नेटाल इण्डियन काँग्रेस' की स्थापना की गई। दो ट्रेक्ट आपने लिखे। पारस्परिक सहानुभूति और सहयोग के भाव भारतीयों में पैदा होने लगे। सुशिक्षित, व्यापारी और उच्च श्रेणी के लोगों के समान ग़रीब, अशिक्षित और कुलीगीरी करनेवालों में भी लोकप्रिय होने में आपको अधिक समय नहीं लगा। वालासुन्दरम् नाम के कुली को उसके गोरे मालिक ने बुरी तरह पीटा। उसपर आपने दावा दायर किया और उससे उसको छुट्टी दिलाई। बस, फिर क्या था, आपके दफ्तर में उन लोगों की भीड़ रहने लगी। १८९४ में नेटाल-सरकार ने कुलीगीरी करनेवाले भारतीयों पर भी २५ पौण्ड का सालाना कर लगाने का बिल तैयार किया। काँग्रेस की ओर से आन्दोलन होने पर भारत-सरकार ने उसको ३ पौण्ड करा

दिया। उसीके विरुद्ध शुरू किया गया आन्दोलन आगे चलकर दक्षिण-अफ्रिका के सत्याग्रह में परिणत होजाता है।

भारत में और फिर अफ्रिका में

परिवार को अफ्रिका लिवा लाने और उस विल के विरुद्ध भारत में आन्दोलन करने के विचार से आप १८९६ में भारत आये। आपके आने का परिणाम वहुत अच्छा हुआ। समाचारपत्रों में चर्चा हुई और आपकी लिखी हुई 'हरी पुस्तक' की वीस हजार प्रतियाँ चारों ओर वाँटी गईं। पायोनियर, स्टेट्समैन, इंगलिशमैन और मदरास स्टैण्डर्ड आदि में आपके आन्दोलन का समर्थन किया गया। वम्वई, पूना, मदरास और कलकत्ता का आपने दौरा किया। जगह-जगह सार्वजनिक सभायें हुईं। डरवन से ज़रूरी तार आने पर आप दिसम्वर १८९६ में परिवार के साथ अफ्रिका लौट गये। डरवन में वहुत दिनों तक यात्रियों को जहाज़ पर रोक रक्खा गया। भारत में आपने जो आन्दोलन किया था, उसपर गोरे वुरी तरह विगड़े हुए थे। उनकी यह माँग थी कि ८०० भारतीयों सहित उस जहाज़ को भारत लौटा देना चाहिए। वे उसका खर्च देने को भी तैयार थे। गोरे इतने आवेश में थे कि उन्होंने आपपर हमला करने की भी तैयारी की हुई थी। इसलिए आपको चुपके से शाम के समय जहाज़ से उतारा गया। फिर भी रास्ते में उद्दण्ड गोरों ने आपको घेर लिया। उन्होंने आपपर कंकड़-पत्थर और डंडे वरसाये, आपकी पगड़ी गिरा दी और घूंसों-लातों-थप्पड़ों से आपको पीटना शुरू किया। पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट की पत्नी और पुलिस के आजाने से आपकी जान वची। आपको रुस्तमजी के वंगले पर पहुँचाया गया। उद्दण्ड गोरों ने वंगले को भी आ घेरा। पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट वेश वदलकर आपको वहाँसे थाने ले गये। आपपर हमला करनेवाले गोरों पर मुक़दमा चलाने की चर्चा हुई, तव आपने वैसा करने या कराने से

इनकार कर दिया। उस घटना की समाचारपत्रों में वहुत चर्चा हुई।

भारतीयों के व्यापार और नेटाल आने-जाने में अड़चन पैदा करनेवाले दो विल धारा-सभा में और पेश हुए। उनके विरुद्ध भी आपने आन्दोलन किया, किन्तु विल पास हो ही गये।

सन् १८९७ से ९९ तक हुए वोअर-युद्ध के समय आपने घायलों की सेवा-सुश्रूषा के लिए ११०० स्वयंसेवकों को तैयार किया और जान को जोखम में डालकर उन स्वयंसेवकों ने युद्ध के मैदान में सेवा का कार्य किया। डरवन में प्लेग होने पर आपने भारतीयों के सेवा-भाव का उत्कृष्ट परिचय दिया। भारत में दुर्भिक्ष पड़ने पर अफ्रिका से चन्दा जमा करके आपने वहुत वड़ी रक़म भेजी। १९०१ में आप भारत लौट आये। विदायगी में आपको वहुत कीमती हीरे-जवाहरात और सोना-चाँदी का सामान मिला, जिसके लिए ट्रस्ट वनाकर वह सव कुछ सार्वजनिक कार्यों के लिए दे दिया। आते हुए मार्ग में आप मारिशस में ठहरे। उस वर्ष कलकत्ता में काँग्रेस का अधिवेशन था। वहाँ आपने अपना परिचय दिये विना क्लर्क और स्वयंसेवक का छोटे-से-छोटा काम करने में भी संकोच नहीं किया। वहीं श्री गोखले के साथ आपकी घनिष्ठता क़ायम हुई। दक्षिण-अफ्रिका के भारतीयों के सम्वन्ध में काँग्रेस में एक प्रस्ताव आपकी प्रेरणा से स्वीकृत हुआ। एक मास तक आप कलकत्ता रहे। वीच में वर्मा भी हो आये। काशी में एनी वेसेण्ट से मिलते हुए राजकोट आगये। राजकोट से वम्वई आकर कानूनी धन्धा शुरू किया।

वम्वई आये कुछ अधिक समय नहीं हुआ था कि चैम्वरलेन के अफ्रिका पहुँचने का समाचार मिलने पर फिर आप एकाएक अफ्रिका चल दिये और १ जनवरी १९०३ को प्रिटोरिया पहुँच गये। चैम्वरलेन से भारतीयों की ओर से मिलनेवाले डेपूटेशन में गोरों के विरोध के कारण आप शामिल

नहीं हुए। पर, वहाँ ठहरने की आवश्यकता अनुभव करके आप वहीं रुक गये। उसी वर्ष वहाँ 'ट्रांसवाल ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन' क़ायम किया गया। 'इण्डियन ओपीनियन' नाम का पत्र भी शुरू किया गया, जिसका सब भार आप ही पर आ पड़ा। १९०४ में जोहान्सबर्ग में प्लेग फ़ैलने पर म्यूनिसिपैलिटी ने बार-बार आन्दोलन करने पर भी भारतीयों के मुहल्ले की ओर ध्यान नहीं दिया। तब आपने अपने कुछ साथियों के साथ अपनेको सेवा के कार्य में लगा दिया। १९०६ में जुलू-संघर्ष में भी आपने सेवा का सराहनीय कार्य किया था।

सार्वजनिक सेवा के साथ धन्धे का काम भी उन्नति पर था। सेवा और त्याग की वृत्ति भी उन्नति पर थी। सचाई, ईमानदारी और सेवा से आपको कुछ गोरे स्नेही भी मिल गये। आपके आफिस में टाइपिंग का काम करनेवाली मिस डिक का विवाह तक आपने करवाया। मिस इलेशिना भी आपके आफिस में काम करती थीं। उसपर आपके जीवन का इतना गहरा असर पड़ा कि सत्याग्रह में जेल जाने पर इस अकेली ने आपका सब काम सम्हाला। मि० हेनरी पोलक भी आपको उन्हीं दिनों मिले थे। फिनिक्स में पीछे जो आश्रम खोला गया, उसकी नींव उन्हीं दिनों में डाली गई थी। १०० एकड़ ज़मीन लेकर प्रेस और पत्र का काम वहींसे ही किया जाने लगा। जीवन में सात्विक भाव कुछ ऐसे उग्र हो उठे कि आपने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत लेलिया। जिस असाधारण उत्कर्ष पर इस समय पहुँचे हुए हैं, उसके प्रारम्भ का आभास आपके उन दिनों के कार्य में प्रायः सर्वत्र दीख पड़ता है।

सत्याग्रह का सूत्रपात

१९०६ में जुलू-संघर्ष समाप्त होते-न-होते 'ड्राफ्ट एशियाटिक ला एमेण्डमेण्ट बिल' ट्रांसवाल-सरकार ने कौंसिल में पेश किया। उसका

आशय यह था कि ट्रांसवाल में रहने की इच्छा करनेवाले भारतीय स्त्री-पुरुष, वाल-वृद्ध, सभीको परवाना लेना होगा, जिसके लिए उसको दोनों हाथों की सब अंगुलियों और अंगूठों के निशान देने होंगे, उसके शरीर के चिन्ह नोट किये जायँगे और सदा यह परवाना अपने साथ रखना होगा। इससे अधिक भयानक अपमान और क्या होसकता था? ट्रांसवाल में सभा हुई। इस विल का विरोध करके पास हो जाने पर उसको न मानने और अवज्ञा के परिणाम-स्वरूप सब दुःख झेलने की प्रतिज्ञा ईश्वर को साक्षी रखकर की गई। चारों ओर आन्दोलन की आग सुलग उठी। स्त्रियों से सम्बन्ध रखनेवाली धाराओं को घटाकर शेष विल स्वीकृत होगया, पर सम्राट् की स्वीकृति के बिना वह विल अमल में नहीं आ सकता था। इसलिए हाजी वजीरअली के साथ आपको विलायत भेजा गया। दादाभाई आदि के साथ मिलकर आपने छः सप्ताह वहाँ खूब आन्दोलन किया। पार्लमेण्ट के सदस्यों और अधिकारियों से मिले। विल के स्वीकृत न होने की आशा देख आप लौट आये। साम्राज्य-सरकार ने ट्रांसवाल को १९०७ की पहली जनवरी को स्वायत्त-शासन देकर अपना पिंड छुड़ाया और भारतीयों की किस्मत को उनके हाथों में सौंप दिया, जो उनके प्रति अन्याय करने पर तुले हुए थे। अर्ज़ी, विरोध, प्रतिवाद सब व्यर्थ हुए। परवाना लेने का दिन १ अगस्त १९०७ नियत किया गया। 'निष्क्रिय-प्रतिरोध-संघ' की स्थापना पहले ही होचुकी थी। पहली अगस्त को एशियाटिक आफ़िस परवाना लेने के लिए खोले गये। स्वयंसेवकों ने उन सब पर धरना दिया। परिणाम यह हुआ कि बहुत कम लोगों ने परवाने लिये। रात को लुक-छिपकर सरकारी अफसर लोगों के घरों और दफ्तरों पर जाकर परवाने देने लगे। पर, स्वयंसेवक बहुत सावधान थे। परवाना लेनेवालों की संख्या ५०० से ऊपर नहीं गई। गिरफ्तारियाँ शुरू हुईं।

सबसे पहले रामसुन्दर गिरफ्तार किये गये। दिसम्बर में आप भी अपने कुछ साथियों के साथ क़ैद कर लिये गये। दो-दो मास की सजा हुई। एक ओर दमन बढ़ता था और दूसरी ओर आन्दोलन। अन्त में समझौता हुआ। जेल से आपको जनरल स्मट्स के पास ले जाया गया। परवाना-सम्बन्धी क़ानून रद्द करके उसको भारतीयों की इच्छा पर छोड़ देना तय हुआ। आप उसी समय रिहा किये गये। जोहान्सवर्ग पहुँचकर आपने अपने साथियों के साथ परामर्श किया। प्रायः सभीने उसको स्वीकार किया। सब रिहा कर दिये गये और आन्दोलन बन्द कर दिया गया।

विरोधियों ने अनपढ़ पठानों को उकसा दिया कि गाँधीजी सरकार के साथ मिल गये हैं। १० फरवरी १९०८ को जब स्वेच्छा से परवाना लेने के लिए जाने लगे, तो उत्तेजित पठानों ने आपपर आक्रमण कर दिया। आप बेहोश होकर गिर पड़े। पठान गिरफ्तार किये गये। आपने उनको छुड़वा दिया, किन्तु गोरों ने आन्दोलन किया कि न्याय का फैसला होना चाहिए, उसको गाँधीजी के हाथों का खिलौना नहीं बना देना चाहिए। पठानों को फिर क़ैद करके सज़ा दी गई। इसी प्रकार डरबन में भी पठानों ने आपपर आक्रमण करना चाहा। पर, आपको बचा लिया गया। वहाँसे आप फिनिक्स चले आये। जनरल स्मट्स ने अपना वायदा पूरा नहीं किया और क़ानून रद्द नहीं हुआ। आन्दोलन फिर अधिक उग्रता के साथ उठ खड़ा हुआ। नियत दिन पर सभा करके परवानों की होली जलाई गई। नये भारतीयों का आना बन्द करने के लिए उसी समय 'इमीग्रेंट्स रिस्ट्रिक्शन एक्ट' पास किया गया। उससे आन्दोलन में और तीव्रता पैदा होगई। गिरफ्तारियाँ हुई। आप भी गिरफ्तार हुए। छूटने पर आपने फिर समझौते का यत्न किया और आप इसी उद्देश से इंग्लैण्ड भी गये। वहाँ कुछ सफलता न मिलने से आन्दोलन को और जोरों के साथ

चलाना तय हुआ। आपका एक जर्मन साथी कैलेनबैक था। उसने जोहान्स-बर्ग के पास आपको १,१०० एकड़ भूमि दी। उस भूमि में टाल्सटाय-फार्म की स्थापना की गई और लोगों को सादगी, परिश्रम, स्वावलम्वन आदि की वहाँ शिक्षा दी जाने लगी। जूता गाँठने, टट्टी साफ़ करने और मकान बनाने तक का सब काम वहाँके ही निवासी करते थे। उन्हीं दिनों में श्री गोखले भारतीयों की स्थिति का अध्ययन करने के लिए अफ्रिका गये। आपको सरकार ने भारतीयों के प्रति अन्यायमूलक सब क़ानून रद्द करने का विश्वास दिलाया। पर, उस विश्वास को पूरा नहीं किया गया। भारत में भी जोरों का आन्दोलन हुआ और भारत-सरकार तक ने उसके साथ सहानुभूति प्रकट की, किन्तु अफ्रिका की यूनियन सरकार पर उसका कुछ भी असर नहीं पड़ा। अदालत का उन दिनों में एक फ़ैसला ऐसा हुआ, जिससे केवल ईसाई-धर्म के अनुसार हुए विवाहों को जायज़ माना गया और बाक़ी सब विवाह ग़ैरक़ानूनी ठहरा दिये गये। सरकार ने भी अदालत के उस फैसले को मान लिया। अपमान की यह अन्तिम सीमा थी। १३ सितम्बर १९१३ से फिर से सत्याग्रह शुरू करने का निश्चय हुआ। ट्रांसवाल की सीमा पारकर आन्दोलन की आग नैटाल में भी फैल गई। गाँधीजी ने २,०२७ पुरुषों, १२७ स्त्रियों और ५७ बच्चों के सत्याग्रही-दल के साथ बिना परवाना लिये ट्रांसवाल में प्रवेश करने के लिए ६ नवम्बर १९१३ को कूच किया। आपको यात्रा में गिरफ्तार किया गया, किन्तु अदालत ने छोड़ दिया। आप फिर अपने दल में आकर शामिल होगये। दो-एक दिन के बाद सारे दल के साथ आपको फिर क़ैद कर लिया गया। पोलक और कैलेनबैक भी गिरफ्तार किये गये। जेल में आप सबको कठोर यातनायें भोगनी पड़ीं। श्री गोखले ने भारत में दक्षिण-अफ्रिका के इस सत्याग्रह के लिए प्रचण्ड आन्दोलन किया। धन संग्रह

करके अफ्रिका भेजा गया। भारतीयों की आकांक्षाओं से सहानुभूति रखनेवाले एण्डरूज़ और पियरसन को भी आपने वहाँ भेजा। एण्डरूज़ के उद्योग से गाँधीजी और जनरल स्मट्स में फिर समझौता हुआ। तीन पौण्ड का क़ानून रद्द किया गया, भारतीय विवाहों को जायज़ माना गया, सत्याग्रही जेल से मुक्त किये गये और अन्य बातों के लिए लिखित आश्वासन दिया गया। आठ वर्ष बाद ३० जून १९१४ को आन्दोलन इस प्रकार सफल हुआ।

अफ्रिका से विदाई : भारत में आगमन

गोखले इंग्लैण्ड में बीमार पड़े थे। गाँधीजी का स्वास्थ्य भी गिर चुका था। गोखले से मिलने की आपकी प्रबल इच्छा थी और विश्राम की भी जरूरत थी। ६ अगस्त को आप इंग्लैण्ड पहुँचे। ४ अगस्त को यूरोप में महाभारत का शंखनाद होचुका था। युद्ध में घायलों की सेवा-सुश्रूषा करने के लिए आपने इंग्लैण्ड में पढ़नेवाले विद्यार्थियों का स्वयं-सेवक-दल संगठित किया। पसली के दर्द के कारण आपको शीघ्र भारत आजाना पड़ा। बम्बई और पूना में आपका खूब स्वागत हुआ। कुछ दिन आप गोखले के साथ रहे। फ़िनिक्स-आश्रम के आपके बहुत-से साथी और विद्यार्थी भी भारत लौट आये थे। वे पहले गुरुकुल काँगड़ी (हरिद्वार) में रहे, फिर शांति-निकेतन में। बाद में अहमदाबाद में मई १९१५ में आश्रम की स्थापना होने तक फिर गुरुकुल काँगड़ी में रहे। भारतीय नेताओं से मिलने और आश्रम के लिए उपयुक्त स्थान ढूँढने के विचार से आपने भारत का दौरा किया। दिल्ली में आचार्य रुद्र, गुरुकुल काँगड़ी में महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) और शांति-निकेतन में विश्वकवि रवीन्द्र से आप मिले।

पूना से राजकोट जाते हुए आप बम्बई के गवर्नर से वीरमगाँव की

जकात के बारे में मिले। बाद में तत्कालीन वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड से मिले। परिणाम यह हुआ कि जकात तुरन्त उठा दी गई। हरिद्वार के कुम्भ के मेले पर उसी वर्ष आप अपने कुछ साथियों के साथ यात्रियों की सेवा के लिए गये। आप जहाँ जाते थे, वहीं आपका अभूतपूर्व स्वागत होता था। हरिद्वार में भी शानदार स्वागत हुआ। गुरुकुल-काँगड़ी की ओर से दिये गये मान-पत्र में पहली बार आपके लिये 'महात्मा' शब्द का प्रयोग किया गया। तबसे आप अपने असली नाम की अपेक्षा 'महात्माजी' के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हैं।

चम्पारन में

भारत आने पर छोटी-बड़ी सब समस्यायें आपके सामने पेश होने लगीं। उन सभीको हल करने में आपको कल्पनातीत सफलता मिली। बिहार में नील की खेती करनेवाले गोरे किसानों पर भयानक अत्याचार करते थे। वहाँ 'तीन कटिया' की ऐसी प्रथा थी कि किसान अपनी जमीन के तीन बटा बीस हिस्से में अपने मालिक के लिए नील की खेती करने को बाध्य था। पटना होते हुए आप १५ अप्रैल १९१७ को मुज़फ्फपुर पहुँचे। वहाँसे चम्पारन गये। ज़िला मजिस्ट्रेट ने चौबीस घंटे में जिला छोड़ देने का हुक्म दिया। हुक्म न मानने पर आप गिरफ्तार किये गये। मुकदमा चला, पर केन्द्रीय सरकार के आदेश पर मुकदमा उठा लिया गया और आपको अपना कार्य करने की सुविधा दी गई। गाँव-गाँव घूमकर आपने ७,००० किसानों के बयान लिये और परिस्थिति का अध्ययन किया। बम्बई से कार्यकर्ताओं को बुलाकर गाँवों में शिक्षा, सफ़ाई, दवा-दारू आदि से सेवा-सुश्रूषा का काम करना शुरू किया। गवर्नर सर एडवर्ड गेट से मिले। सर फ्रेंक स्लाई की अध्यक्षता में जाँच-कमेटी नियुक्त हुई। आप भी उसके सदस्य थे। कमेटी की

सर्वसम्मत सिफारिश पर 'तीन कटिया' की प्रथा वन्द हुई और गोरों के अन्यायों तथा अत्याचारों से किसानों को मुक्ति मिली। फल-स्वरूप किसानों में अपूर्व जागृति पैदा होगई। विहार-सरकार के अनुरोध पर आप वहाँ कुछ दिन और रहे। विहार में तभीसे आपका कुछ ऐसा प्रभाव जम गया कि विहार 'गाँधीजी का प्रान्त' कहा जाने लग गया। विहार से जव आप लौटे तव स्टेशनों पर ३०-३०, ४०-४० हज़ार आदमी आपके दर्शनों के लिए इकट्ठे होते थे।

अहमदावाद में उपवास

चम्पारन में ही मजूर-संघ की ओर से आपको अहमदावाद आकर मजूरों की शिकायतों को दूर करने का निमन्त्रण मिल गया था। अहमदावाद पहुँचकर जाँच करने पर मजूरों का पक्ष आपको ठीक जँचा। जव मिल-मालिक पंचों द्वारा झगड़ा निपटाने को तय्यार न हुए, तव मजूरों को अहिंसात्मक रहकर हड़ताल करने के लिए तय्यार किया गया। सरदार वल्लभभाई और श्री शंकरलाल वैंकर से आपका उन दिनों में ही परिचय हुआ। मजूरों के अहिंसात्मक न रहने के कारण आपको उपवास करना पड़ा। हड़ताल के २१ वें दिन श्री आनन्दशंकर ध्रुव को पंच मान लिया गया। समझौता होकर हड़ताल समाप्त हो गई। उसी वर्ष कोचव में प्लेग फैलने से सत्याग्रह-आश्रम को सावरमती (अहमदावाद) ले आया गया।

खेड़ा-सत्याग्रह

अहमदावाद के मज़दूरों के काम से निपटे भी न थे कि खेड़ा के किसानों की पुकार कानों पर पड़ी। खेड़ा में सव फसल नष्ट होगई थी। क़ानून यह था कि चार आना से कम फसल होने पर लगान माफ़ कर दिया जायगा। सरकार यह मानती न थी कि फसल चार आना से कम

हुई है। प्रतिनिधि-मण्डल, कौंसिल-आन्दोलन, अर्ज़ी-तार, आरज़ू-मिन्नत किसीपर भी सरकार ने ध्यान न दिया। तब सत्याग्रह के अन्तिम साधन को काम में लाने की आपने सलाह दी। सत्याग्रह के प्रतिज्ञा-पत्र भरवाये गये। सरकार दमन पर तुल गई और घर का माल, पशु, फसल आदि की नीलामी के साथ गिरफ्तारियों का क्रम भी शुरू हुआ। आन्दोलन दावानल की तरह फैलता चला गया। अंत में सरकार को घुटने टेकने पड़े। समर्थ लोगों के अलावा ग़रीबों का लगान माफ़ कर दिया गया। गुजरात के किसानों में जीवन पैदा हुआ। आपकी शक्ति का देशवासियों को एक और प्रबल प्रमाण मिल गया।

यूरोप का महाभारत

सत्याग्रह-युद्ध की ऐसी प्रवृत्ति होते हुए भी आपके स्वभाव में राजनैतिक उग्रता नहीं थी। सरकार के न्याय-परायण होने में आपका विश्वास था। आजकल की भाषा में आपके उस समय के जीवन को 'राजभक्त' भी कहा जा सकता है। इसलिए यूरोप के महायुद्ध में आपने शुद्ध अन्तःकरण से सरकार की सहायता करने का निश्चय किया। लोकमान्य तिलक सहायता करने से पहले सरकार से भारत की राजनैतिक माँग को पूरा करने का वायदा करा लेना चाहते थे। आप वैसा वायदा लेने के पक्ष में नहीं थे। लार्ड चेम्सफोर्ड ने दिल्ली में सरकार की सहायता करने के सम्बन्ध में एक परामर्श-सभा का आयोजन किया। लोकमान्य तिलक और अली-बन्धुओं को उसमें न बुलाकर आपको बुलाया गया। उसका प्रतिवाद और भारतीय मुसलमानों की खिलाफत-सम्बन्धी शिकायतों तथा भारतीयों की राजनैतिक आकांक्षाओं का उल्लेख करते हुए आपने वाइसराय को एक पत्र लिखा और उस सभा में सम्मिलित हुए। सत्याग्रह के लिए अफ्रिका, चम्पारन, अहमदाबाद और खेड़ा में आपने

जिस लगन, निष्ठा और तत्परता से काम किया था वैसे ही उन दिनों में सरकार की सहायता के लिए किया। काम का अधिक बोझ निर्वल देह सम्हाल न सका। पेट-दर्द के और संग्रहणी ने आ दवाया। प्राकृतिक चिकित्सा पर इतना दृढ़ विश्वास था कि जीवन के अत्यन्त संकटापन्न और निराशापूर्ण होने पर भी आपने दवा नहीं ली। वर्फ़ का इलाज कराते रहे।

यद्यपि उग्र राजनीतिज्ञ आपकी इस सरकारी सहायता एवं सेवा से वहुत अधिक असंतुष्ट थे, तो भी आपके व्यक्तित्व की गहरी छाप उनके हृदयों पर लगती जा रही थी। आम जनता भी आपकी ओर आकर्षित हो चुकी थी। गुजरात-सभा के आप सभापति वनाये गये। १९१७ में माण्टफोर्ड-सुधार-योजना के लिए भारत-मंत्री माण्टेगू के भारत आने पर दिल्ली में आपके प्रस्ताव पर उनको हज़ारों भारतीयों के हस्ताक्षरों से एक आवेदन-पत्र दिया गया, जिसमें भारतीयों की राजनैतिक आकांक्षाओं और माँगों का उल्लेख किया गया था। उसी वर्ष १७ सितम्वर को वाम्वे कोआपरेटिव-कांफ्रेंस, ३ नवम्वर को गुजरात राजनैतिक सम्मेलन, गुजरात-शिक्षा-परिषद् और दिसम्वर में कलकत्ता में काँग्रेस के साथ होनेवाले समाज-सुधार-सम्मेलन के भी आप सभापति वनाये गये।

काला कानून और सत्याग्रह

युद्ध में की गई सेवा और सहायता का पुरस्कार राजनैतिक अधिकारों के रूप में पाने की प्रतीक्षा में वैठे हुए भारतीयों की आशा पर रौलेट एक्ट वनाकर सरकार ने तुपारपात कर दिया। उसके विरुद्ध देश में प्रचण्ड आन्दोलन हुआ, सभायें हुईं, सरकार की आरजू-मिन्नत की गई, तार दिये गये, आवेदन-पत्र भेजे गये, व्यवस्थापिका-सभा के भारतीय-सदस्यों ने एकस्वर से उसका विरोध किया और सरकारी अधिकारियों

को सावधान किया। वैध आन्दोलन का कुछ भी परिणाम न निकलने पर आपने सत्याग्रह शुरू करने की घोषणा की। उस घोषणा ने सूखी घास के लिए चिनगारी का काम किया। सत्याग्रह का प्रतिज्ञा-पत्र २८ फरवरी १९१९ को प्रकाशित किया गया और आन्दोलन का संचालन करने के लिए वम्वई में केन्द्रीय सत्याग्रह-सभा की स्थापना की गई। आपने सारे देश में घूम-घूमकर लोगों को सत्याग्रह का मर्म समझाया। भारतीय सदस्यों ने व्यवस्थापिका-सभा से त्याग-पत्र दे दिये। ३० मार्च को, वाद में ६ अप्रैल को सत्याग्रह-दिवस मनाने की घोषणा की गई। हड़ताल, उपवास और सभा करना तय हुआ। केन्द्रीय-समिति नें जब्त राजनैतिक साहित्य वेचने का निश्चय किया। आपने विना डिक्लेरेशन लिये सत्याग्रह-पत्र निकाला। वम्वई, दिल्ली आदि स्थानों पर जनता के उत्साह की सीमा न थी। दिल्ली में ३० मार्च को ही पहली हड़ताल मनाई गई थी और उस दिन वहाँ गोली भी चल गई थी। पंजाव में ६ अप्रैल को दंगे होने पर सरकार की ओर से फौजी शासन की घोषणा कर दी गई। जलियांवाला का निर्दयतापूर्ण भयानक गोली-काण्ड या हत्या-काण्ड भी उसी दिन हुआ। उस विकट परिस्थिति के समाचार मिलने पर आप दिल्ली के लिए चल दिये। १० अप्रैल को आपको कोसी स्टेशन से वम्बई लौटा दिया गया और दिल्ली तथा पंजाव में आपका प्रवेश रोक दिया गया। सत्याग्रह के लिए आवश्यक एवं अनुकूल अहिंसात्मक वातावरण न रहने से १८ अप्रैल को साथियों के असहमत और असन्तुष्ट होने पर भी आपने सत्याग्रह स्थगित कर दिया।

पञ्जाव-काण्ड और असहयोग तथा सत्याग्रह

आप आन्दोलन स्थगित करने में लगे थे और सरकार पंजाब में फ़ौजी शासन की तह में भयानक दमन करने में लगी थी। १८५७ के स्वतन्त्रता-

युद्ध के-से भयानक विद्रोह की कल्पना कर सरकार ने उसको कुचलने में अपना सारा ज़ोर लगा दिया। स्थानीय शासनोन्मत्त गोरे फ़ौजी अधिकारियों ने कहीं-कहीं नीचता की पराकाष्ठा कर डाली। लोगों को पेट के बल चलाया गया, सड़कों पर टिकटी बाँधकर कोड़े लगाये गये। यूनियन जैक की सलामी जबरन कराई गई, स्त्रियों की भी कहीं-कहीं बेइज्ज़ती की गई, हवाई जहाज़ से बम गिराये गये और प्रायः सभी सम्पादकों तथा नेताओं को गिरफ्तार करके लम्बी-लम्बी सज़ायें दी गईं। ये सब समाचार पंजाब के बाहर न जायँ, इसलिए सब समाचार-पत्र और आने-जाने के सब साधन बन्द कर दिये गये। फ़ौजी शासन की उस गरमी में आकाश में पक्षियों तक का उड़ना संभव नहीं था। लुक-छिपकर भाग निकलनेवाले लोगों से वहाँके समाचार जानकर रोमाञ्च होआता था। जाँच करने की माँग सरकार ने बहरे कानों सुनी। काँग्रेस ने मोतीलालजी, देशबन्धु दास, अब्बास तय्यबजी, जयकर और आपकी एक जाँच-कमेटी नियुक्त की। उसके बाद सरकार ने भी हंटर-कमेटी नियुक्त की। दोनों कमेटियों की रिपोर्टों से अत्यन्त भायानक, रोमाञ्चकारी और कल्पनातीत अमानुष कृत्यों की कलई खुलने पर भी सरकार ने अपराधियों को कोई दण्ड नहीं दिया, वरन् गोरों ने उनका विशेष रूप से सम्मान किया। माण्टफोर्ड-सुधारों के अनुकूल वातावरण बनाने के लिए १९१९ की अमृतसर की कांग्रेस के ठीक पहले शाही घोषणा होकर बहुत-से राजबन्दियों को छोड़ दिया गया। आपने समझा कि सरकार का मन बदला है। अमृतसर-काँग्रेस में माण्टफोर्ड-सुधारों को लेकर लोकमान्य, देशबन्धु और आपमें बहुत गहरा मतभेद होगया। आप सुधारों को स्वीकार करने के पक्ष में थे। पर, घटनाचक्र बहुत-तेजी से घूम रहा था। मुसलमानों में खिलाफ़त को लेकर उत्तेजना फैल रही थी और देश में पंजाब-काण्ड को

लेकर असन्तोष पैदा हो रहा था। १९१९ के अन्तिम दिनों में जो गाँधीजी सरकार के साथ सहयोग करने के लिए तुले हुए थे, वही १९२० के ५-६ मास वीतते-न-वीतते ऐसे असहयोगी वन गये कि उन्होंने सारे ही राष्ट्र को असहयोग के रंग में रंग दिया। अलीभाइयों और आपके सहयोग से देश का सारा रंग एकदम वदल गया। पहली अगस्त को असहयोग-आन्दोलन के लिए सारे देश में हड़ताल मनाना तय हुआ। भारत के राजनैतिक अन्तरिक्ष में एक ओर पूर्णिमा का चाँद प्रकट हो रहा था और दूसरी ओर सूर्य अपनी किरणें समेटकर अस्ताचल की ओर जा रहा था। उसी दिन पहली अगस्त को बड़े सवेरे जब देशवासी असहयोग की हड़ताल मनाने की तैयारी कर रहे थे, एकाएक दारूण समाचार सुन पड़ा कि लोकमान्य चल वसे! हृदय-सम्राट् के रिक्त सिंहासन पर देशवासियों ने आपका अभिषेक किया। सितम्बर १९२० को कलकत्ता में लाला लाजपतराय के सभापतित्व में काँग्रेस का विशेष अधिवेशन होकर सारे देश ने आपके अहिंसात्मक-असहयोग के कार्य-क्रम को स्वीकार किया। रही-सही कमी नागपुर-काँग्रेस में दिसम्बर १९२० में पूरी हो गई। आपके नेतृत्व में देश ने स्वावलम्वन के नये मार्ग का अवलम्वन किया। काँग्रेस का सब ढाँचा वदल गया। नई नियमावली बनाकर राष्ट्रीय संगठन का काम नये सिरे से किया गया। सरकारी ख़िताव, वकालत, अदालत, कौंसिलें, स्कूल-कालेज और विदेशी वस्त्र आदि के वहिष्कार की चारों ओर धूम मच गई। सारे देश में तूफान पैदा होगया। आपके आदेश को पूरा करने में सारे देश ने एक व्यक्ति की तरह कार्य करके अद्भुत संगठन और अलौकिक कार्यक्षमता का विलक्षण परिचय दिया। सत्याग्रह शुरू करने के लिए तिलक-स्वराज्य-फण्ड में एक करोड़ रुपया जमा करने, काँग्रेस के एक करोड़ सभासद वनाने और २० लाख चरखे चालू कराने का कार्य-

क्रम नियत अवधि में पूरा होना असम्भव प्रतीत होरहा था; किन्तु जब वह पूरा हुआ, तब देश को अपनी शक्ति और शासकों को आपके प्रभाव का कुछ पता मिला। 'यंग इण्डिया' और 'नवजीवन' द्वारा आप अपना सन्देश चारों ओर पहुँचाते थे। चारों ओर घूम-घूमकर भी आपने जागृति पैदा की। १९२१ में अहमदावाद-काँग्रेस के दिनों में युवराज के आगमन के वहिष्कार के सिलसिले में गिरफ्तारियाँ जोरों पर थीं। उस सफल वहिष्कार से भी राष्ट्र में आत्मविश्वास की भावना जागृत हुई। युवराज के वम्बई आने पर वहाँ कुछ उपद्रव हो गया, जिसके लिए वतौर प्रायश्चित्त के आपने एक सप्ताह का उपवास किया। १४ जनवरी १९२२ को वम्बई में सरकार के साथ सुलह करने पर विचार करने को एक कान्फ्रेंस हुई। देशवन्धु दास और मौलाना अवुलकलाम आजाद जेल में थे। मालवीयजी ने मध्यस्थ होकर सन्धि के लिए उद्योग किया। चारों ओर तार खटखटाये गये। परिणाम कुछ न निकला। आपने वारडोली में सत्याग्रह शुरू करने की सरकार को सूचना दी। इस प्रकार वारडोली हिन्दुस्तान की थर्मापोली वनने की तैयारी में था कि गोरखपुर के जिले के चौरी-चौरा में उत्तेजित जनता ने पुलिस चौकी पर आक्रमण कर दिया। पुलिस के २२ आदमी मार डाले गये। आपको अनुभव हुआ कि देश में अभी वैसी अहिंसात्मक भावना नहीं पैदा हुई जैसी कि असहयोग तथा सामुदायिक सत्याग्रह के लिए आवश्यक है। उस दुर्घटना को आपने ईश्वरीय चेतावनी समझा और सत्याग्रह स्थगित कर दिया। दिल्ली में अखिल-भारतीय काँग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ। उसमें आपके कार्य का समर्थन किया गया, किन्तु आपकी वहुत तीव्र आलोचना भी की गई। उस निर्णय से देश में प्रतिक्रिया शुरू होते ही सरकार ने आपको गिरफ्तार करने का निश्चय कर लिया। कई वार गिरफ्तारी की अफ़वाहें भी उड़ीं और

कहीं-कहीं कई वार हड़ताल आदि भी हुई। अन्त में १० मार्च १९२२ को आप गिरफ्तार किये गये। 'यंग इण्डिया' के चार लेखों को आपत्तिजनक ठहराकर आपको राजद्रोह में ६ मास की सजा दी गई। गिरफ्तार होने से पहले आपने चरखा-संघ की नींव डाल दी थी। एक करोड़ रुपये का अधिकांश हिस्सा प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों के पास ही रक्खा गया था। अखिल-भारतीय-कोष में आनेवाली रक़म का बड़ा हिस्सा खादी के कार्य में लगा देना तय हुआ। चरखा-संघ और उसके द्वारा होनेवाली खादी का सब कार्य उसीका परिणाम है।

देश के राजनैतिक जीवन में हुई प्रतिक्रिया, उसके फल-स्वरूप हिन्दू-मुस्लिम-संघर्ष का सूत्रपात, स्वराज्य-दल का संगठन, आपके अनुयायियों द्वारा अपरिवर्तनवादी-दल का निर्माण और दोनों की पारस्परिक खींचतान के वर्णन का इतना सम्बन्ध इस जीवन के साथ नहीं, जितना कि कांग्रेस के इतिहास के साथ है।

आपरेशन और रिहाई

जनवरी १९२४ में जेल में आपका स्वास्थ्य बहुत विगड़ गया। अपेंडिसाइटिस की शिकायत हुई, जिसका सासून अस्पताल में कर्नल मैडक ने आपरेशन किया और उसके बाद आप रिहा कर दिये गये। बम्बई के उपनगर जुहू के समुद्रतट पर आपने स्वास्थ्य-सुधार के लिए कुछ समय विश्राम किया। बढ़ता हुआ हिन्दू-मुस्लिम-कलह भयानक रूप धारण कर रहा था। जगह-जगह उपद्रव, दंगे और लड़ाइयाँ होरही थीं। अगस्त १९२४ में दिल्ली में भी भयानक उपद्रव हुआ। हिन्दू-मुसलमानों में सुलह कराने के लिए आप दिल्ली दौड़े आये और यहाँ आकर आपने राष्ट्र के पाप के प्रायश्चित्त के लिए १६ सितम्बर से २१ दिन का उपवास किया। आपके इस निश्चय से देश काँप उठा।

दिल्ली में पण्डित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एकता-सम्मेलन का आयोजन किया गया। उस उपवास के लिए की गई आपकी घोषणा और उन दिनों में प्रकट किये गये आपके विचार मनन-योग्य हैं।

राष्ट्रपति

उसी वर्ष बेलगाँव में राष्ट्रीय महासभा (काँग्रेस) का अधिवेशन आपके सभापतित्व में हुआ और राष्ट्र की शक्ति तथा साधनों को खादी, अस्पृश्यता-निवारण, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य आदि के विधायक कार्यक्रम में लगा देने का निश्चय किया गया। आप और आपके अनुयायी सब ओर से अपना ध्यान हटाकर राष्ट्र-निर्माण के उस कार्य में जुट गये। पण्डित मोतीलाल नेहरू के उद्योग से एक कान्फ्रेंस होकर भारत के भावी शासन-विधान की रूप-रेखा तैयार की गई, जिसको राष्ट्रीय माँग के रूप में सरकार के सामने पेश करना १९२८ के कलकत्ता-अधिवेशन में तय हुआ। वही नेहरू-रिपोर्ट थी, युवक-दल उससे असन्तुष्ट था। आपके प्रयत्न से समझौता हुआ और सरकार को उस माँग पर विचार करने के लिए एक वर्ष का समय दिया गया। आपने विदेशी वस्त्र के बहिष्कार के आन्दोलन में अपनी सब शक्ति लगा दी। सारे देश का एक बार फिर दौरा किया। बर्मा जाते हुए आपके हाथों कलकत्ता में विदेशी वस्त्रों की प्रचण्ड होली जलाई गई। पुलिस ने उसपर आक्रमण किया। आप गिरफ्तार किये गये, मुक़दमा चला और आपपर एक रुपया जुर्माना किया गया। अदालत में ही किसी मित्र ने वह अदा कर दिया। इसको आपने बुरा माना।

देश में फिर से जागृति, जीवन और आन्दोलन पैदा होरहा था। माण्टफोर्ड-सुधार-योजना के अनुसार नवीन सुधारों के लिए जाँच-कमीशन बिठाने का समय होगया था। साइमन-कमीशन की सरकार की ओर से नियुक्ति हुई। उसमें किसी भी भारतीय के नियुक्त न किये जाने से

नरम-दली भी असन्तुष्ट थे। कांग्रेस के साथ उन्होंने भी उसका वहिष्कार किया। असन्तोष ने एक वार फिर उग्ररूप धारण किया। लाहौर-काँग्रेस में जाते हुए आप २३ दिसम्बर १९२९ को वाइसराय लार्ड अर्विन से मिले। मुलाक़ात का फल कुछ न हुआ। पं० जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में, लाहौर-काँग्रेस में, ३१ दिसम्वर की आधीरात को पूर्ण स्वतन्त्रता का घोषणा-पत्र पढ़ा गया। आप तव भी सरकार से सुलह करने को तैयार थे। आपने उस समय जो शर्तें पेश की थीं, उनमें कुछ निम्नलिखित थीं—मादक द्रव्य निषेध किया जाय, विनिमय की दर १ शिलिंग ४ पेंस की जाय, ज़मीन के लगान और फ़ौजी ख़र्च में ५० प्रतिशत कमी की जाय और नमक-कर उठा दिया जाय।

१९३० का प्रचण्ड आन्दोलन

१५ फ़रवरी १९३० को अहमदावाद में काँग्रेस की कार्य-समिति का अधिवेशन होकर आपको काँग्रेस का डिक्टेटर वना दिया गया। रेजिनाल्ड रेनाल्ड नाम के एक अंग्रेज़ के हाथ आपने वाइसराय को पत्र भेजकर सूचित किया कि यदि १० मार्च तक कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिला तो नमक-क़ानून के विरुद्ध सत्याग्रह शुरू कर दिया जायगा। वाइसराय का उत्तर इतना असन्तोषजनक था कि आपने लिखा कि "मैंने घुटने टेककर रोटी माँगी थी, पर मुझको पत्थर का टुकड़ा दिया गया है। अंग्रेज़ जाति केवल वल के आगे ही झुकना जानती है।" १२ मार्च को ७९ सत्याग्रहियों के साथ आपने डांडी की उस महायात्रा के लिए, भारत को स्वराज्य न मिलने तक आश्रम न लौटने की प्रतिज्ञा करके, प्रयाण कर दिया। इसको शासक ही नहीं, अधिकांश देशवासी भी निरर्थक समझते थे। पर, उस यात्रा ने देश की सूखी हड्डियों में जान फूँक दी। २१ मार्च को कार्य-समिति का एक और अधिवेशन होकर यह

घोपणा कर दी गई कि ६ अप्रैल को, और यदि गाँधीजी उससे पहले गिरफ्तार कर लिये जायँ तो उनकी गिरफ्तारी के दिन, सारा देश सत्याग्रह शुरू करदे। ६ अप्रैल को डांडी पहुँचकर आपके नमक-क़ानून की अवज्ञा करने के साथ ही सारे देश में चारों ओर आन्दोलन की प्रचण्ड अग्नि सुलग उठी। इससे आपको ५ मई को गिरफ्तार करके १८२७ के रेगूलेशन २५ के अनुसार यरवदा में नजरबन्द कर दिया गया। दमन और आन्दोलन में सुरसा और हनुमान की-सी होड़ होनी शुरू होगई। साधारण क़ानूनों से आन्दोलन को दबाना जब सम्भव नहीं रहा, तब ऑर्डिनेन्स बनाये गये और उनके बल पर शासन चलाने की कोशिश की गई। आन्दोलन का इतिहास एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का विपय है। स्त्रियों की इस आन्दोलन में जो जागृति हुई, वह एक अलौकिक चमत्कार था। परदे में भी, चूल्हे-चौके के अन्धकार में बाहर की दुनिया से बहुत दूर रहनेवाली, भारतीय नारी के साहस, धैर्य, हिम्मत और त्याग ने संसार को चकित कर दिया। ३० जुलाई को सप्रू-जयकर वाइसराय से मिले और २३ को गाँधीजी से। १३ अगस्त को श्री मोतीलालजी नेहरू और श्री जवाहरलालजी नेहरू को यरवदा-जेल ले जाया गया। देवी सरोजनी, नेहरु-द्वय, सप्रू-जयकर और आपकी वहाँ जेल में ही हुई कान्फ्रेंस का कुछ फल न निकला। ५ सितम्बर को सब पत्र-व्यवहार प्रकाशित करके सन्धि-चर्चा के भंग होने का समाचार भी प्रकाशित कर दिया गया। जनवरी में फिर सन्धि-चर्चा हुई। २६ जनवरी १९३१ को कार्य-समिति के ग़ैरक़ानूनी होने की आज्ञा लौटा ली गई और उसके सब सदस्य छोड़ दिये गये। ५ मार्च को समझौता होकर सत्याग्रह बन्द कर दिया गया। उस आन्दोलन में कोई एक लाख स्त्री-पुरुप जेल गये होंगे। वह समझौता स्पष्ट ही काँग्रेस की विजय का सूचक था। सरकार को नमक-

क़ानून के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें स्वीकार करनी पड़ीं। कराची में २८, २९ और ३० मार्च को काँग्रेस का अधिवेशन हुआ। गोलमेज-परिषद् के लिए आपको काँग्रेस का एकमात्र प्रतिनिधि चुना गया। अन्तिम समय तक आपका गोलमेज-परिषद् के लिए इंग्लैण्ड जाना सन्दिग्ध-सा रहा। गुजरात के किसानों की शिकायतों की जाँच को लेकर मामला तन रहा था। इसीके लिए आप वाइसराय से शिमला मिलने गये और वहाँसे सीधे २९ अगस्त को लन्दन के लिए विदा होगये। गोलमेज-परिषद् के अलावा इंग्लैण्ड में आपने और भी बहुत काम किया। मँचेस्टर आप विशेष रूप से गये। परिषद् में दिये गये आपके स्पष्ट भाषणों और आपके सात्विक जीवन का वहाँके लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा। लन्दन से फ़्रांस में रोम्याँरोलां और इटली में मुसोलिनी से मिलते हुए आप २८ दिसम्बर १९३१ को बम्बई पहुँचे।

फिर प्रचण्ड आन्दोलन

इंग्लैण्ड से आप निराश लौटे ही थे, पर यहाँकी परिस्थिति भी कुछ कम निराशापूर्ण नहीं थी। दिल्ली के समझौते का पालन न करने की सरकार से लोगों को शिकायत थी। सीमाप्रांत में खुदाई खिदमतगारों और संयुक्तप्रान्त में किसानों तथा उनके आन्दोलनों को कुचलने के लिए विशेष आर्डिनेन्स बनाकर पूरे वेग के साथ दमन का चक्र चलाया जा रहा था। आपके भारत में पहुँचने पर बम्बई में काँग्रेस की कार्य-समिति की विशेष बैठक उस समय की परिस्थिति पर विचार करने के लिए बुलाई गई थी। नेहरूजी और श्री शेरवानी को बम्बई जाते हुए इलाहाबाद के पास ट्रेन में ही गिरफ्तार कर लिया गया। कार्य-समिति की सलाह लेकर २९ दिसम्बर को वाइसराय को मिलकर परामर्श करने के बारे में आपने तार दिया। सरकार की ओर से वाइसराय और काँग्रेस की ओर से गान्धीजी

में परस्पर छः दिनों तक जो तार-व्यवहार हुआ, वह महत्वपूर्ण है। आपकी मुलाक़ात करने तक की माँग स्वीकार न की गई। उन तारों में वाइसराय की ओर से जो धमकी दी गई थी, उससे स्पष्ट था कि सरकार ने आन्दोलन प्रारम्भ होने से पहले ही काँग्रेस को कुचल देने की पूरी तैयारी कर ली थी। इसलिए कार्य-समिति ने एक लम्बा प्रस्ताव पास करके देश का सार्वजनिक और चहुँमुखी सत्याग्रह शुरू करने के लिए आह्वान किया। लगानबन्दी को भी उसमें शामिल किया गया। अब की बार आन्दोलन सरकार के दमन के साथ शुरू हुआ था। ४ जनवरी १९३२ की रात को चार आर्डिनेन्स जारी किये गये, बाकी के भी मसविदे तैयार करके रख लिये गये और ५ तारीख की रात में चारों ओर धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ, ज़ब्तियाँ, ज़मानतें और नजरबन्दियाँ शुरू कर दी गईं। ४ जनवरी को बड़े सवेरे आपको और सरदार पटेल को शाही कैदी बनाकर यरवदा पहुँचा दिया गया। १९३० में आन्दोलन के अन्तिम दिनों में लाठियों से काम लिया गया था, इस बार पहले ही दिन से भयानक लाठी-वर्षा शुरू की गई। भेड़-बकरियों से भी अधिक बुरी तरह सत्याग्रहियों को पीटना शुरू किया गया। उन्हें गिरफ्तार न करके, घायल कर, सड़कों पर बिछा दिया जाता था। राष्ट्र ने अपूर्व साहस, अनुपम त्याग, असीम कष्ट-सहन और अलौकिक धैर्य का अद्भुत परिचय दिया। जिस आन्दोलन को शुरू में ही दबा देने का सरकार निश्चय किये हुए थी, उसको आर्डिनेन्सों की अवधि पूरी हो जाने के बाद भी दबाया न जा सका। इसलिए उनको क़ानून में परिणत कर दमन को शासन का स्थिर आधार बना लिया गया। १९३२ में दिल्ली में और १९३३ में कलकत्ता में काँग्रेस के अधिवेशन सरकारी हुक्मों की अवज्ञा करके किये गये।

हरिजन-आन्दोलन

लन्दन की गोल-मेज-परिषद् में ही आप यह समझ गये थे कि दलित कही जानेवाली जातियों को हिन्दुओं से पृथक् निर्वाचन के अधिकार देकर हिन्दुओं में फूट पैदा करके राष्ट्र को कमजोर बनाने की चाल चली जा रही है। वहीं आपने उसका विरोध किया था और प्राणों की बाजी लगाकर उसको विफल बनाने का निश्चय भी प्रकट कर दिया था। जेल से ११ मार्च १९३२ को सर सैम्यूएल होर को आपने इस आशय का एक पत्र भी लिखा था। उस सूचना को अनसुना कर ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने अपनी कूटनीति से काम लेना चाहा और साम्प्रदायिक निर्णय में हिन्दुओं से दलित जातियों को अलग करके उन्हें विशेषाधिकार दे दिये। १८ अगस्त को आपने प्रधान-मंत्री को उसके विरोध में २१ सितम्बर से आमरण उपवास करने की सूचना दी। नियत दिन पर उपवास शुरू हो-गया। उसी समय वह पत्र-व्यवहार प्रकाशित किया गया। सारे देश में एकाएक सन्नाटा छा गया, फिर आपके प्राणों की रक्षा के लिए खलबली मच गई। बम्बई में हिन्दू नेता एकत्र हुए और पूना-पैक्ट के नाम से दलितों और सवर्ण हिन्दुओं में समझौता होकर पृथक् निर्वाचन रद्द किया गया। २६ सितम्बर को सरकार की ओर से उसकी स्वीकृति की घोषणा हुई। शाम को ५ बजे आपने अपना उपवास भंग किया। हरिजन-आन्दोलन के संचालन के लिए आपको यथेष्ट सुविधायें भी दे दीं गई और जेल से ही आप उसका संचालन करने लग गये। बम्बई में हिन्दू नेताओं ने श्री घनश्यामदास बिड़ला के सभापतित्व में अस्पृश्यता-निवारण-संघ की स्थापना की, वही संघ इस समय देश व्यापी हरिजन-आन्दोलन का संचालन 'हरिजन-सेवक-संघ' के नाम से कर रहा है। युगों का काम महीनों और महीनों का दिनों में होगया। अस्पृश्यता-

निवारण की आँधी भी एक वार पूरे वेग के साथ सारे देश में फैल गई।

अपने साथियों के पापाचरण, कमजोरी और पतन के लिए आप सदा ही प्रायश्चित्त करते रहे हैं। हरिजन-आन्दोलन में भी कुछ ऐसे साथी आगये थे, जिनकी अपवित्रता को दूर करने के लिए ८ मई १९३३ को आपने २१ दिन का फिर उपवास किया। पिछले उपवास के छः दिन में ही आपकी अवस्था चिन्ताजनक होगई थी। इसलिए इस उपवास का समाचार वहुत ही चिन्ताजनक था। सारे देश का ध्यान आपकी ही ओर लगा रहता था। देशवासियों ने अंगुलियों पर गिन-गिनकर इक्कीस दिन पूरे किये।

उपवास के शुरू होते ही सरकार ने आपको रिहा कर दिया। पूना में वह उपवास पूरा किया गया। सत्याग्रह-आन्दोलन भी छः सप्ताह के लिए स्थगित कर दिया गया। इस वीच में सरकार को आपने फिर सुलह के लिए इशारा किया। सरकार की ओर से उसका उत्तर वहुत रूखा मिला। सरकार अपने दुराग्रह पर अड़ी हुई थी, वह सदा और सर्वदा के लिए सत्याग्रह का अन्त चाहती थी। आप और कांग्रेस के अन्य नेता वैसा करने के लिए तय्यार न थे। आप उन गुप्त तरीकों से भी सहमत न थे, जिनसे लुक-छिपकर सरकार को धोखा देकर आन्दोलन चलाया जा रहा था। आप उसको सत्याग्रह की नीति के प्रतिकूल समझते थे। पूना में नेताओं की गुप्त मन्त्रणा हुई। उसके निर्णय और आपके परामर्श के अनुसार सामूहिक सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया, कांग्रेस कमेटियाँ तोड़ दी गई, केवल व्यक्तिगत सत्याग्रह करने का मार्ग खुला रक्खा गया।

फिर गिरफ्तारी

अठारह वर्ष की साधना का परिणाम-स्वरूप सावरमती का सत्याग्रह-आश्रम कहने को आपकी अपनी एक चीज़ था। आप अपना सर्वस्व राष्ट्र

के लिए न्यौछावर कर चुके थे और वह आश्रम भी उसी न्यौछावर का चिन्हमात्र था, किन्तु उसमें कुछ ममता अवश्य थी। राष्ट्र के लिए उसका भी त्याग कर आपने सब आश्रमवासियों को युद्ध के लिए आमन्त्रित किया। आश्रम खाली करके सरकार के आधीन कर दिया, किन्तु जब सरकार ने उस दान को स्वीकार न किया, तो उसे हरिजन-आन्दोलन की भेंट कर दिया गया। पहली अगस्त को ३२ आश्रमवासियों के साथ रास की ओर प्रस्थान करने की सूचना आपने सरकार को दी। आप सब साथियों के साथ ३१ जुलाई की रात को गिरफ्तार कर लिये गये। पूना ले जाकर आपको ४ अगस्त को पूना की सीमा पार न करने की शर्त पर छोड़ा गया। उस हुक्म की अवज्ञा करने पर आप फिर क़ैद किये गये। एक साल की सजा हुई और 'ए' श्रेणी में रक्खे गये। हरिजन-आन्दोलन के लिए पहले की-सी सुविधायें न मिलने के कारण आपने १६ अगस्त से फिर उपवास शुरू किया। २० अगस्त को आपको सासून हस्पताल भेजा दिया गया और कस्तूरबाई को आपकी सेवा-सुश्रूषा के लिए बिना शर्त के जेल से रिहा करके आपके पास पहुँचा दिया गया। दीनबन्धु एण्डरूज़ ने समझौते के लिए बहुत चेष्टा की। समझौता तो न हुआ, किन्तु २३ अगस्त की शाम को आपको रिहा कर दिया गया। आपके लिए बहुत दुविधा-पूर्ण स्थिति पैदा होगई। आत्मा के प्रकाश में अगले मार्ग की खोज करते हुए आपने एक वर्ष की अवधि में अपनेको एकमात्र हरिजन-आन्दोलन में लगा देने का निश्चय किया। इसी बीच पण्डित जवाहरलालजी को भी उनकी माताजी की बीमारी के कारण जेल से जल्दी छोड़ दिया गया था। माताजी का स्वास्थ्य सम्हलने पर वह आपसे मिलने आये। दोनों नेताओं में जो विचार-विनिमय हुआ, वह पत्र-व्यवहार के रूप में देशवासियों के पथ-प्रदर्शन के लिए प्रकाशित कर दिया गया।

हरिजन-दौरा

आप अपनेको हरिजन-आन्दोलन में लगा देने का निश्चय कर चुके थे। नवम्बर से आपने उसके लिए समस्त भारत का दौरा शुरू किया। उससे पहले भी आपने कई दौरे किये थे, किन्तु यह दौरा उन सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। देश के सदियों के पाप, हिन्दू-धर्म के कलंक और समाज के अभिशाप को दूर करने के लिए आपने यह यात्रा की थी। देश में राजनैतिक आन्दोलन की दृष्टि से प्रतिक्रिया शुरू होचुकी थी और पराजित होकर सत्याग्रह-आन्दोलन के मैदान से भागने का आपपर दोषारोपण किया जा रहा था। कहा जा रहा था कि गाँधी-युग बीत गया और अब आपको कोई पूछेगा भी नहीं। फिर भी आपका जहाँ-तहाँ अपूर्व स्वागत हुआ, विजयी नेता की तरह लोगों ने आपका अभिनन्दन किया और लगभग ८ लाख रुपया आपकी झोली में डालकर आपके प्रति अपने प्रेम, श्रद्धा तथा भक्ति का परिचय दिया। सब परिस्थिति को देखते हुए यह असाधारण सफलता थी। दो-तीन दुःखद घटनायें भी इस यात्रा में हुईं। पुरातनपन्थी आपसे असन्तुष्ट और आपपर क्रुद्ध भी थे। उनका एक दल स्थान-स्थान पर काली झण्डियाँ लेकर आपके आगे-पीछे घूमा करता था और आपके कार्य में विघ्न डालने का निरन्तर यत्न किया करता था। देवघर में भड़काये हुए लोगों ने आपकी मोटर पर लाठियों से हमला किया, पूना में म्युनिसिपल-मानपत्र के लिए जाते हुए एक दूसरी मोटर को आपकी मोटर समझकर बम फेंका गया और अजमेर में विरोधी-दल के पं० लालनाथ का किसीने सिर फोड़ दिया। अन्तिम दुर्घटना का सब दोष अपने ऊपर ले आपने ७ दिन का उपवास किया। उत्कल प्रान्त की चरम-सीमा की ग़रीबी देखकर आप इतने दुःखी हुए कि वहाँका दौरा नंगे पैर पैदल किया और गाँवों में बिना किसी विशेष

व्यवस्था तथा आडम्बर के गाँववालों का-सा ही जीवन व्यतीत किया। एक और घटना का भी यहाँ उल्लेख कर देना आवश्यक है। श्री केलप्पन ने गुरुवयूर-मन्दिर के ट्रस्टियों को नोटिस दिया था कि यदि १ जनवरी १९३४ को मन्दिर के द्वार हिन्दूमात्र के लिए न खोले गये, तो वह आमरण उपवास शुरू कर देंगे। उनके साथ आपके भी उपवास करने की सम्भावना थी। इसलिए उस आन्दोलन ने बहुत ज़ोर पकड़ा। मदरास-कौंसिल और असेम्बली में कुछ बिल भी उस आन्दोलन के सम्बन्ध में पेश हुए, जिनके लिए श्री राजगोपालाचार्य और आपने भी विशेष उद्योग किया। मन्दिर में पूजा के लिए जानेवालों का मत भी जाना गया। २०,१६३ में से १५,५६३ अर्थात् ७७ प्रतिशत मन्दिर-प्रवेश के अनुकूल थे, १३ प्रतिकूल और १० उदासीन थे। अनुकूल में ८,००० मत स्त्रियों के थे। उपवास की घड़ी इस आन्दोलन के वेग में टल गई।

बिहार-भूकम्प : फिर कौंसिलों की ओर

१६ जनवरी को सारा देश बिहार के प्रलय-प्रदेश के समाचार सुनकर निस्तब्ध रह गया। सत्याग्रह को लोग भूल गये और मर्माहत बिहार की मरहमपट्टी के लिए दौड़ पड़े। आपको भी हरिजन-दौरे में से समय निकालकर बिहार जाना पड़ा और वहाँका भी आपने दौरा किया। बिहार में आपने यह अनुभव किया कि सत्याग्रह-आन्दोलन को और अधिक समय जारी रखना अभीष्ट नहीं है। आप एक वक्तव्य निकालने को ही थे कि दिल्ली में ३१ मार्च १९३४ को डा० अन्सारी की अध्यक्षता में नेताओं का सम्मेलन हुआ, जिसमें स्वराज्य-दल को पुनः संगठित करके असेम्बली के आगामी चुनाव की लड़ाई लड़ने की आज्ञा काँग्रेस से प्राप्त करने का निश्चय किया गया। कुछ नेता पटना आकर आपसे मिले। ७ अप्रैल को सत्याग्रह स्थगित करने का आपने वक्तव्य निकाल दिया और

अपने लिए सत्याग्रह करने की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता आपने क़ायम रक्खी। कौंसिल-प्रेमियों को कौंसिल-प्रवेश के लिए आपने वरदान दे दिया। १८, १९, २० मई को पटना में कार्य-समिति और महासमिति की बैठकें हुई। उनमें आपके भाषण अत्यन्त मार्मिक, स्पष्ट और महत्वपूर्ण थे। सत्याग्रह की ओर से देश ने फिर कौंसिलों की ओर मुंह फेर लिया। इस कार्य की निन्दा हुई, कड़ी आलोचना हुई और आपपर कुछ आक्षेप भी किये गये, किन्तु आप अपने निश्चय पर अटल रहे और आपने कौंसिलों के कार्यक्रम का वैसा ही समर्थन किया, जैसा कि सत्याग्रह का करते थे। साम्प्रदायिक बँटवारे के बारे में काँग्रेस की तटस्थ-नीति भी आपके व्यक्तित्व का परिणाम थी और वह आपके लिए अपनी अन्तरात्मा की ध्वनि थी। महामना मालवीयजी और लोकनायक बापूजी अणे के कार्य-समिति से अलग होने और देश में विरोधी आन्दोलन के पैदा होजाने पर भी आपने अपनी अन्तरात्मा की ध्वनि को दबाया नहीं। उसपर आप दृढ़ रहे और आपके साथ काँग्रेस भी दृढ़ रही। देश में फिर से काँग्रेस-कमेटियों के संगठन का जाल फैलने में अधिक समय नहीं लगा। राष्ट्रपति सरदार पटेल जेल में थे। श्री जमनालाल बजाज की अध्यक्षता में कार्य-समिति ने अपना काम शुरू किया। वर्धा, बनारस और बम्बई आदि में काँग्रेस के अधिवेशन तक कार्य-समिति की जो बैठकें हुई, उनका सारा काम-काज आपकी निगरानी और पथप्रदर्शकता में होता रहा।

बम्बई-काँग्रेस

अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह में बम्बई में काँग्रेस का शानदार अधिवेशन हुआ। उसकी सफलता का अधिक श्रेय आपके व्यक्तित्व को ही है। अधिवेशन से पहले आपने काँग्रेस से अलग होने और काँग्रस-नियमावली में संशोधन पेश करने के बारे में एक वक्तव्य निकाला था। समाचार-

पत्रों में दोनों विषयों की बहुत चर्चा होती रही और काँग्रेस के अवसर पर कार्य-समिति, महासमति तथा खुले अधिवेशन में भी चर्चा हुई। आपपर अलग न होने के लिए बहुत ज़ोर डाला गया। पर, अन्तरात्मा की साक्षी मिल जाने के बाद आपके निश्चय को कौन बदल सका है? बम्बई के अधिवेशन की समाप्ति पर, आपने अवकाश ग्रहण कर लिया। किन्तु इस अधिवेशन में भी राष्ट्र को आपने दो क़ीमती चीजें भेंट कीं। एक काँग्रेस का नया विधान और दूसरा ग्राम-उद्योग-संघ। अवकाश ग्रहण कर लेने पर भी अपने परामर्श से काँग्रेसवादियों को वंचित न रखने और आवश्यकता के समय राजनैतिक क्षेत्र में फिर लौट आने के लिए आप वचनबद्ध हैं। बम्बई-काँग्रेस के बाद से आप ग्राम-उद्योग-संघ के कार्य में लगे हुए हैं। हाथ के पिसे आटे, हाथ के कुटे चावल और चीनी की जगह गुड़ को काम में लाने का आदेश देकर आपने इस कार्य का श्रीगणेश किया है। कार्य-समिति की बैठकों के समय और वैसे भी आप-के परामर्श से नेता और कार्यकर्ता लाभ उठाते रहते हैं। आपके 'हरिजन' पत्र द्वारा ग्राम-उद्योग-संघ के कार्य और हरिजन-आन्दोलन की प्रगति का समाचार सारे देश को मिलता रहता है। बिना किसी आन्दोलन, प्रदर्शन और धूम-धाम के जो ठोस कार्य आप कर रहे हैं, देश की आँखें उसी ओर लगी हुई हैं। देश की सूखी हड्डियों में सत्याग्रह एवं असहयोग द्वारा आपने नवजीवन पैदा किया और अब आप ग्राम-उद्योग-संघ द्वारा उसकी सूखी नसों में रक्त-संचार कर रहे हैं।

काँग्रेस से अलग रहकर भी आप उसका निरन्तर पथ-प्रदर्शन करने और विकट समस्याओं की उलझन से उसको पार निकालने में और काँग्रेसवादियों को अपने ध्येय से विचलित न होने देने की सावधानी रखने में निरन्तर लगे रहते हैं। कार्यसमिति की अधिकांश बैठकें

वर्धा ही में होती हैं और जब कहीं और अधिवेशन होता है तब वहां आप ज़रूर उपस्थित रहते हैं। महासमिति की बैठकों में भी आपकी उपस्थिति अनिवार्य समझी जाती है। कांग्रेस का पदग्रहण के पक्ष में निर्णय आपकी व्यक्तिगत विजय है। उसके लिए लगाई गई आश्वासन-सम्बन्धी शर्त भी आपके ही दिमाग़ की सूझ है। पदग्रहण-सम्बन्धी और आश्वासन-सम्बन्धी सारी बहस में आपने पूरा भाग लिया। आश्वासन देने में की गई आनाकानी पर आपने लिखा था कि "हिन्दुस्तान में बहुमत की हकूमत क़ायम न होकर तलवार की हकूमत ही कायम रहेगी।" इस सवाल के क़ानूनी पहलू पर भी आपने खासी रोशनी डाली थी, जिसका समर्थन विधान-शास्त्री प्रो० कीथ तक ने किया था। १९३६ के मार्च के मध्य में पदग्रहण-सम्बन्धी निर्णय करने के लिए दिल्ली में हुई कार्य-समिति, महासमिति एवं राष्ट्रीय सम्मेलन की बैठकों के समय आप विशेषरूप से दिल्ली पधारे थे। इसी प्रकार अक्तूबर १९३८ के तीसरे सप्ताह में खरे-प्रकरण पर विचार करने के लिए हुई कार्य-समिति एवं महासमिति की महत्त्वपूर्ण बैठकों के अवसर पर भी आप दिल्ली में उपस्थित रहे। चैकोस्लोवेकिया के सवाल को लेकर जब विश्वव्यापी युद्ध की आशंका तीव्र हो उठी और कार्य-समिति की बैठकों का हर रोज़ होना ज़रूरी समझा गया, तब सीमान्त की यात्रा स्थगित करके आप दिल्ली में रुक गये। पदग्रहण के बाद आपने कांग्रेसी सरकारों को मद्य-निषेध, जेल-सुधार और शिक्षा-सुधार के त्रिमुखी कार्यक्रम को अपनाने की ज़ोरदार अपील की। तबसे 'हरिजन' द्वारा कांग्रेसी सरकारों और कांग्रेस-जनों का पथ-प्रदर्शन आप निरन्तर ही करते रहते हैं। इस बारे में लिखे गये आपके लेख विशेष महत्त्वपूर्ण होते हैं और सभी जगह बहुत ध्यान से पढ़े जाते हैं।

काँग्रेस से अलग होने के बाद आप विविध सार्वजनिक कार्यों में बराबर हिस्सा लेते रहे हैं। स्थानीय राजनैतिक मामलों से अलग रहकर भी सार्वजनिक मामलों में आपने पूरा हिस्सा लिया है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण सवाल राजबन्दियों की रिहाई का है। अगस्त १९३७ में अण्डमान में राजबन्दियों द्वारा भूख-हड़ताल करने पर हिन्दुस्तान में भी प्रायः सर्वत्र राजबन्दियों ने भूख-हड़ताल कर दी थी और उससे यह सवाल भारतव्यापी बनकर विशेष महत्वपूर्ण होगया था। मनुष्यता की इस पुकार पर आपका हृदय विह्वल हो उठा। दूसरों के लिए इस सवाल का राजनैतिक महत्व है, लेकिन आपके लिए यह विशुद्ध मनुष्यता की पुकार है। राजबन्दियों से भूख-हड़ताल छोड़ने की अपील करते हुए आपने उनकी रिहाई की सारी जिम्मेदारी अपने सिर पर लेली। इसी बीच आप ४ अगस्त १९३७ को वाइसराय से दिल्ली में मिले और अपने गिरते हुए स्वास्थ्य की कुछ भी परवा न कर दो बार इसी विषय पर बंगाल भी गये। पहली बार अक्तूबर १९३७ में और दूसरी बार मार्च १९३८ में। दोनों बार आप जेलों में राजबन्दियों, नजरबन्दों, सरकारी मन्त्रियों और गवर्नर से भी मिले। मन्त्रि-मण्डल के सदस्यों के साथ लम्बी-लम्बी मुलाकातें हुईं और बाद में पत्र-व्यवहार भी हुआ। स्वास्थ्य की वजह से ही इस बारे का बहुत-सा काम आपने राष्ट्रपति बोस पर छोड़ दिया। यद्यपि सरकार ने आपकी माँग पूरी नहीं की, तो भी अण्डमान से राजबन्दियों की वापसी, बंगाल में नजरबन्दों की रिहाई और अनेक राजबन्दियों की रिहाई का प्रायः सारा ही श्रेय आपको है। हिंसात्मक अपराधों में सजा पायेहुओं और हिंसा में विश्वास रखनेवालों को अहिंसावादी बनाना और उनसे खुले तौर पर अहिंसा में विश्वास रखने की घोषणा करवाना भी आपके व्यक्तित्व की बहुत बड़ी जीत है।

कांँग्रेस के लिए राजवन्दियों की रिहाई का सवाल सिद्धान्त का था और चुनाव-घोषणा-पत्र द्वारा भी उसकी घोषणा की गई थी। विहार और युक्तप्रान्त में इसी सवाल पर फरवरी १९३८ में वैधानिक संकट उत्पन्न हुआ। इस वारे में गवर्नर-जनरल के हस्तक्षेप को आपने अनावश्यक वताया था और उसकी तीव्र आलोचना भी की थी। राजवन्दियों की रिहाई के वारे में आप निराश न होकर अव भी आशावादी वने हुए हैं। आपका यह विश्वास है कि मध्य अप्रैल १९३९ के लगभग तक सव राजवन्दी जरूर रिहा होजायेंगे।

ग्राम-उद्योग-संघ को क़ायम करने के वाद से आपने देहातों के साथ अपनेको तन्मय कर दिया है। १९३६ के मई मास से आपने गाँव में रहने का निश्चय करके वर्धा के पास सेगाँव में रहना शुरू कर दिया है। स्वास्थ्य वहुत खराव रहता है, तो भी आप गाँव में रहने के निश्चय पर दृढ़ हैं। १९३८ की ८ जनवरी को जुहू में एक मास विताने के वाद जव आप सेगाँव लौटे, तव आपने कहा था कि मैं यहीं मृत्यु का सामना करूँगा।

२५ अक्तूवर १९३६ को काशी में श्री शिवप्रसादजी गुप्त द्वारा स्थापित भारतमाता के राष्ट्रीय मन्दिर का आपने उद्घाटन किया। फैजपुर (दिसम्बर १९३६) और हरिपुरा (फरवरी १९३८) में होनेवाली कांँग्रेसों के अधिवेशनों में भी आप शामिल हुए। फैजपुर में आपका अत्यन्त मार्मिक और ओजस्वी भाषण हुआ। दोनों ही जगह आपने ग्राम-प्रदर्शनियों का उद्घाटन किया। हरिपुरा में प्रदर्शनी के उद्घाटन पर आपने कुछ ही पंक्तियों में एक छोटा-सा भाषण दिया। लेकिन, अन्य भाषणों में हरिजन-सेवा और खादी के महत्व पर आपने वहुत ज़ोर दिया। एक भाषण में आपने विहार और युक्तप्रान्त में राजवन्दियों की

रिहाई के सवाल को लेकर वैधानिक संकट की चर्चा करते हुए लोगों से खादी को ही अपनाने की अपील की थी। दूसरे भाषण में मेहतर के काम को माता की सेवा के समान श्रेष्ठ वताया था। फैजपुर-काँग्रेस के वाद (जनवरी १९३७) आपने त्रावणकोर की यात्रा हरिजनों के लिए मंदिर खोल देने के उपलक्ष्य में की। आपने वहाँ कहा कि "हरिजनों के लिए मन्दिर खुल जाने के कारण अब मैं भी उनके दर्शन कर सकता हूँ।" श्री पद्मनाभ स्वामी के मन्दिर के आपने दर्शन भी किये।

काँग्रेसी सरकारें और उनके मन्त्री आपसे अपने कामकाज और योजनाओं के वारे में प्रायः परामर्श करते रहते हैं। मध्यप्रान्तीय सरकार की विद्या-मन्दिर की शिक्षा-योजना ऐसे ही परामर्श का परिणाम है। २१ अप्रैल १९३८ को आपने इस योजना को अमली रूप देने के लिए शिक्षक तैयार करने को खोले गये 'विद्या-मन्दिर-विद्यालय' की आधार-शिला रक्खी। देशी राज्यों की जनता भी आपकी ओर पथ-प्रदर्शन के लिए देखती रहती है। मैसूर एवं त्रावणकोर आदि की जनता के पक्ष का समर्थन आपने खुले तौर पर किया है और 'हरिजन' में देशी नरेशों को सावधान करते हुए कई लेख भी लिखे हैं।

सरकारी लोगों की नज़रों में आपके व्यक्तित्व एवं प्रभाव ने जो स्थान वनाया हुआ था, वह इधर अधिक ही व्यापक हुआ है। ४ अगस्त १९३७ और १४ अप्रैल १९३८ को वाइसराय ने आपसे मुलाक़ात की। १७ जनवरी १९३८ को लार्ड लोथियन आपसे सेगाँव जाकर मिले। २ मई १९३८ को सीमान्त-यात्रा में सीमाप्रान्त के और १३ मई १९३८ को वम्बई के गवर्नर ने आपसे मुलाक़ात की। भारत-उपसचिव मूरहेड हवाई जहाज़ से उड़कर डेराइस्माइलखाँ पहुँचकर आपसे मिले।

आपकी सीमाप्रान्त की यात्रायें भी ऐतिहासिक महत्व रखती हैं।

सरकार को आपके वहाँ जाने में आपत्ति रहने के कारण उससे पहले आप वहाँ नहीं जा सके थे। पहली यात्रा १९३८ के मई मास के शुरू दिनों में सिर्फ ९ दिन के लिए (२ से ११ मई तक) और दूसरी अक्तूबर शुरू से ९ नवम्बर तक की। दोनों यात्राओं में आपने सीमाप्रान्त का कोना-कोना देख डाला। डेराइस्माइलखाँ में आपको हरिजन-कार्य के लिए ६ हज़ार की थैली भेंट की गई।

व्यक्तिगत-साधना की दृष्टि से आपके जीवन की कुछ बातें विशेष महत्वपूर्ण हैं। आपने प्रति सोमवार को मौन रहने का नियम किया हुआ है। इस मौनावलम्बन में आप लिखने का बहुत-सा कार्य कर लेते हैं। पहले 'यंग-इण्डिया' और 'नवजीवन' के सम्पादन का अधिकतर कार्य आप इसीदिन किया करते थे; अब 'हरिजन','हरिजन-बन्धु' तथा 'हरिजन-सेवक' का करते हैं। १९३४ में वर्धा में एक मास के मौन-व्रत का अनुष्ठान भी आपने किया था। १९३८ के मध्य अगस्त से आपने फिर मौन-व्रत लिया हुआ है। अक्तूबर से तीसरे सप्ताह में कार्य-समिति एवं महासमिति के अधिवेशनों और उसके बाद की गई सीमान्त-यात्रा में भी मौन-व्रत भी प्रायः आप साधे रहे। कार्य-समिति के सदस्यों से आवश्यक बातचीत के लिए सिर्फ एकबार यह व्रत खोला और सीमान्त-यात्रा में भी कुछ थोड़े ही अवसरों पर आपने बातचीत की तथा व्याख्यान दिये। स्वास्थ्य के लिए आहार-सम्बन्धी परीक्षण करने का शौक आपको बहुत पुराना है। 'आरोग्य-दिग्दर्शन' पुस्तक वैसे ही परीक्षणों का परिणाम है। इस वृद्धावस्था में भी आप ऐसे परीक्षण बराबर करते रहते हैं।

सत्य व अहिंसा की अन्तर्राष्ट्रीय साधना

इधर काँग्रेस को 'सत्य' एवं 'अहिंसा' पर क़ायम रखने की ओर आपका विशेष ध्यान गया है। उसके नियन्त्रण एवं अनुशासन को दृढ़

रखने पर भी आपने ज़ोर दिया है। खरे-प्रकरण को सामने रखकर आपने इस ओर कांग्रेस-जनों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया है। कोमागातामारू के १६ वर्षों से फ़रार क्रान्तिकारी सरदार पृथ्वीसिंह को आपने मई १९३८ में पुलिस को समर्पण कर देने की सलाह 'सत्य' व 'अहिंसा' के असूल को ही सामने रखते हुए दी थी। 'हरिजन' में इधर इस विषय की वहुत अधिक चर्चा रहती है। कांग्रेस-जनों की 'सत्य' व 'अहिंसा' सम्वन्धी भूलों को आप अक्षन्तव्य मानते हैं और उनके भार से कांग्रेस का नष्ट-भ्रष्ट होजाना भी आपकी दृष्टि में निश्चित है। यदि कांग्रेस-जन 'सत्य' एवं 'अहिंसा' में स्थिर नहीं रह सकते, तो उन्हें, आपकी राय है कि, उनके परित्याग की साफ तौर पर घोषणा कर देनी चाहिए। अथवा 'सत्य' एवं 'अहिंसा' में एकनिष्ठ रहनेवालों को काँग्रेस से अलग होना चाहिए। साम्प्रदायिक दंगों में शहर की व्यवस्था वनाये रखने के लिए 'शान्ति-सेना' की योजना का विचार आपने देश के सामने रक्खा है। सितम्वर में दिल्ली में हुई कार्य-समिति की वैठक में इसपर विशेष चर्चा हुई थी। काँग्रेसी सरकारों से भी आपका यह अनुरोध है कि वे पुलिस व फ़ौज पर निर्भर न रहकर काँग्रेस के 'सत्य' एवं 'अहिंसा' के साधनों को अमली जामा पहनावें। चेकोस्लोवेकिया के संकटापन्न लोगों को आत्म-समर्पण न करके अहिंसा के मार्ग के अवलम्वन करने की आपने ज़ोरदार सलाह दी थी। इससे 'सत्य' एवं 'अहिंसा' का वैसा ही अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्रकट होना है, जैसा कि अपनी राष्ट्रीय मुक्ति के लिए हिन्दुस्तान के लोग अनुभव कर चुके हैं।

आपका व्यक्तित्व जिस प्रकार सर्वव्यापी है, उसी प्रकार आपकी राष्ट्र-सेवा भी सर्वव्यापी और चहुँमुखी है। धर्म, अर्थ, समाज, राजनीति, साहित्य, अध्यात्म आदि का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं, जिसमें आपने कार्य न

किया हो। राष्ट्रवादियों के व्यक्तिगत चरित्र-निर्माण के और समाज के सामूहिक सुधार के क्षेत्र में आपका व्यक्तित्व प्रकाशस्तम्भ की तरह पथ-प्रदर्शन का काम कर रहा है। इसी प्रकार साहित्य-निर्माण के लिए भी आपके व्यक्तित्व से अद्भुत स्फूर्ति प्राप्त हुई है। गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजी में ही नहीं, बल्कि देश की प्रायः समस्त भाषाओं में 'गांधी-साहित्य' का अपना विशेष स्थान बन गया है। अपने व्यक्तित्व से आपने नैतिकता तथा आध्यात्मिकता का दृष्टिकोण भी बहुत-कुछ बदल दिया है और राजनीति में भी उसका समावेश कर दिया है। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का सम्पादन करने में आपको बाह्य दृष्टि से सफलता प्राप्त नहीं हुई, किन्तु फिर भी उस सांस्कृतिक एकता की आधार-शिला आपने रख दी है, जिसपर राजनैतिक एकता का विशाल भवन खड़ा होने में अधिक समय नहीं लगेगा। मनोभाव और विचार-धारा के प्रवाह को आपने निश्चय ही बदल दिया है। मौलाना आजाद की प्रेरणा पर आपने १९३८ के अप्रैल व मई में एक बार फिर इसके लिए सक्रिय कोशिश की। मुस्लिम लीग के प्रेसीडेण्ट श्री जिन्ना के साथ पत्र-व्यवहार किया। अन्त में बम्बई जाकर २८, २९ अप्रैल और २० मई को उनसे उनके मकान पर मिले भी। आपने घुटने टेक कर श्री जिन्ना से साम्प्रदायिक एकता की भीख माँगी। लेकिन, उन्होंने अपना हठ नहीं छोड़ा। उनके इस रुख की चारों ओर निन्दा भी हुई। आपकी ही प्रेरणा पर श्री नेहरूजी और श्री सुभाषचन्द्र बोस ने राष्ट्रपति के नाते इस मामले में दिलचस्पी ली और कांग्रेस-कार्य-समिति ने भी उसके लिए कोई बात उठा नहीं रक्खी। लेकिन, लीगी नेताओं की हठवादिता की वजह से यह प्रयत्न भी असफल रहा।

राष्ट्रभाषा हिन्दी की आपने जो सेवा की है, उसके सम्बन्ध में दो

मत नहीं होसकते । कांग्रेस के मंच पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा के आसन पर बिठाने और उसके लिए विदेश-समान दक्षिण-भारत के सुदूर प्रदेश में उसको फैलाने का सब श्रेय एकमात्र आपको ही है । वहाँकी 'हिन्दी-प्रचार-समिति' आपके प्रयत्नों का शुभ परिणाम है । 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' के इन्दौर में १९२५ और १९३५ में हुए वार्षिक अधिवेशनों के सभापति होकर आपने सम्मेलन में नवजीवन और स्फूर्ति का संचार किया है । नागरी लिपि को सुधारने के प्रयत्नों को आपका आशीर्वाद पूरी तरह प्राप्त है । गोरक्षा के आन्दोलन में भी आप विशेष भाग लेते रहे हैं । सारांश यह है कि देशोन्नति का ऐसा कोई कार्य नहीं, जिसको आपका सहयोग प्राप्त न हुआ हो ।

इस प्रकार सर्वतोमुखी और सर्वव्यापी कार्यक्रम से, दरिद्रनारायण की सेवा और व्यक्तिगत जीवन की कठोर साधना, तपस्या, त्याग तथा आत्मोत्सर्ग से आपने देशवासियों के हृदय में कुछ ऐसा स्थान बना लिया है कि आपके अस्वास्थ्य के साधारण-से समाचार पर भी सारे देश में खलबली और बेचैनी मच जाती है । ३२-३३ करोड़ हृदय आपके स्वास्थ्य-लाभ की कामना करने में लग जाते हैं । दिसम्बर १९३५ में आपकी बीमारी का समाचार सुनकर देश में विशेष चिन्ता फैल गई थी । आत्मा की उन्नति के उत्कर्ष पर पहुँच जाने और मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद भी यह देह जीवन-भर असह्य भार ढोता-ढोता वृद्धावस्था में थक ही जाता है । आपने तो उससे पूरी निठुरता से काम लेते हुए उसे भूखों ही मारा है । इसीसे वह सूखकर केवल अस्थिपंजर रह गया है । डाक्टरों का बस चले, तो वे आपको दो क़दम भी चलने न दें और दो मिनट भी काम न करने दें । पिछले तीन वर्ष तो आपका स्वास्थ्य प्रायः गिरा ही रहा है । १९३६ के मई-जून में आपको विश्राम के लिए

नंदी (मैसूर) जाना पड़ा। वहाँसे सेगाँव वापस आने पर आपको मलेरिया की शिकायत होगई। तापमान १०५ तक चला गया। ३ से १३ सितम्बर तक आपको वर्धा में अस्पताल में रक्खा गया। १९३७ के मई-जून में आप तीथॅल में करीब एक मास रहे। सितम्बर में स्वास्थ्य इतना गिर गया कि सब मुलाकातें और पत्र-व्यवहार भी बन्द कर दिया गया। फिर भी आप राजबन्दियों की रिहाई के सिलसिले में बंगाल गये। वहाँ स्वास्थ्य इतना गिर गया कि आपको विश्राम के लिए जुहू जाना पड़ा। हरिपुरा-काँग्रेस (फ़रवरी १९३८) पर भी स्वास्थ्य कार्य का भार नहीं सम्हाल सका। रक्त का दबाव बढ़ गया। इसपर भी आप मार्च में दूसरी बार बंगाल गये और वहाँसे उड़ीसा में कटक के पास डेलाँग गाँव में हुए गाँधी-सेवा-संघ के वार्षिक-समारोह (२५ मार्च १९३८) में शामिल हुए। राष्ट्रीय सप्ताह (६ से १३ अप्रैल) के निमित्त आपने सदा की भाँति उपवास किया। स्वास्थ्य फिर गिर गया। वहाँसे बम्बई गये और बम्बई से सीमान्त की यात्रा (२९ अप्रैल) पर गये। वहाँसे बम्बई लौटकर सेगाँव पहुँच गये। डाक्टरों के आग्रह पर भी जुहू नहीं रुके। हृदय में धधकती हुई आग शान्त कैसे रहने दे सकती है? अपने देशवासियों के लिए सर्वस्व मिटा देनेवाला इस नश्वर देह में राग नहीं रख सकता। भयानक बीमारी के बाद भी कहीं एकान्त में विश्राम करने का विचार न कर आप अपने मिशन की पूर्ति में लगे रहते हैं।

आपकी जीवन-कहानी भारतीय-राष्ट्र की जागृति का जीता-जागता इतिहास है। उसका पूरा परिचय प्राप्त करने के लिए आपकी आत्मकथा का स्वाध्याय एवं आपके जीवन के साथ अपनेको तन्मय करने की ज़रूरत है। तब जिज्ञासु पाठक को दिव्य प्रकाश की वह किरण मिलना

सम्भव है, जिसके उजाले में वह अपना जीवन-मार्ग निष्कण्टक बना सकता है। दूर-दूर देशों तक से कितने ही जिज्ञासु आकर्षित होकर आपके पास आते रहते हैं और आपके दर्शन, उपदेश तथा परामर्श से लाभ उठाते हैं। संसार की दृष्टि में जिस भारत का अपना न कोई चित्र था और न चरित्र, उसको आपने अपने दिव्य चरित्र से गौरवान्वित कर दिया। श्री 'सुमन' के ये शब्द कितने सुन्दर और यथार्थ हैं कि "आप हमारी आशा के पंख हैं, हमारी जीवन-निशा के दीपक हैं, विश्व की आध्यात्मिक साहसिकता के प्रतीक हैं, घोर अन्धकार में आपकी डेढ़ हड्डी-पसली की मूर्ति ध्रुवतारे की तरह चमक रही है।"

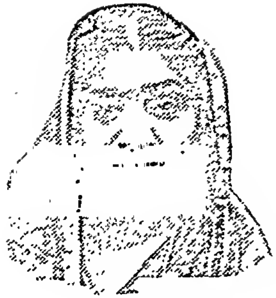

: ३७ :

सरोजिनी नायडू

[१३ फरवरी १८७९]

चालीसवाँ अधिवेशन, कानपुर—१९२५

भारत-कोकिला देवी सरोजिनी नायडू ने स्वर्गीय पं० मोतीलालजी नेहरू के समान अपनी प्रतिभा, योग्यता और विलासिता को देश की स्वतन्त्रता की पुकार पर न्यौछावर कर जो आदर्श उपस्थित किया है, उससे सैकड़ों-हज़ारों को आत्मोत्सर्ग के लिए प्रेरणा मिली है। लिखने और बोलने की शिक्षा आप माता के पेट से ही लेकर पैदा हुई हैं। अंग्रेज़ी कविता पर आपका असाधारण अधिकार है। आप कविता में बोलती, कविता में लिखती और कविता में ही रहती हैं। आपकी भाषा जैसी ओजपूर्ण, सुन्दर और आकर्षक है, वाणी वैसी ही मधुर, सरस और प्रभावोत्पादक है। यह सब आपमें पैदा नहीं किया गया है, किन्तु जन्म के साथ ही पैदा हुई यह वह विभूति है, जो सहज ही श्रोताओं को मोह लेती है।

आपका जन्म १३ फरवरी १८७९ में हैदराबाद (दक्षिण) में हुआ था। आपके पिता का नाम था डाक्टर अघोरनाथ चट्टोपाध्याय। वह बहुत विद्या-व्यसनी और शिक्षा-प्रेमी थे। निज़ाम-कालेज की उन्होंने ही स्थापना की थी और जीवन-भर शिक्षा के क्षेत्र में वह कार्य करते रहे थे। सरोजिनी-देवी को उन्होंने अपनी देख-रेख में ही पढ़ाया-लिखाया था। उसीका परिणाम था कि उसने मदरास-यूनिवरसिटी से १२ वर्ष की आयु में

मैट्रिक पास किया, जो एक असाधारण घटना थी । १८९५ में अध्ययन के लिए आपको आपकी इच्छा के विरुद्ध, निज़ाम से वजीफ़ा मिलने पर, इंग्लैण्ड भेजा गया । १८९८ तक किंग-कालेज में शिक्षा ग्रहण की । इसी वीच आपने इटली की सैर की । आपकी प्रतिभा के विकसित होने में उस सैर से प्रेरणा मिली । आप अत्यन्त कुशाग्र और प्रतिभा-सम्पन्न थीं । आपके पिता की इच्छा थी कि आप गणित और विज्ञान की विशेष शिक्षा ग्रहण करें, किन्तु कविता ने उसपर विजय प्राप्त की । ग्यारह वर्ष की आयु में आप एलजब्रा का एक प्रश्न हल करने में लगी हुई थीं । वह तो हल हुआ नहीं, किन्तु काग़ज़ पर कविता उतर आई । १३ वर्ष की आयु में छः दिनों में 'लेडी आफ दी लेक' १,३०० पंक्तियों की कविता लिखी और उन्हीं दिनों में २,००० पंक्तियों का नाटक भी लिखा । वीमार होने से साधारण पढ़ाई छूट गई, किन्तु वैसे आपने वहुत कितावें पढ़ डालीं । १४ से १६ वर्ष की आयु की अवधि में आपने वहुत अधिक पढ़ा । १८९८ में आप भारत लौटीं और उसी वर्ष दिसम्वर में डा० गोविन्द राजूलू नायडू के साथ आपका अन्तर्जातीय और अन्तःप्रान्तीय विवाह हुआ । आपका गृहस्थ-जीवन वहुत सुखी, सम्पन्न और समृद्ध रहा । आपके चार सन्तान हैं, दो लड़के और दो लड़कियाँ । निज़ाम राज्य में परदे का वहुत ज़ोर है । हैदरावाद परदे का घर है । आपने परदा तो कभी किया ही नहीं, किन्तु समाज-सुधार के सभी कार्यों और सार्वजनिक जीवन में भी आपने विशेष भाग लेना शुरू कर दिया । आपकी कविता की 'दी गोल्डन थ्रैश होल्ड' और 'दी वर्ड आफ़ टाइम' पुस्तकों के प्रकाशित होते ही इंग्लैण्ड में उनकी धूम मच गई । स्वदेश-भक्ति की भावना में आपकी कविता उस समय भी रंगी रहती थी । राष्ट्रीय उत्कर्ष की ध्वनि उसमें प्रतिध्वनित होती थी । स्वाभिमान, स्वदेशाभिमान और राष्ट्रीयता की भावना से

अनुकूल वातावरण मिलते ही आप पूरी तरह खिल उठीं। गाँधीजी के व्यक्तित्व से देश में जो महान् परिवर्तन पैदा हुआ, उससे आप अलग न न रह सकीं। आप उन कुछ व्यक्तियों में से हैं, जिन्होंने अपनेको गाँधीजी के पीछे देश-प्रेम में पागल बना दिया है और जो सदा देश का चिन्तन करते हुए उसकी स्वतन्त्रता के गीत गाते रहते हैं।

१९१५ के लगभग आपने सार्वजनिक जीवन में एक प्रभावशाली, ज़ोरदार और सफल वक्ता के रूप में प्रवेश किया। विद्यार्थियों और स्त्रियों की संस्थाओं में आपके व्याख्यान बहुत पसन्द किये जाते थे। काँग्रेस में सबसे पहले सम्भवतः लखनऊ में १९१६ में शामिल हुई। उसमें 'स्वायत्त शासन' के प्रस्ताव पर आपने ज़ोरदार भाषण किया। उसके बाद १९१७ में आपने सारे देश का दौरा किया और जगह-जगह राजनैतिक विषयों पर व्याख्यान दिये। मदरास में दिसम्बर के महीने में विविध विषयों पर आपके बहुत-से व्याख्यान हुए। मदरास के विद्यार्थियों के सामने 'दी होप आफ़ टुमारो' पर दिया गया आपका भाषण बहुत महत्वपूर्ण और मर्मस्पर्शी था। मई १९१८ में कांजीवरम में मदरास-प्रान्तीय कान्फ़्रेंस आपकी अध्यक्षता में हुई। १९१८ में आपने फिर सारे देश का दौरा किया। दिसम्बर में अखिल-भारतीय सोशल सर्विस कान्फ्रेंस के दूसरे वार्षिक अधिवेशन की आप अध्यक्षा चुनी गई, जो काँग्रेस के साथ दिल्ली में हुआ। १९१९ में आप फिर यूरोप गई। जिनेवा में अन्तर्राष्ट्रीय-स्त्री-मताधिकार-परिषद् में आपने भाषण दिया। १९२२ के शुरू में आपने काँग्रेस की ओर से दक्षिण अफ्रिका का दौरा किया। उसी वर्ष बम्बई के कारपोरेशन की सदस्या और बम्बई-प्रान्तीय-काँग्रेस-कमेटी की अध्यक्षा भी चुनी गई। तभीसे काँग्रेस की महासमिति में भी आपको प्रायः स्थान मिलता रहा है। १९२३ में नागपुर में राष्ट्रीय झण्डे की

सम्मान-रक्षा के लिए सत्याग्रह हुआ। उसके प्रचार के लिए आपने मध्य-प्रान्त का दौरा किया। १९२५ में कानपुर में हुई काँग्रेस की आप सभा-नेत्री चुनी गईं। वह चुनाव अनायास ही नहीं हुआ था। देश में उस समय हिन्दू-मुस्लिम दंगे जोरों पर थे और साम्प्रदायिकता का ज़हर चारों ओर फैला हुआ था। उस समय राष्ट्रपति के आसन को सुशोभित करने के लिए ऐसे ही व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो उससे एकदम ऊपर उठा हुआ और सबका एकसमान विश्वासपात्र हो। आप उसके लिए सर्वथा योग्य और उपयुक्त थीं। गाँधीजी ने तो बेलगाँव में ही कह दिया था कि जहाँ मुझको बिठाया जा रहा है, वहाँ सरोजिनी को बिठाया जाना चाहिए। आपका भाषण बहुत छोटा, कवितामय, मधुर और मर्म-स्पर्शी था। उस समय के साम्प्रदायिक-कलह की ओर संकेत करते हुए आपने कहा था कि "भारतमाता की आज्ञाकारिणी पुत्री की हैसियत से मेरा काम यह होगा कि अपनी माता का घर ठीक करूँ और इन शोच-नीय झगड़ों का निपटारा करूँ।" फिर आपने कहा था कि "स्वतन्त्रता के युद्ध में डरकर पीठ दिखाना अक्षम्य अपराध है और निराशा भयानक पाप।" इसमें सन्देह नहीं कि साम्प्रदायिक मनोमालिन्य को दूर करके भारतमाता के घर को व्यवस्थित करने की अपनी आकांक्षा को आप पूरा नहीं कर सकीं, किन्तु यह तो निर्विवाद और सन्देह-रहित है कि आपने देश की स्वतन्त्रता की लड़ाई में पीठ दिखाने या निराशा प्रकट करने का अपराध कभी नहीं किया। १९२८ के अन्त में आप संयुक्तराष्ट्र-अमेरिका गईं। वहाँसे अगस्त १९२९ में आप फिर अफ्रिका वहाँकी भारतीय काँग्रेस की अध्यक्षा निर्वाचित होकर गईं। १९३० के नमक-सत्याग्रह के आन्दोलन से महिलाओं को अलग रखकर महात्माजी उनसे विदेशी वस्त्रों एवं शराब आदि की दूकानों पर धरना देने का ही काम लेना चाहते थे।

परन्तु आपने अपनेको स्वतन्त्रता के संग्राम में पुरुषों से कभी पीछे नहीं रक्खा। आप उनसे दो कदम आगे ही रहीं। डाण्डी-यात्रा के बाद गाँधीजी ने धरासना और वड़ाला के नमक के सरकारी भण्डारों पर धावा बोलने का निश्चय किया था। गाँधीजी की गिरफ्तारी के बाद वयोवृद्ध अब्बास तैयबजी ने उसका नेतृत्व किया था और उसके बाद उस ऐतिहासिक युद्ध का संचालन आपने किया। उसीमें आप २१ मई १९३० को गिरफ्तार करके यरवदा-जेल पहुँचा दी गईं। यरवदा-जेल में नेहरूद्वय को नैनी-जेल से लाकर सप्रू-जयकर के उद्योग से गाँधीजी के साथ सन्धि-चर्चा करने के लिए जो परिषद् हुई थी, उसमें आपको भी सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। गाँधी-अर्विन-समझौते के बाद जब काँग्रेस ने गोल-मेज़-परिषद् में सम्मिलित होना तय कर लिया, तब गाँधी-जी और मालवीयजी के साथ आपको भी दूसरी गोल-मेज़-परिषद् में सम्मिलित होने का निमन्त्रण मिला और वहाँ गाँधीजी का आपने पूरा साथ दिया। १९३१-३२ के आन्दोलन में भी आप गिरफ्तार होकर जेल गईं। अब आपको वृद्धावस्था ने आघेरा है और शरीर भी प्रायः गिरा रहता है। पीछे आपको आपरेशन भी कराना पड़ा था। इसपर भी आप राष्ट्रीय सेवा के मैदान में युवकों को भी लजानेवाले उत्साह के साथ बराबर लगी हुई हैं। भारतीय महिलाओं का काँग्रेस की कार्य-समिति में प्रतिनिधित्व करने का गौरव आपको ही प्राप्त है। चुनाव के दिनों में आपने अनेक प्रान्तों का दौरा विशेष तौर पर किया था। चीन को भेजे गये काँग्रेस-सेवा-दल को विदाई देने के लिए ३० अगस्त १९३८ को बम्बई में हुई सार्वजनिक-सभा के प्रधान-पद को आपने ही सुशोभित किया था।

भारत के स्वतन्त्रता-आन्दोलन के साथ अपनेको तन्मय कर देने और राजनैतिकक्षेत्र में अपना विशेष स्थान बना लेने पर भी आपको

राजनीतिज्ञ नहीं कहा जा सकता। राजनैतिक उलझनों को सुलझाने में आपने अपनेको कभी नहीं उलझाया। गाँधीजी में आपकी अगाध श्रद्धा, देश के भविष्य में आपका पूर्ण विश्वास और उसकी स्वतन्त्रता में आपकी गहरी लगन आपको बलात् राजनीति में खींच लाई है। आप स्वयं ही कहा करती हैं कि "महात्मा गाँधी कन्हैया हैं और मैं उनकी बाँसुरी हूँ।" १९२० से अबतक आपने असहयोग तथा सत्याग्रह की बाँसुरी बजाने का काम निरन्तर एकनिष्ठा से किया है। अपना हृदय पूरी तरह आपने गाँधीजी के हाथों में सौंपकर अपनेको उनकी प्रतिध्वनि-मात्र बना लिया है। यही कारण है कि काँग्रेस में व्याख्यानों का युग बीत जाने पर भी आपके व्याख्यानों का आकर्षण कुछ कम नहीं हुआ और कोरे व्याख्यान-दाताओं के पिछड़ जाने के बाद भी आप सबसे आगे खड़ी हुई हैं। काँग्रेस की अग्नि-परीक्षा में जहाँ अच्छे वाक्-शूर महारथी रह गये; वहाँ आप पूरी शान के साथ सफल हुईं। इस प्रकार देश-भक्ति और देश-सेवा का जो आदर्श आपने उपस्थित किया है, वह निश्चय ही देशवासियों में आशा और उत्साह का संचार सदा करता रहेगा।

: ३८ :

श्रीनिवास आयंगर

[११ सितम्बर १८७४]

इकतालीसवाँ अधिवेशन, गोहाटी—१९२६

श्रीयुत श्रीनिवास आयंगर योग्य पिता के योग्य पुत्र हैं। सांसारिक सुख-सम्पत्ति से परिपूर्ण सम्पन्न घर में, कट्टर वैष्णव परिवार में, आपका जन्म ११ सितम्बर १८७४ को मदुरा ज़िले के रामनद नगर में हुआ था। आपके पिता श्रीयुत शेषाद्रि आयंगर चोटी के वकील, अच्छे मालदार और पुराने कांग्रेसमैन थे। पहले वह कामेश्वर देवस्थान में वकील थे। रामनद और शिवगंगा के राजा उनकी क़ानूनी योग्यता से बहुत प्रभावित थे और १८६१ से १८६८ तक वह उन दोनों के एक अच्छी बड़ी तनख्वाह पर हाईकोर्ट और प्रिवी-कौंसिल के लिये लॉ-एजेण्ट रहे। १८६९ में वह रामनद के श्रीपुदुवाई पुन्नूसामी थावर के एजेण्ट होगये और उनकी मृत्यु के बाद पुत्रों के बड़ा होने तक उनकी जायदाद के एजेण्ट रहे। १८८० में मदुरा में आकर बस गये और वहांके ज़िला-बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट पीपुल एसोसियेशन और धार्मिक तथा शिक्षण-संस्थाओं के कार्यों में विशेष दिलचस्पी लेते रहे। मदुरा में हुई दसवीं मदरास प्रान्तिक कान्फ्रेंस में उन्होंने विशेष भाग लिया था। कांग्रेस के कई अधिवेशनों में भी सम्मिलित होते रहे थे। वह बहुत प्रभावशाली व्यक्ति थे। रामनद ज़िले के प्रमुख

ज़मींदार थे। ८५ वर्ष की वायु में अप्रैल १९१६ में उनका देहान्त हुआ था।

श्रीयुत श्रीनिवास आयंगर की शिक्षा का प्रवन्ध मदुरा में हुआ था और वहीं के कालेज से आपने एफ० ए० पास किया था। १८९५ में प्रेसिडेन्सी कालेज से आप वी० ए० हुए और १८९७ में वी० एल०। आप बहुत प्रतिभा-सम्पन्न विद्यार्थी समझे जाते थे। भारत के सुप्रसिद्ध जूरिस्ट अपने श्वसुर श्री वी० भाष्यम् आयंगर के एपरेण्टिस (शागिर्द) रहकर आपने वकालत का अभ्यास करना शुरू किया और शीघ्र ही उसमें दक्षता प्राप्त करली।

५ अप्रैल १८९८ को हाईकोर्ट के वकीलों मे आपका नाम लिखा गया और मदरास में आपने स्वतन्त्र रूप से वकालत शुरू की। क़ानून के सम्बन्ध में अपनी प्रतिभा और कुशाग्र बुद्धि के लिए आपने केवल श्री भाष्यम् से ही प्रशंसा प्राप्त नहीं की थी, वल्कि हाईकोर्ट के अन्य वकील और जज भी आपका लोहा मानते थे। जल्दी ही आपकी गणना चोटी के वकीलों में होने लगी और आपकी आमदनी भी खूब वढ़ गई। नट्टु कोटाई चेट्टी के वड़े-वड़े ज़मींदार आपको निरन्तर अपना वकील नियुक्त किया करते थे और अवतक भी जमींदारी के मामलों में आपकी सम्मति वरावर लेते रहते हैं।

ज़नवरी १९१६ में आप पहले अस्थायी और वाद में जल्दी ही स्थायी तौर पर एडवोकेट-जनरल वना दिये गये। 'सी० आई० ई०' की उपाधि भी आपको दी गई। १७ फरवरी १९२० को आपने एडवोकेट-जनरल के कार्य से इस्तीफा दे दिया और वैसा करते हुए आपने इतना ही कहा कि "यह मेरा व्यक्तिगत कार्य है। इसको मैंने केवल आत्मसंतोष के लिए किया है।" आप नौकरशाही के शासन को अपनी भावना और जनता के हितों के विरुद्ध समझते थे। उससे सव सम्बन्ध विच्छेद कर

आप देश के सार्वजनिक जीवन में पुनः प्रवेश करना चाहते थे। उस अवसर पर श्री कस्तूरी रंगा आयंगर और वी० पी० माधवराव के उद्योग से आपके सम्मान में जिस सभा का आयोजन किया गया था, उसमें आपने कहा था कि "काँग्रेस के प्रति मेरी एकनिष्ठ भक्ति है।"

मदरास प्रान्तिक लेजिस्लेटिव कौंसिल में आप सरकार के 'चीफ़ लॉ ऑफ़िसर' के नाते भाग लिया करते थे। १९२१ में आप मदरास यूनिवरसिटी की ओर से उसके सभासद चुने गये थे। उसमें दिये गये आपके भाषणों की वड़ी सराहना हुआ करती थी। १९१२ से १६ तक आप मदरास यूनिवरसिटी की सिनेट के सभासद् चुने जाते रहे। १९१६ से १९१९ तक उसके 'एक्स ऑफिशिओ' सभासद् रहे और १९१९ में आप फिर उसके सभासद् चुने गये। १९२० में टिनेवैली में हुई प्रान्तीय कान्फ्रेन्स के आप सभापति चुने गये। काँग्रेस के नेताओं की गिरफ्तारी के प्रतिवाद में आपने दिसम्बर १९२१ में 'सी० आई० ई०' का ख़िताब लौटा दिया था और मदरास प्रान्तिक कौंसिल से भी त्यागपत्र दे दिया था।

आप वहुत पुराने काँग्रेसवादी हैं। १८९९ मे मदरास में हुई काँग्रेस में आप पहली वार शामिल हुए थे। उसके वाद आप प्रायः सदा ही काँग्रेस में शामिल होते रहे हैं। १९१४ में मदरास में हुए काँग्रेस के अधिवेशन के मंत्रियों में से आप एक थे और उसको सफल वनाने के लिए आपने विशेष यत्न किया था। उसके वाद आप ऑल-इण्डिया-काँग्रेस-कमेटी के सभासद् चुने गये। १९१५ में वम्वई में हुई काँग्रेस में स्थायी फण्ड के लिए रुपया जमा करने को एक उपसमिति वनाई गई थी, जिसके सुरेन्द्रनाथ वनर्जी, भूपेन्द्रनाथ वसु, समर्थ, वाचा और मालवीयजी के साथ आप भी सभासद् वनाये गये थे।

काँग्रेस में पुनः प्रवेश करने के वाद से आपकी यह दृढ़ सम्मति रही

है कि काँग्रेस में साम्प्रदायिक हितों की दृष्टि से काम नहीं होना चाहिए और न उसमें एक प्रकार के बहुमत का ही आधिपत्य होना चाहिए। सत्याग्रह या निष्क्रिय प्रतिरोध की ओर आपका झुकाव कभी नहीं रहा। यद्यपि १९२० के बाद काँग्रेस में गाँधीजी के विचारों का ही बोलबाला रहा है, किन्तु आप कभी भी अपना मत प्रकट करने में नहीं चूके। अपनी स्वतन्त्र और स्पष्ट सम्मति आप सदा प्रकट करते रहे हैं। दिसम्बर १९२२ में गया-काँग्रेस में जब देशबन्धु दास की ओर से कौंसिल-प्रवेश का कार्यक्रम उपस्थित किया गया था, तब आपने यह संशोधन पेश किया था कि कौंसिलों के चुनाव की लड़ाई तो लड़ी जाय, किन्तु वहाँकी कुर्सियों को सदा खाली रक्खा जाय। आपका वह संशोधन स्वीकार नहीं किया गया था। पर, जब काँग्रेस के दिल्ली के विशेषाधिवेशन द्वारा यह तय हो गया कि चुनाव काँग्रेस-स्वराज्य-पार्टी की ओर से लड़े जा सकते हैं, तब आप अपना मतभेद भुलाकर उसमें शामिल होगये। उसके बाद आपने ठीक उसी प्रकार मदरास-कारपोरेशन का चुनाव लड़कर उसको हस्तगत किया, जैसे देशबन्धु दास ने कलकत्ता-कारपोरेशन को किया था। प्रान्तीय कौंसिल के चुनाव में भी आपने उसी प्रकार सफलता प्राप्त की। जस्टिस पार्टी का उन चुनावों में पूरी तरह पराजित होना आपके ही उत्साह, प्रयत्न और संगठन-शक्ति का परिणाम था। १९२६ में आप मदरास शहर की ओर से लेजिस्लेटिव असेम्बली के सभासद् चुने गये। वहाँ आप पण्डित मोतीलालजी नेहरू के नेतृत्व में काम करने-वाले विरोधी दल के डिप्टी-लीडर थे। आपके प्रस्ताव पर सरकार ने 'स्टाकहोल्डर्स बैंक' खोलना स्वीकार कर लिया था। जब लाहौर में काँग्रेस ने फिर से कौंसिलों के बहिष्कार का निश्चय किया, तब आपने भी असेम्बली से त्यागपत्र दे दिया।

आपके व्यक्तित्व, त्याग और सेवाओं के फलस्वरूप देशवासियों ने १९२६ में गौहाटी में हुई काँग्रेस का सभापति चुनकर आपको सम्मानित किया। वहाँ अपने भाषण में आपने कहा था कि "राष्ट्र-निर्माण के हमारे सब प्रयत्न स्वावलम्बन की भावना से प्रेरित होकर राष्ट्र-विरोधी कार्यों के प्रतिरोध के लिए होने चाहिएँ।" सरकारी पद स्वीकार करने के आप विरोधी थे और आपने यह प्रकट किया था कि वैसा करने से हम नौकर-शाही के पूरे सहयोगी होजायँगे। कौंसिल-प्रवेश के कार्य का उद्देश्य आपकी दृष्टि में केवल सरकार के राष्ट्र-घातक कार्यों का विरोध करना ही नहीं था, किन्तु काँग्रेस-अनुमोदित राष्ट्र-हितकारी कार्यों का सरकार से स्वीकार कराना भी था। जनता की शिकायतों का अनुसन्धान करना भी आपकी सम्मति में काँग्रेस-कार्यक्रम का एक अंग होना चाहिए था। विधायक कार्यक्रम पर अमल करने, वेकारी को दूर करने, श्रमजीवियों की शिकायतों का प्रतिकार करने, देशी रियासतों का दुविधापन्न अवस्था से उद्धार करने तथा प्रवासी भारतीयों की असुविधाओं को मिटाने की ओर भी आपने काँग्रेस का ध्यान आकर्षित किया था और काँग्रेसवादियों की एकता के लिए ज़ोरदार अपील भी की थी।

हिन्दू-मुस्लिम एकता को हल करने के लिए आप अत्यन्त उत्सुक थे और उसीके लिए आपने सारे देश का दौरा विशेष उत्साह के साथ किया था। मई १९२७ में वम्बई में महासमिति की वैठक में आपने एक विस्तृत योजना पेश की थी, जिससे सहमत होकर सिवा सिन्ध के अन्य सब लोगों ने संयुक्त-निर्वाचन को स्वीकार कर लिया था। स्वर्गीय सर अलीइमाम ने उस योजना की वहुत सराहना की थी। २७ अक्तूबर १९२७ को महासमिति द्वारा आयोजित एकता-परिषद् का आपने उद्घाटन किया था। उस अवसर पर आपने एक वार फिर हिन्दू-मुस्लिम एकता

की समस्या को हल करने की अपने जीवन की महान् अभिलाषा को प्रकट किया था। उस परिषद् द्वारा स्वीकृत एकता-सम्बन्धी प्रस्ताव को महा-समिति ने भी स्वीकार कर लिया था।

१९२८ में साइमन-कमीशन के मदरास आने पर काँग्रेस के आदेशानुसार उसके वाहिष्कार के लिए आपने काले झण्डों का जलूस संगठित करके उसका स्वयं नेतृत्व किया था। उसी वर्ष की गर्मियों में आपका स्वास्थ्य गिर गया और डाक्टर की सलाह से आप वायु-परिवर्तन के लिए यूरोप गये। इंग्लैण्ड में आपने भारत-सम्बन्धी विविध विषयों पर वहाँके नेताओं के साथ विचार-विनिमय किया। फ्रान्स, जर्मनी, स्वीज़रलैण्ड और इटली आदि देशों में भी आप गये। आयर्लैण्ड में आप श्री डी. वैलरा के अतिथि हुए। जिनेवा में आपने एक महत्वपूर्ण भाषण दिया। रूस म बतौर राजकीय अतिथि के आपका स्वागत किया गया और वहाँ सरकार के मेहमान होकर रहे। स्टेलिन के साथ आपने राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक विषयों पर बातचीत की। सभी जगह आपका हार्दिक स्वागत हुआ। १९२८ की सरदियों में आप स्वदेश लौटे। १९३० तक आप तामिनाड प्रान्तिक काँग्रेस कमेटी के प्रधान रहे।

जब आप विलायत से लौटे तभी नेहरू-रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी, जिसमें आपके द्वारा प्रस्तुत हिन्दू-मुस्लिम एकता की योजना को उलट दिया गया था। शौकतअली और जिन्ना भी उसपर बिदक गये थे। उनको मिलाने के लिए आपने फिर प्रयत्न किया, किन्तु सफल नहीं हुए।

१९२८ में कलतत्ता में हुई काँग्रेस में नेहरू-रिपोर्ट के सम्बन्ध में गाँधीजी ने समझौते का जो प्रस्ताव उपस्थित किया था, उसके आप विरोधी थे, किन्तु अन्त में उनसे सहमत होकर आपने उनके प्रस्ताव का अनुमोदन किया था। १९२९ में लाहौर-काँग्रेस में भी आप सम्मिलित हुए

थे, जिसमें पूर्ण स्वाधीनता का वह प्रस्ताव पास किया गया था जिसके लिए आप १९२७ से आन्दोलन करते आ रहे थे। फिर से सत्याग्रह शुरू करने के लिए गाँधीजी के डिक्टेटर बनाये जाने का आपने विरोध किया, क्योंकि सत्याग्रह में आपका विश्वास नहीं था। कार्य-समिति के चुनाव को लेकर काँग्रेस के नेताओं में परस्पर कुछ मतभेद पैदा होगया था। उस चुनाव से भी आप असहमत और असंतुष्ट थे। इसीसे श्री सुभाषचन्द्र बोस के साथ मिलकर आपने 'काँग्रेस डेमोक्रेटिक पार्टी' की स्थापना की। काँग्रेस के सत्याग्रह में लग जाने पर आप उससे उदासीन होगये और आजतक वैसे ही उदासीन बने हुए हैं। १९३४ में सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित होकर जब प्रान्तीय कौंसिलों के चुनाव लड़ने का काँग्रेस ने निश्चय किया, तब आपके भी फिर सार्वजनिक क्षेत्र में लौट आने की आशा थी। लेकिन आपकी उदासीनता भंग नहीं हुई।

आप जैसे राष्ट्रवादी हैं, वैसे ही समाज-सुधारक भी हैं। 'मदरास सोशल रिफार्म एसोसिएशन' के आप कुछ समय तक सभापति थे। सर शंकरन नायर के साथ मिलकर आपने रजोदर्शन के बाद विवाह करने, सामाजिक समता को क़ायम करने और जातीय बन्धनों को ढीला करने के लिए आन्दोलन किया था। स्वामी श्रद्धानन्दजी ने अस्पृश्यता-निवारण के लिए १९२३-२४ में जब दक्षिण-भारत का दौरा किया था, तब आपने उनका विशेष रूप से साथ दिया था। अनेकों समाज-सुधारक सभाओं, सम्मेलनों और परिषदों के आप सभापति रह चुके हैं। दक्षिण में हिन्दी-प्रचार के साथ भी आपकी सहानुभूति है। शिक्षण और औद्योगिक पुनरुत्थान में आपकी विशेष रुचि है। गोखले की स्मृति में मदरास-विश्वविद्यालय को, मालवीयजी के आग्रह पर हिन्दू-विश्वविद्यालय को और गाँधीजी के अनुरोध पर चरखा-संघ को आपने १०-१० हजार का दान

दिया है। अन्य सार्वजनिक संस्थाओं को भी आप समय-समय पर सहायता देकर अपनी उदारता का परिचय देते रहे हैं।

१९०७ में आपने 'लॉ रिफार्म' पर एक मौलिक व अपूर्व पुस्तक लिखी थी और १९२७ में 'स्वराज्य-विधान' पर आलोचनात्मक वैसी ही एक और पुस्तक लिखी। अपनी पहली पुस्तक में आपने संयुक्त परिवार की वर्तमान प्रथा और सम्पत्ति के उत्तराधिकार की मिताक्षरा-पद्धति में परिवर्तन करने पर ज़ोर दिया है।

आपके महान् व्यक्तित्व, त्याग एवं संगठन-शक्ति की ओर अवतक भी आपके देशवासियों विशेषतः दक्षिण-भारत के लोगों की आँखें लगी हुई हैं और वे आपको एकवार फिर नेता के रूप में कार्य-क्षेत्र में खड़ा हुआ देखना चाहते हैं। कई वर्षों के बाद काँग्रेस के प्रतिज्ञापत्र (ध्येय) पर हस्ताक्षर करके और वयोवृद्ध श्री विजयराघवाचार्य की सार्वजनिक सेवाओं के सुवर्णजयन्ती-समारोह का सभापतित्व करके आपने उस आशा को पूरा करने के कुछ लक्षण भी प्रकट किये थे।

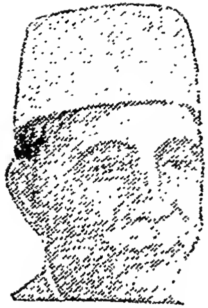

: ३६ :

मुख़्तारअहमद अन्सारी

[१८८०—१९३६]

बयालीसवाँ अधिवेशन, मदरास—१९२७

"भाग्यों का चक्र यह है कि एक मुसलमान ने उन्हें मौत के मुंह से बचाया और दूसरे ने तमंचे के घाट उतार दिया। परमात्मा की लीला ऐसे ही रूपों में अपनेको प्रकट किया करती है। डा० अन्सारी और अब्दुलरशीद मनुष्य-जाति के रोशन और स्याह पहलुओं के दो नमूने हैं।" ये शब्द दिवंगत स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज के बलिदान के बाद कहे गये थे और इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्यत्व के जितने भी सद्गुण हैं, वे सब डा० अन्सारी में आवश्यकता से अधिक मात्रा में विद्यमान थे। सहृदयता, सज्जनता और सरलता की आप मूर्त्ति थे। दुखियों के लिए दर्द, ग़रीबों के लिए ममता और बीमारों के लिए सहानुभूति से आपका हृदय भरा हुआ था। निराशापूर्ण भयानक बीमारी में स्वामी श्रद्धानन्दजी अपनेको डाक्टर अन्सारी के हाथों में पूरी तरह सुरक्षित समझा करते थे। इसी प्रकार गाँधीजी ने अपने लम्बे उपवास की कठोर अग्नि-परीक्षा के समय, जब कि सारे देश की आँखें पूना की पर्णकुटी की ओर लगी हुई थीं, ठीक ही कहा था कि डाक्टर अन्सारी की गोद में मेरा जीवन सुरक्षित है। स्वामी श्रद्धानन्द और गाँधीजी के इस अनुभव को राष्ट्र की दृष्टि से इन शब्दों में कहा जा सकता है कि डाक्टर अन्सारी

के हाथों में राष्ट्र का भविष्य सुरक्षित था। डाक्टर अन्सारी खरे देश-भक्त और पक्के राष्ट्रवादी थे। साम्प्रदायिकता की गंध तक से आप कोसों दूर थे। शुद्धि-संगठन और तंजीम-तबलीग की गंदी हवा ने जब सारे देश में साम्प्रदायिकता की दुर्गन्ध फैला दी थी, तब आप राष्ट्रीयता की चट्टान पर दृढ़ता के साथ खड़े रहे थे। यदि कहीं आपमें देशबन्धु की विद्रोही वृत्ति और मोतीलालजी की सर्वस्व-त्याग की भावना होती, तो राष्ट्र-निर्माताओं में आपका स्थान बहुत ऊँचा होता। फिर भी आपने जो गौरव प्राप्त किया, वह अनायास ही नहीं मिल गया था। वह आपकी राष्ट्रसेवा का सर्वथा उपयुक्त पुरस्कार था।

आपका जन्म २५ दिसम्बर १८८० में संयुक्तप्रान्त के गाज़ीपुर ज़िले के यूसुफपुर गाँव में एक दौलतमंद ज़मींदार हाजी अब्दुलरहमान के यहाँ हुआ था। छोटी आयु में आपकी शिक्षा बनारस में हुई। इलाहाबाद में एफ० ए० पास करने के बाद आप निज़ाम-कालेज हैदराबाद (दक्षिण) में जाकर दाखिल होगये और मदरास-यूनिवरसिटी से आपने बी० ए० पास किया। विदेश जाकर पढ़ने के लिए निज़ाम-रियासत से वजीफ़ा मिलने पर आप १९०० में उच्च शिक्षा के लिए विलायत चले गये। एडिनबरा-यूनिवरसिटी से एम० डी० व एम० एस० और लन्दन-यूनिवरसिटी से एल० आर० सी० पी० की डिग्रियाँ प्राप्त करके आपने लन्दन में ही काम शुरू कर दिया। आप पहले हिन्दुस्तानी थे, जिनको लन्दन के अस्पतालों में 'हाउस-सर्जन' नियुक्त किया था। चेयरिंग क्रास अस्पताल में आपने 'हाउस-सर्जन,' लाक अस्पताल में 'रेज़िडेण्ड मेडिकल अफसर' और सेण्ट पीटर्स अस्पताल में 'क्लिनिकल एसिस्टेण्ट' का काम लगभग सात-आठ वर्ष किया। १९११ में स्वदेश लौटकर दिल्ली में आपने डाक्टरी का धन्धा शुरू कर दिया। एकाएक आप उसमें सुप्रसिद्ध होगये। चारों ओर से

बीमार आपके पास आने लगे। अनेक देशी रियासतों के राजाओं, महाराजाओं और नवावों के आप फेमिली डाक्टर बन गये। बीमारों की इतनी भीड़ रहने लगी कि कई बीमार ७-७, ८-८ दिनों तक आपसे मिलने के लिए प्रतीक्षा में बैठे रहते। इसपर भी किसी बीमार को टालते नहीं थे। पूरा ध्यान और समय लगाकर हरेक बीमार को देखते। आधी बीमारी तो आपके देखने मात्र से दूर होजाती। राजनैतिक अथवा सार्वजनिक कार्य करनेवाले बीमारों के प्रति आपकी विशेष सहानुभूति रहती। आपकी गिनती अपने समय के देश के उच्चकोटि के चार-पाँच डाक्टरों में की जाती थी।

सार्वजनिक जीवन का अनुराग आपमें विद्यार्थी-अवस्था में ही पैदा होचुका था। १८९९ में जब आप मदरास में मैडिकल कालेज के छात्र थे, तभी आप पहली बार काँग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे। १९११ में दिल्ली में प्रैक्टिस शुरू करने के साथ ही आप सार्वजनिक कार्यों में योगदान देने लग गये थे। प्रैक्टिस के समान ही राजनैतिक क्षेत्र में भी अग्रणी नेताओं में स्थान प्राप्त करने में आपको अधिक समय नहीं लगा। १९१२-१३ में टर्की-बालकन-युद्ध के समय 'आल इण्डिया मेडिकल मिशन' आपके नेतृत्व में टर्की भेजा गया था। १९१७-१८ में होमरूल के आन्दोलन में भी आपने प्रमुख भाग लिया था। १९१५ में अली-बन्धुओं और मौलाना आज़ाद आदि के नजरबन्द किये जाने पर 'नजरबन्द सहायक फण्ड' खोला गया था, जिसके आप ही सभापति थे। १९१८ में दिल्ली में काँग्रेस के साथ आलइण्डिया मुस्लिम-लीग का जो अधिवेशन हुआ था, आप उसके स्वागताध्यक्ष थे। आपका स्वागत-भाषण सरकार द्वारा ज़ब्त कर लिया गया था। १९१९ में गांधीजी ने रौलेट एक्ट के विरुद्ध जब सत्याग्रह-आन्दोलन शुरू किया था, तब उसमें आपने गांधी-

जी का पूरा साथ दिया। उस वर्ष मार्च-अप्रैल में दिल्ली में भयानक किन्तु गौरवपूर्ण जो घटनायें घटी थीं, उनमें आपका भी यशस्वी हाथ था। अमृतसर की काँग्रेस में भी आप सम्मिलित हुए थे और उसके बाद प्रायः सभी अधिवेशनों में उपस्थित होकर उनकी कार्यवाही में प्रमुख भाग लेते रहते थे। गया में १९२३ में काँग्रेस के साथ होनेवाली खिला-फत-कान्फ्रेंस के आप सभापति हुए थे। १९२३ में काँग्रेस द्वारा नियुक्त सत्याग्रह जाँच कमेटी के आप भी सभासद थे। आपने कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध सत्याग्रह एवं विधायक कार्यक्रम के पक्ष में अपना मत प्रकट किया था। १९२२ में दिल्ली में हुए काँग्रेस के विशेषाधिवेशन की स्वागत-समिति के आप अध्यक्ष हुए थे। अपने उस भाषण में आपने सत्याग्रह-जाँच-कमेटी की रिपोर्ट में पेश किये विचारों को ही विस्तार के साथ प्रकट किया था।

हिन्दू-मुस्लिम-एकता में आपकी दृढ़ आस्था और पूर्ण विश्वास था। पारस्परिक सन्देह, अविश्वास और मतभेद को दूर करके दोनों को एक करने के यत्न में आप सदा लगे रहते थे। गया में खिलाफत-कान्फ्रेंस के अध्यक्ष-पद से दिये गये अपने भाषण में आपने कहा था कि देश में एक ऐसा जातीय संगठन बनाया जाना चाहिए, जिससे परस्पर विवादात्मक धार्मिक तथा सामाजिक मामलों को राष्ट्रीय जीवन से अलग कर दिया जाय। काँग्रेस के १९२३ के विशेषाधिवेशन के स्वागताध्यक्ष-पद से दिये गये अपने भाषण में आपने अपने उक्त विचारों को फिर से दोहराया था और उस समय के साम्प्रदायिक दंगों की तीव्र आलोचना करते हुए आपने कहा था कि "अभी भी मामला बिगड़ा नहीं है। मैं आशावादी हूँ और आशा करता हूँ कि यदि हमने साम्प्रदायिक समस्या को हल करने का निश्चित तौर पर प्रयत्न किया, तो हम कृतकार्य होंगे। मैंने यह कई बार कहा है और अब भी हृदय से कहता हूँ कि मैं इसको हल करने का

काम अपने हाथ में ले सकता हूँ।" १९२३ में स्वर्गीय लाला लाजपत-रायजी के साथ मिलकर आपने एक साम्प्रदायिक समझौता तैयार किया था, जिसको 'लाजपत-अन्सारी-पैक्ट' नाम दिया गया था। १९२४ में गाँधीजी के उपवास के बाद मोतीलालजी के सभापतित्व में दिल्ली में जो एकता-सम्मेलन हुआ था, उसके संयोजकों में आप भी एक थे। उसके बाद १९२७-२८ में नेहरू-रिपोर्ट के रूप में और १९३२ में माल-वीयजी द्वारा किये गये उद्योग में भी आपने पूरा हाथ बटाया था। अपने समाज में राष्ट्रीय भावों को उद्दीप्त करने और सम्प्रदायवादियों की राष्ट्रविरोधी करतूतों का सामना करने के लिए आपने 'राष्ट्रीय-मुस्लिम-दल' की स्थापना की थी।

आपकी इन सब सेवाओं के पुरस्कारस्वरूप देशवासियों ने १९२७ में मदरास में होनेवाले काँग्रेस के अधिवेशन का आपको सभापति चुना। अपने भाषण में आपने साम्प्रदायिक समझौते की विशेष चर्चा की। असह-योग-आन्दोलन के बारे में आपने कहा था कि "असहयोग असफल नहीं हुआ, हम ही असहयोग के लिए असफल हुए हैं।" उस अधिवेशन का महत्वपूर्ण निश्चय साइमन-कमीशन के बहिष्कार का था। पूर्ण स्वतंत्रता को काँग्रेस का ध्येय बना देने के सम्बन्ध में भी उस अधिवेशन में अच्छी चर्चा हुई थी। ब्रिटिश माल के बहिष्कार का प्रस्ताव भी उसमें स्वीकृत किया गया था। आपकी दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रस्ताव वह था जिसके द्वारा स्वराज्य का विधान तैयार करने का अधिकार कार्य-समिति को दिया गया था। उसी प्रस्ताव के परिणामस्वरूप 'नेहरू-रिपोर्ट' तैयार की गई थी, जिसके बनाने में आपने पूरा सहयोग दिया था। काँग्रेस-कार्यसमिति के आप उसके बाद प्रायः सदा ही सभासद रहे और उसकी मन्त्रणाओं में हमेशा प्रमुख भाग लेते रहे।

१९३० के सत्याग्रह-आन्दोलन में आप अपने ही मकान पर दिल्ली में कांग्रेस की ग़ैरकानूनी कार्य-समिति की वैठक करते हुए २७ अगस्त को गिरफ्तार किये गये थे। उस समय कार्य-समिति के आप ही सभापति या राष्ट्रपति थे। मालवीयजी, प्रेसिडेण्ट पटेल और डाक्टर विधानचन्द्र राय आदि भी आपके साथ ही गिरफ्तार किये गये थे। छः मास की आपको सज़ा हुई थी। गाँधी-अर्विन-पैक्ट के निमित्त से आप २५ जनवरी १९३१ को रिहा किये गये थे। उस पैक्ट की चर्चा के दिनों में आपका मकान राष्ट्र का अतिथि-गृह और राष्ट्रनायक गाँधीजी का निवासस्थान होने से राष्ट्रीय मन्त्रणा-गृह वना हुआ था। कार्य-समिति की लम्वी-लम्बी वैठकें और नेताओं का सब सलाह-मशविदा आपके ही यहाँ होता था। सरकार की दृष्टि से वाइसराय-भवन को जो महत्व प्राप्त था, राष्ट्र की दृष्टि से उन दिनों में वह महत्व आपके मकान को प्राप्त था।

गाँधी-अर्विन-पैक्ट के वाद आप मुसलमानों में राष्ट्रवाद का प्रचार करने के लिए 'राष्ट्रीय मुस्लिम दल' सुसंगठित करने में लग गये। उन दिनों में फ़रीदपुर (बंगाल) में राष्ट्रीय मुस्लिम दल की कान्फ्रेंस और लाहौर में पंजाब के राष्ट्रीय मुस्लिम दल की वैठक में सभापति की हैसियत से जो भाषण आपने दिये थे, वे बहुत महत्वपूर्ण थे। हिन्दू-मुस्लिम पैक्ट बनाने के लिए काँग्रेस की कार्य-समिति ने एक उपसमिति वनाई थी, आप भी उसके सभासद थे। उसने जो समझौता तैयार किया था, उसे साम्प्रदायिक मुस्लिम नेताओं से स्वीकार कराने के लिए आपने कोई वात उठा न रक्खी थी। मौलाना शौकतअली और सर मुहम्मद इकवाल सरीखों को भी आपने उससे सहमत कर लिया था। १९३१ के अन्त में मुसलमान नेताओं की एक कान्फ्रेंस बुलाकर आप उसको उनकी

ओर से गाँधीजी के सामने पेश करने की तैयारी में थे कि १९३२ का आन्दोलन शुरू होगया और आपका यत्न अधूरा ही रह गया।

राष्ट्रवादी मुसलमानों के माने हुए नेता होने पर भी दूसरी गोलमेज-परिषद् के लिए आपको निमन्त्रित नहीं किया गया था। साम्प्रदायिक-मुस्लिम-नेताओं को चुन-चुनकर बटोरा गया था और राष्ट्रवादियों की पूर्ण उपेक्षा की गई थी। सरकार के इस कार्य पर विक्षोभ प्रकट किया गया और उसकी निन्दा की गई। गाँधीजी ने विलायत जाकर भी आपकी अनुपस्थिति को अनुभव किया और आपको निमन्त्रित कराने के लिए यत्न भी किया, किन्तु सफलता नहीं मिली। सरकार द्वारा की गई उस उपेक्षा से आपकी लोकप्रियता में चार चाँद और लग गये।

१९३२ के आन्दोलन के प्रारम्भिक दिनों में ही मौलाना मुहम्मदअली की बरसी की सभा में आपका भाषण हुआ और दूसरे दिन आप गिरफ्तार कर लिये गये। छः मास की सजा हुई। जेल में आपकी सेहत कुछ बिगड़ गई। इसलिए जेल से छूटने पर आप विलायत गये। वहाँ आप चुप नहीं रहे। हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में आपने वहाँ विशेष आन्दोलन किया।

गाँधीजी के प्रति आपका प्रेम अगाध है। १९२४ में दिल्ली में गाँधीजी ने जब २१ दिन का उपवास किया, तब हकीमजी और स्वामी श्रद्धानन्दजी तो अपनी आस्तिकता में लीन रहकर भगवान पर भरोसा रखने की सबको सलाह दिया करते थे, किन्तु आप प्रेम-विह्वल हो दवा लेने के लिए गाँधीजी के पीछे पड़ जाते थे। आपकी वह विह्वलता गाँधीजी के प्रति आपके अनुराग का परिणाम थी। पूना में किये गये उपवास के समय भी आपकी वैसी ही अवस्था थी।

जुलाई १९३३ की पूना-परिषद् के बाद कौंसिल-प्रवेश-वादियों की संख्या देश में बढ़ने लगी और सत्याग्रह स्थगित करके, १९३३-३४ में

देशबन्धु दास ने जैसे 'स्वराज्य-दल' का संगठन किया था वैसा ही, एक दल बनाकर कौंसिलों का कार्यक्रम शुरू करने की चर्चा की जाने लगी। १९२३ में कौंसिल-प्रवेश के आप कट्टर विरोधी थे, किन्तु अब ३१ मार्च १९३४ को आपके ही मकान पर आपके ही सभापतित्व में कुछ नेताओं की सभा होकर 'स्वराज्य-दल' को फिर से संगठित करने का निश्चय किया गया। राँची में २-३ मई को इसी सम्बन्ध में नेताओं का एक सम्मेलन और हुआ और १८-१९ मई को पटना में महासमिति की बैठक होकर काँग्रेस पार्लमेण्टरी बोर्ड की स्थापना की गई। आपको उसका अध्यक्ष बनाया गया और मालवीयजी के साथ आपको उसको संगठित करने का कार्य सौंपा गया। बम्बई की काँग्रेस से महासमिति के इन निश्चय को स्वीकार कराने और असेम्बली के चुनाव की लड़ाई में काँग्रेस को शानदार विजय प्राप्त कराने के लिए आपने विशेष उद्योग किया था। यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है कि कौंसिल-प्रवेश के लिए इतना आन्दोलन करने और असेम्बली के लिए आपके निर्विरोध चुने जाने का पूरा अवसर होने पर भी आप उससे दूर ही रहे।

शिक्षा के क्षेत्र में भी आपकी सेवायें उल्लेखनीय हैं। अलीगढ़-यूनिवरसिटी के संचालन में आपका प्रधान हाथ है। उसमें एक दल के आप नेता हैं, जिसकी दूसरे दल के साथ खींचतान प्रायः बनी रहती है। असहयोग के दिनों में अलीगढ़ में मुस्लिम नेशनल यूनिवरसिटी (जामिया मिलिया इस्लामिया) की स्थापना में आपका प्रमुख हाथ था। जुलाई १९२५ में उसके दिल्ली आजाने के बाद से तो आप उसके प्रधान कर्णधार रहे। उसको उन्नत बनाने का यत्न आप बराबर करते थे। इण्डियन मैडिकल एसोसिएशन के संचालन में भी आपका प्रधान हिस्सा था। उसके एक वर्ष आप सभापति भी रह चुके थे।

सेहत के कारण सार्वजनिक जीवन से १९३५ के अप्रैल मास से आप फिर अलग-से होगये थे। उसके बाद आपका स्वास्थ्य निरन्तर गिरता चला गया। १० मई १९३६ के सवेरे मसूरी (देहरादून) से दिल्ली आते हुए आधी रात बाद गाड़ी में बिजनौर के पास आपके हृदय की गति रुकने से आपका एकाएक देहावसान होगया। दिल्ली में यह समाचार अचानक ही पहुँचा और चारों ओर शोक छा गया। दिल्ली के दो महान् राष्ट्रवादी नेताओं और भूतपूर्व राष्ट्रपतियों का देहावसान प्रायः एक ही-सी अवस्थाओं में एक ही कारण से हुआ। हकीमजी रामपुर के वर्तमान नवाब के पिता को देखने रामपुर गये थे। रास्ते में लौटते हुए मोटर में उनके हृदय की गति बन्द होने से देहान्त होगया था। आप भी मसूरी रामपुर के नवाब को देखने गये थे। वहाँसे लौटते हुए गाड़ी में आपका स्वास्थ्य एकाएक बिगड़ गया। कोई अच्छा डाक्टर नहीं मिल सका। जो सम्भव था, वहाँ औषधोपचार किया गया; पर व्यर्थ साबित हुआ। ११ मई को शव दिल्ली लाया गया। दरियागंज की कोठी से शव जामा मस-जिद लाया गया। वहाँ नमाज़ पढ़ने के बाद शव ओखला लेजाकर जामिया मिलिया के मैदान में दफना दिया गया। १७ मई को सारे देश में 'अन्सारी-दिवस' मनाकर आपके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की गई। आपकी मृत्यु से एक पक्का राष्ट्रवादी, कुशल डाक्टर और साम्प्रदायिक मामलों में गाँधीजी एवं काँग्रेस का विश्वासपात्र सलाहकार उठ गया।

: ४० :

मोतीलाल नेहरू

[१८६१—१९३१]

चौंतीसवाँ अधिवेशन, अमृतसर—१९१९
तेंतालीसवाँ अधिवेशन, कलकत्ता—१९२८

"मैं रोग से लड़ूँगा, मैं मृत्यु से लड़ूँगा और मैं दासता-रूपी दानव से लड़ूँगा।.........भारत के भाग्य का निर्णय स्वराज्य-भवन में करो। मेरे सामने करो। मेरी मातृभूमि के अन्तिम सम्मानपूर्ण समझौते में मुझे भी भाग लेने दो। यदि मुझे मरना ही है, तो मैं स्वतन्त्र भारत की गोद में मरूँ। मैं अपनी नींद एक स्वतन्त्र देश में सोऊँ, पराधीन में नहीं।"—१९३०-३१ के सत्याग्रह-आन्दोलन में बीमारी के भयानक होजाने की वजह से ८ सितम्बर को आपको और देश में शासन-सुधारों के अनुकूल वातावरण पैदा करने तथा कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने के लिए २६ जनवरी १९३१ को कार्य-समिति के सब सदस्यों को रिहा कर दिया गया था। रिहा होते ही सब नेता आपको देखने के लिए प्रयाग गये। कार्य-समिति की बैठक कहाँ की जाय, इस विषय की चर्चा होने पर आपने जीवन की अन्तिम बीमारी की निराशापूर्ण अवस्था में ऊपर के शब्द कहे थे, जो देश की स्वतन्त्रता के लिए आपके हृदय में समाई हुई तीव्रतम भावना के द्योतक हैं और जिनसे आपके योद्धा-स्वभाव का पूरा परिचय मिलता है। आपके इस स्वभाव का लोहा सरकार भी मानती

थी। आपके देहावसान पर सरकार की ओर से समवेदना प्रकट करते हुए होम मेम्बर ने असेम्बली में कहा था—"उनका नेतृत्व प्रत्येक व्यक्ति पर प्रभाव डालनेवाला था। वह एक प्रसिद्ध वकील व वक्ता थे और प्रथम कोटि के नेता थे। इसलिए यह स्वाभाविक था कि वह जहाँ जाते थे, सबसे आगे की श्रेणी में रहते थे। उनकी तीव्र प्रतिभा, विवाद में चतुरता और युद्ध-कला में निपुणता ऐसी थी कि सरकार के लिए वह खतरनाक विरोधी थे।" गांधीजी के व्यक्तित्व ने देश का जो कायाकल्प किया है उसके श्री मोतीलालजी सर्वोत्कृष्ट उदाहरण थे और आपमें जो परिवर्तन हुआ था, उसके लिए 'आनन्द-भवन' को 'स्वराज्य-भवन' नाम देकर राष्ट्र को समर्पित कर देने की घटना की ओर संकेत कर देना बस है। आमोद-प्रमोद, सुख-वैभव और राजसी ठाठ-बाट में ही इस जीवन को सफल माननेवाले भी जिस समृद्धि की कल्पना तक नहीं कर सकते, उसपर 'आनन्द-भवन' की नींव डाली गई थी। १९१० में सुप्रसिद्ध पत्रकार सेण्ट निहालसिंह आपके यहाँ मेहमान थे। उस समय का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा था कि "उनके सुन्दर, गठित, विशाल मस्तक पर बाल किसी चतुर नाई द्वारा काटे और बड़ी होशियारी के साथ सँवारे गये थे। उनकी सब पोशाक ऊपर से नीचे तक पूरी अंग्रेजों की-सी थी। ऐसा मालूम होता था कि वह सब पोशाक अभी-अभी लन्दन की बाण्ड-स्ट्रीट के किसी दर्जीखाने से सिलकर आई है। 'आनन्द-भवन' का मद्य-भण्डार यूरोप के प्रसिद्ध मदिरालयों से कहीं अच्छा था।" आपकी पोशाक लन्दन में सिलती और पेरिस में धुलती थी। १९२१ के मध्य में वायु-परिवर्तन के लिए आप रामगढ़ गये थे, तब आपने गांधीजी को एक पत्र लिखा था। उस पत्र के पहले भाग में आपने अपनी यौवनावस्था के वैभव की दोपहरी का चित्र अंकित किया था और पिछले हिस्से में गांधीजी के

जादू में फँसकर फ़क़ीरी जीवन विताने की कहानी लिखी थी। वह सब वैभव आपका अपना बटोरा हुआ और ऐश्वर्य अपना कमाया हुआ था। रुपये-पैसे और सम्पत्ति की कुबेर-राशि जमा होजाने पर भी आपने ज़मींदारी में अपना रुपया नहीं लगाया। एक मित्र ने जब आपको वैसा करने की सलाह दी, तब आपने कहा-कि इस प्रान्त का कौन-सा मालगुजार या ताल्लुकेदार है, जिसकी ज़मींदारी का पैसा इस 'आनन्द-भवन' की नींव में नहीं डाला गया है? आप पहले दरजे के वकील थे, न केवल योग्यता में किन्तु पैसा कमाने में भी। ऐसे जीवन का परिवर्तन गाँधी-युग का एक चमत्कार है।

उस सब भोग, विलास, ऐश्वर्य और वैभव की राजसी माया को देश की स्वतन्त्रता की पुकार पर तिनके की तरह छोड़ देनेवाले मोती-लालजी का जन्म ६ मई १८६१ को दिल्ली में हुआ था। आपके पिता गंगाधरजी दिल्ली में कोतवाल थे और माता की गर्भावस्था में ही पिता का देहान्त होगया था। वड़े भाई नन्दलाल ने पितृवत आपका पालन किया। १२ वर्ष की आयु तक इस्लामी मकतब में फ़ारसी-अरबी सीखी। १८७३ में कानपुर के सरकारी स्कूल में भरती हुए। १८७९ में एन्ट्रेंस पास करके प्रयाग के म्योर कालेज में दाखिल हुए। आप बहुत प्रतिभा-सम्पन्न और तीव्रबुद्धि थे। १८८२ में आपने वकालत की परीक्षा पास की। २२ वर्ष की अवस्था में १८८३ में कानपुर में वकालत शुरू की। १८८६ में वकालत के लिए ही इलाहाबाद चले गये। वहाँ बड़े भाई नन्दलाल के साथ वकालत करने लगे। उन्हीं दिनों में आपने वह बंगला ख़रीदा, जिसका पहला नाम 'आनन्द-भवन' था और अब है 'स्वराज्य-भवन'। वकालत में नाम पैदा करने में आपको अधिक समय नहीं लगा। जज तक अपने फैसलों में आपकी योग्यता और वाक्‌चातुर्य्य की प्रशंसा

किया करते थे। समाचारपत्रों में भी चर्चा हुआ करती थी। १८९६ में हाईकोर्ट के जजों को एडवोकेट नियुक्त करने का जब अधिकार प्राप्त हुआ, तब जो चार एडवोकेट इलाहाबाद में नियुक्त किये गये थे उनमें आप सबसे छोटी आयु के थे। १९२१ में असहयोग-आन्दोलन में वकालत छोड़ने तक आप वकील-एसोसियेशन के सभापति रहे थे।

१८८८ में इलाहाबाद में काँग्रेस का चौथा अधिवेशन सर जार्ज यूल के सभापतित्व में हुआ था। आप उसमें पहली बार शामिल हुए थे। १८९२ में फिर इलाहाबाद में जो अधिवेशन हुआ, उसकी स्वागत-समिति के आप पदाधिकारी चुने गये थे। १९०३ में बम्बई की काँग्रेस में आप जवाहरलालजी के साथ शामिल हुए थे। १९०६ में नरम-गरम दल का झगड़ा काँग्रेस में पैदा होचुका था। तब आपने नरम-दल का साथ देकर काँग्रेस को उनके हाथों में से निकलने से बचाया। १९०७ और १९१३ में आप प्रान्तीय कान्फ्रेंसों के सभापति हुए थे। उग्र राजनीतिज्ञों की बहिष्कार तथा कानून-भंग आदि की नीति के आप विरोधी थे। इसलिए आपके भाषणों पर प्रायः असन्तोष प्रकट किया जाता था। सात वर्ष तक युक्तप्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के आप सभापति रहे थे। सेवा-समिति-प्रयाग के उपाध्यक्ष भी कई वर्षों तक रहे थे। समाज-सुधार-सम्मेलन का भी आपको सभापति चुना गया था। १९०९ में कई मित्रों के सहयोग से आपने संयुक्तप्रान्त के सुप्रसिद्ध पत्र 'लीडर' को जन्म दिया। 'लीडर' से आपको इतनी ममता थी कि आपने १९१० में पत्रों के विरुद्ध सरकारी दमन के दिनों में कहा था कि "मेरे मकान में एक ईंट के ऊपर दूसरी ईंट जबतक खड़ी है, तबतक मैं 'लीडर' की स्वतन्त्रता के अधिकार के लिए लड़ूंगा।" पीछे नीति-सम्बन्धी मतभेद के कारण आपने 'लीडर' से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया।

१९०९ में आप युक्तप्रान्तीय कौंसिल के सदस्य हुए। १९१७ में रुड़की के कालेज के गोरे प्रिंसिपल द्वारा भारतीय विद्यार्थियों के अपमान के प्रतिवाद-स्वरूप कौंसिल में आपने उसकी निन्दा का प्रस्ताव पेश किया। विवाद का प्रत्युत्तर देने का सरकार ने आपको अवसर नहीं दिया। तव आप कौंसिल से उठकर चले आये। गवर्नर और सर सुन्दरलाल के आग्रह पर आपने उसमें फिर जाना स्वीकार किया था। १९१८ में आपने माण्टफोर्ड-सुधारों का विरोध किया और अपनी एक स्वतन्त्र योजना भी उसमें पेश की थी। होमरूल-आन्दोलन का आपने पूरा समर्थन किया था। प्रान्तीय लीग के आप ही सभापति थे। 'पायोनियर' आपको 'होमरूल का विग्रेडियर जनरल' लिखा करता था। ५ फरवरी १९१८ को वसन्त के दिन आपने 'इण्डिपेण्डेण्ट' नाम से वहुत निर्भीक और ज़ोरदार दैनिक पत्र निकालना शुरू किया। उसकी उस समय चारों ओर धूम थी। सरकार ने प्रेस ज़ब्त कर लिया, तव वह हाथ से लिखकर निकाला जाने लगा था।

सब देश की मनोवृत्ति को वदल देनेवाली १९१९ की घटनाओं ने आपका दिल भी वदल दिया। महायुद्ध की सेवाओं के पुरस्कार में दिये गये रौलेट एक्ट, उसके विरोध में की गई सत्याग्रह की घोषणा और पंजाब में जारी किये गये फ़ौजी शासन के अनाचार ने आपको उद्विग्न कर दिया। आप नरम राजनीति का त्याग कर ऐसे गरम और उग्र राजनैतिक नेता बन गये कि कांग्रेस की वागडोर जीवन के अन्त तक किसी-न-किसी रूप में आपके ही हाथों में रही। कई वर्षों तक आप उसके प्रधान-मंत्री बने रहे और दो बार राष्ट्रपति हुए। आपकी ही अध्यक्षता में कांग्रेस की ओर से पंजाब-हत्याकाण्ड के लिए जाँच-कमेटी नियुक्त की गई थी। उस जाँच में और वैसे भी मर्माहत पंजाब की आपने जो सेवा

की थी, उसीका आभार मानते हुए आपको उस वर्ष अमृतसर में होने-वाली कांग्रेस का सभापति एकमत से चुना गया था। १९१८ में भी यह सम्मान आपको सौंपा गया था, किन्तु बीमारी के कारण आप उसको स्वीकार नहीं कर सके थे। राजनैतिक दृष्टि से स्वभाव में उग्रता और गर्मी आजाने पर भी आप शुरू में असहयोग के विरोधी थे। कलकत्ता में काँग्रेस के विशेषाधिवेशन में असहयोग का कार्यक्रम पेश होने पर उसका विरोध करते हुए आपने श्री विपिनचन्द्र पाल के संशोधन का समर्थन किया था और नागपुर-काँग्रेस में भी आप देशबन्धु दास के साथ उसका विरोध करने के लिए ही गये थे। पर, लौटे वहाँसे उसका पूरा समर्थन करते हुए। बाद में असहयोग का जो प्रचण्ड आन्दोलन देश में शुरू हुआ, उसमें आप एक महान् शक्ति के रूप में शामिल हुए। आपका सारा जीवन ही एकदम बदल गया। लाखों की आमदनी की फलती-फूलती वकालत आपने राष्ट्र का आदेश शिरोधार्य कर तुरन्त त्याग दी। ऊपर जिस परिवर्तन की ओर संकेत किया गया है, वह इसी समय सिनेमा के चित्र की तरह होगया। लखनाराज का मुकदमा वचनबद्ध होने से आप न छोड़ सके। उसको प्रिवी कौंसिल तक लड़े और विजयी हुए। असह-योग-आन्दोलन के मन्द पड़ने पर आपने १९३० तक मुख्यतः चेम्बर-प्रैक्टिस की। १९२८ में 'सर्चलाइट' और १९२९ में कायस्थ-पाठशाला तथा सेठ सर हुकमचन्द के मुकदमों में विशेपरूप से बहस की। कार्य-समिति की विशेष अनुमति से महाराजा दरभंगा का मामला भी आपने लड़ा और उसकी तीन-चौथाई आय काँग्रेस को देदी। इलाहाबाद-हाई-कोर्ट के नामी वकील और भूतपूर्व जज इकबालअहमद ने कहा था कि "मैंने अपनी सारी आयु में उनसे बड़ा एडवोकेट और अद्भुत वकील नहीं देखा। उनके समान व्यक्ति ही इस पेशे की मर्यादा को बढ़ाते हैं।" इसी

प्रकार चीफ जस्टिस सर ग्रीमाउड मियर्स ने वकीलों को संबोधन करते हुए कहा था कि "आपमें से वहुतों को इटावा के मुकदमे में की गई उनकी पैरवी याद होगी। सारे संसार में कोई और वकील उस मुकदमे को उनसे ज्यादा अच्छा नहीं लड़ सकता था।" यह सब प्रतिष्ठा व योग्यता और उससे होनेवाली लाखों की आमदनी को आपने देश की स्वतन्त्रता की वेदी पर न्यौछावर कर दिया। त्याग, तपस्या और साधना में भी आपने सबसे पहली पंक्ति में सबसे आगे खड़े होकर दिखा दिया।

नवम्बर १९२१ में युवराज के स्वागत के वहिष्कार का ज़ोर था। स्वयंसेवक-दलों के ग़ैरक़ानूनी ठहराये जाने पर आपने परिवार के सब लोगों के साथ स्वयंसेवकों में अपना नाम लिखवाया। ६ दिसम्बर को आप गिरफ्तार किये गये। जेल से अस्वस्थ होकर लौटे, किन्तु आराम से नहीं वैठे। काँग्रेस के प्रधान-मंत्री का काम तुरन्त सम्हाल लिया।

चौरीचौरा-काण्ड पर सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित कर दिया गया। महात्मा गाँधी को ६ वर्ष की सज़ा हुई। आन्दोलन में शिथिलता पैदा हुई। ७ जून १९२२ को लखनऊ में कार्य-समिति की वैठकें हुईं। आपके सभापतित्व में 'सत्याग्रह-जाँच-कमेटी' नियुक्त की गई। कमेटी ने सारे देश का दौरा किया और यह सम्मति प्रकट की कि देश सत्याग्रह के लिए तैयार नहीं है, कौंसिलों पर धावा बोलना चाहिए। १९२२ में गया में देशवन्धु दास के सभापतित्व में काँग्रेस हुई। उसमें वह रिपोर्ट स्वीकृत हुई। फिर आप और देशवन्धु दास ने मिलकर काँग्रेस के अन्तर्गत स्वराज्य-दल का संगठन किया। काँग्रेसवादियों में परिवर्तनवादी और अपरिवर्तन-वादी दो दल बन गये। उनमें भयानक संघर्ष हुआ। सितम्बर १९२३ में दिल्ली में विशेष अधिवेशन होकर स्वराज्य-दल की नीति का समर्थन किया गया। असेम्वली के लिए आप निर्विरोध चुन लिये गये और

स्वराज्य-दल के अन्य उम्मीदवारों के लिए आपने प्रचण्ड आन्दोलन किया। असेम्वली में स्वराज्य-दल ने उस समय जिस संगठन और कार्य-क्षमता का परिचय दिया, वह आपकी प्रतिभा, योग्यता, दृढ़ता, राजनीतिज्ञता और अनुशासन-शक्ति का परिणाम था।

उस समय देश में हिन्दू-मुस्लिम-संघर्ष ज़ोरों पर था। आप उस समय राष्ट्रीयता की चट्टान की तरह अविचल रहे और अपने आचार-विचार या उच्चार में कभी भी साम्प्रदायिकता को आने नहीं दिया। आपसे किसीने पूछा कि आप हिन्दू-महासभा के सभासद क्यों नहीं वनते ? आपने फौरन उत्तर दिया—'महज़ इसलिए कि मैं मुस्लिम-लीग का मेम्वर नहीं वना हूँ।' १९२४ में दिल्ली में जव गाँधीजी ने हिन्दू-मुसलमानों की कलह के प्रायश्चित्त के लिए २१ दिन का उपवास किया था, तव आपके ही सभापतित्व में एकता-सम्मेलन हुआ था, जिससे स्पष्ट था कि उन दिनों में भी आपपर हिन्दू-मुसलमान दोनों का एक-सा विश्वास था। १९२६ के असेम्वली-चुनाव में मालवीयजी और लालाजी ने स्वराज्य-दल से रूठकर नैशनलिस्ट-पार्टी के नाम से स्वराज्य-दल के विरोध में उम्मीदवार खड़े किये थे। हिन्दू-महासभा को भी आप लोगों ने अपने साथ ले लिया था। हिन्दू-महासभावालों ने आपपर वहुत कीच उछाला। पर, आप विचलित नहीं हुए। १९२६ के चुनाव के वाद भी आपने अपने दल की धाक असेम्वली में जमाई हुई थी। पव्लिक-सेफ्टी-विल पर तव सरकार को मुँह की खानी पड़ी थी।

१९२७ में लखनाराज के मुकदमे के लिए आप विलायत गये। वहाँ साइमन-कमीशन के अध्यक्ष साइमन साहव से मिलने के लिए आपको इशारा किया गया। पर चूँकि भारत में कमीशन का वहिष्कार करना तय हुआ था, आपने मिलने से इनकार कर दिया। सोवियट-सरकार के निमंत्रण

पर आप उसके दसवें वार्षिकोत्सव में शामिल होने के लिए रूस गये थे।

मदरास-काँग्रेस में कार्य-समिति को विभिन्न दलों से परामर्श करके भारत के शासन-विधान की सर्वसम्मत योजना तय्यार करने का काम सौंपा गया था। कार्य-समिति ने वह कार्य-भार आपपर डाल दिया। आपने तन्मय होकर उस कार्य को किया। दिल्ली में सर्वदल-सम्मेलन के अधिवेशन हुए। मुस्लिम-लीग और हिन्दू-महासभा के अड़ंगा डालने पर भी आपने योजना तय्यार की। वही 'नेहरू-रिपोर्ट' के नाम से प्रसिद्ध हुई। आपके शासन-पद्धति के गूढ़ ज्ञान और प्रखर राजनैतिक योग्यता की वह उज्ज्वल निशानी है। लखनऊ और कलकत्ता में सर्व-दल-सम्मेलन होकर उसपर फिर विचार हुआ। १९२८ में कलकत्ता में काँग्रेस आपकी ही अध्यक्षता में हुई। आपका शानदार स्वागत इन्द्र को भी ललचानेवाला था। काँग्रेस ने उस रिपोर्ट को राष्ट्रीय माँग के रूप में सरकार के सामने पेश किया और सरकार को उसपर विचार करने के लिए एक वर्ष की मोहलत दी। १९२९ में उसको लेकर सारे देश में आन्दोलन हुआ और साइमन-कमीशन का पूरा वहिष्कार हुआ। लाहौर-काँग्रेस से ठीक पहले वाइसराय ने आपको और गाँधीजी को मिलने के लिए वुलाया, पर मुलाक़ात का कुछ परिणाम न निकला। लाहौर-काँग्रेस ने एक साल की मियाद पूरी होने पर ३१ दिसम्बर की आधी रात को अपना ध्येय पूर्ण-स्वतन्त्रता उद्घोषित किया। शेष आधी रात लोगों ने नाचने, गाने वजाने और खुशियों में विताई। आप वुढ़ापा भूल गये। सिर पर सरहदी कुल्ला रख लुंगी पहन बच्चों के नाच-गान में शामिल होगये। पूर्ण-स्वतन्त्रता ध्येय वना लेने पर काँग्रेसवादी कौंसिलों में कैसे रह सकते थे ? स्वराज्य-दल टूट गया। कौंसिलें खाली कर दी गईं। २६ जनवरी को स्वतन्त्रता-दिवस मनाकर देश ने सत्याग्रह की ओर क़दम

बढ़ाया। गाँधीजी ने डाँडी-महायात्रा को पूरा करके ६ अप्रैल को नमक-क़ानून भंग किया ही था कि सारे देश में सत्याग्रह का बिगुल बज गया। १४ अप्रैल को जवाहरलालजी गिरफ्तार कर लिये गये। पिता ने लाहौर में पुत्र के सिर पर काँटों का ताज रक्खा था, अब पुत्र ने फिर पिता के ही सिर पर वह ताज रख दिया। पुत्र के लिए पिता का उत्तराधिकारी बनना साधारण बात है, किन्तु पिता के पुत्र का उत्तराधिकारी बनने की यह असाधारण घटना थी—वह भी तब जब सारा देश युद्ध के मैदान में खड़ा था और एक सेनापति के समान उसका संचालन करना था। आपने अपने हाथ से नमक बनाया और बार-बार बनाया। इलाहाबाद में वह खूब बिका। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और देशी मिलों को भी पूरी तरह स्वदेशी बनाने का आपने सफल आन्दोलन किया। सत्याग्रहियों के प्रति पुलिस का दुर्व्यवहार और सरकार का दमन जोरों पर था। धरासना और शोलापुर की ज्यादतियों में दमन सीमा को लाँघ गया था। कार्य-समिति ने आपकी अध्यक्षता में पुलिस और फौज वालों का स्वदेश के प्रति कर्तव्य पालन करने के लिए आह्वान किया। वह घोषणा ग़ैर-क़ानूनी ठहरा कर आपको गिरफ्तार करके ६ मास की सजा देदी गई। जयकर-सप्रू ने सन्धि-चर्चा शुरू की। आपको और जवाहरलालजी को विशेष रूप से नैनी-जेल से यरवदा-जेल ले जाया गया। पर, सन्धि न हुई।

अस्वाभाविक एवं कठोर जेल-जीवन में आपकी पुरानी बीमारी फिर उठ खड़ी हुई। दमा और ज्वर ने जोर पकड़ा। फेफड़ों में सूजन पैदा होगई, थूक में खून आने लगा। बीमारी के बढ़ जाने पर आपको ८ सितम्बर को जेल से रिहा कर दिया गया। औषधोपचार के लिए कलकत्ता और आराम के लिए मसूरी गये। सरदियों में इलाहाबाद लौट आये। आपके मन को शान्ति कहीं न मिली। पहले विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार में

लगे रहे, फिर बंगाल के काँग्रेसियों में सुलह कराने का यत्न किया, और बाद को आन्दोलन को जीवित बनाये रखने की चिन्ता करते रहे। स्वास्थ्य गिरता गया। आपकी बीमारी के कारण ही जवाहरलालजी को भी रिहा कर दिया गया और गाँधी-अर्विन-समझौते की चर्चा के लिए अन्य नेता भी छोड़ दिये गये। गाँधीजी सीधे आपके पास आये। ४ फरवरी को एक्सरे-परीक्षा के लिए आपको लखनऊ मोटर से लेजाया गया। ५ की दोपहर तक अच्छे रहे। शाम शरीर की शक्ति क्षीण और चेहरा पीला पड़ने लगा। आधी रात बाद बेचैनी बढ़ गई। सवेरे ६ बजे पानी माँगा। गला सूख गया था। रोग की शरशैया पर पड़े हुए पितामह ने ६.४० पर प्राण त्याग दिये। राष्ट्रीय पताका के कफ़न से शव को ढक-कर मोटर से इलाहाबाद लाया गया। त्रिवेणी पर शाम को साढ़े छः बजे दाह-संस्कार हुआ। महात्मा गाँधी ने चिता की ओर संकेत करके कहा—"यह चिता नहीं, राष्ट्रयज्ञ का हवन-कुण्ड है।" भारत का स्वतन्त्रता-आन्दोलन युद्ध नहीं, एक बृहद् यज्ञ ही है, आत्मोत्सर्ग का एक महान् अनुष्ठान है। १९३०-३१ के उस अनुष्ठान में बृहद् यज्ञ के उस अग्निकुण्ड में, राष्ट्र ने बहुत-सी आहुतियाँ डाली थीं, किन्तु समझौते से ठीक पहले डाली गई वह पूर्णाहुति सचमुच बहुत बड़ी और दिव्य थी। वह उस आन्दोलन के शान्तिपर्व का प्रारम्भ नहीं, अवसान था।

महापुरुषों का व्यक्तित्व जीवन की अपेक्षा मृत्यु के बाद अधिक चम-कता है। मोतीलालजी के देहावसान के बाद भारत में ही नहीं, विश्व के कोने-कोने में मातम मनाया गया। विरोधी भी उस मातम में आत्मीय जनों की तरह शामिल हुए। ऐसा विश्वव्यापी मातम उससे पहले किसी भी भारतीय के लिए नहीं मनाया गया था। उससे आपकी प्रतिष्ठा, प्रभाव और गौरव का अनुमान सहज में किया जा सकता है।

: ४१ :

वल्लभभाई झवेरभाई पटेल

पंतालीसवाँ अधिवेशन, कराची—१९३१

"वल्लभभाई बरफ से ढका हुआ ज्वालामुखी है।" मौलाना शौकत-अली के इस एक वाक्य में और 'सरदार' इस एक शब्द में ही वल्लभभाई का यथार्थ चित्र अंकित होजाता है। आपको बरफ़ से ढका हुआ ज्वाला-मुखी का-सा शान्त किन्तु उग्र स्वभाव और सरदार की-सी योद्धा-वृत्ति विरासत में अपने पिता से ही प्राप्त हुई। आपके पिता झवेरभाई वीर, साहसी, निर्भीक और योद्धा-वृत्ति के थे। सन् १८५७ में तीन वर्ष तक अपने गाँव करमसद या ताल्लुका पेटलाद में किसीको कुछ पता न था कि वह कहाँ हैं? पीछे पता चला कि वह अपनी खेती-बाड़ी सब कुछ छोड़ झाँसी वाली महारानी लक्ष्मीबाई की सेना में जाकर शामिल होगये थे। ९२ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हुआ था। उनमें जैसी साहसि-कता थी, वैसी ही आस्तिकता और ईश्वर-भक्ति भी थी। अपने पिता के इन सब सद्गुणों का वल्लभभाई में जब विकास हुआ, तब साँप की काँचली की तरह सैर-सपाटों और आनन्द-विनोद के जीवन का परित्याग कर आप सहसा ही 'सरदार' बन गये। बड़े भाई विट्ठलभाई ने असेम्ब्ली

में प्रेसिडेन्ट के कार्य को जिस शान के साथ निवाहा था, उसी प्रकार आपने 'सरदार' की शान को निवाहा है। किसनों के नेतृत्व की ही वजह से आपको सरदार कहा जाता है और काका कालेलकर का यह कथन आपके सम्बन्ध में विलकुल ठीक है कि "जव किसान व्याकुल होने लगता है, तव वल्लभभाई का खून खौलने लगता है।" गुजरात के किसानों की निरन्तर सेवा इस कथन की समर्थक है।

पिता के समान माता भी धर्मशीला और साध्वी स्त्री थीं। ८० वर्ष की आयु में भी उन्होंने चरखा चलाना और भगवद्भक्ति करना न छोड़ा था। आपके चरित्र-निर्माण में माता का भी काफ़ी हिस्सा है।

आपकी जन्मतिथि का कोई पता नहीं चलता। स्वयं वल्लभभाई या आपके रिश्ते-नाते में भी किसीको भी उसका कुछ पता नहीं। आपकी शिक्षा पहले घर पर ही हुई, फिर पेटलाद, नड़ियाद और वड़ौदा में। मैट्रिक आपने नड़ियाद से पास किया।

विद्यार्थी-जीवन में आप वहुत नटखट थे। अध्यापकों के स्वभाव के साथ आपका स्वभाव कभी मेल नहीं खाता था। नड़ियाद-स्कूल के एक शिक्षक स्कूली पुस्तकें खरीदने को दवाव डाला करते थे। आपने उसके विरुद्ध आन्दोलन किया। स्कूल में हड़ताल होगई। छः दिन हड़-ताल रही। शिक्षक को हार माननी पड़ी। इसी प्रकार की घटना वड़ौदा में हुई। आपने मैट्रिक में संस्कृत छोड़कर गुजराती ले ली। गुजराती के शिक्षक श्री छोटालाल संस्कृत के प्रेमी थे। उनको किसी भी विद्यार्थी का वैसा करना न जँचता था। आप जव उनकी कक्षा में गये तो उन्होंने व्यंग में कहा कि—"पधारो, महापुरुष! संस्कृत छोड़कर गुजराती ले तो रहे हो, लेकिन विना संस्कृत के गुजराती नहीं शोभती।" वालक ने धीरे से कहा कि "यदि सभी संस्कृत पढ़ें, तो फिर आप किसको पढ़ा-

येंगे ?" नटखट बालक को पिछली बेंच पर दिनभर खड़ा रहने की आज्ञा दी गई। गुरु-शिष्य का मनोमालिन्य बढ़ता गया। गुरु तंग करने के लिए शिष्य को घर से पहाड़े लिखकर लाने का काम देने लगे और कक्षा में आने पर पूछते कि "क्या तुम पाड़े लिखकर लाये ?" नटखट बालक के धैर्य का बाँध टूट गया। उसने एक दिन कह दिया—"मास्टरसाहब ! पाड़े लाया तो था, पर दो-एक के भड़कने पर सारे-के-सारे भाग गये।" पाड़े का अर्थ पहाड़ा और गाय, भैंस वग़ैरा का बच्चा भी होता है। मामला हेडमास्टर के पास पहुँचा। विद्यार्थियों ने सब बात सच-सच कह दी। हेड-मास्टर ने बिना कुछ कहे-सुने बात टाल दी। हेडमास्टर श्री नरवण का अब भी यही मत है कि "मैंने वैसा लड़का कभी नहीं देखा।" गुरु छोटालाल होते, तो वे भी देख लेते कि उन्होंने अपने शिष्य के साथ किसी दिन 'महापुरुष' का जो व्यंग किया था, वह भविष्यवाणी की तरह सत्य सिद्ध होगया है।

माता-पिता साधारण स्थिति के थे। आपको ऊँची शिक्षा प्राप्त करने का शौक़ तो न था, किन्तु बैरिस्टरी पास करने के लिए विलायत जाने की इच्छा अवश्य थी। मुख़्तारी पास करके आपने गोधरा में प्रैक्टिस शुरू करदी। विट्ठलभाई उस समय बोरसद में वकालत करते थे। कुशाग्र बुद्धि और मेहनती होने तथा लगन के साथ काम करने से आपकी प्रैक्टिस खूब चल निकली। अधिकारियों तथा पुलिस-अफ़सरों पर भी धाक जम गई। अदालत में खड़े होकर जब आप बहस करते, तब हाकिम दंग रह जाते थे। खून-खराबी, डाकेजनी और झूठे दस्तावेजों के फौजदारी मामले आपके पास अधिक आते थे। क़ानून-ज्ञान की अपेक्षा जिरह करने की खूबी पर आपकी सफलता का सब दारोमार था।

गोधरा में प्लेग फैलने पर नाज़िर के बीमार लड़के की सेवा-सुश्रूषा करते हुए आपको भी प्लेग ने आ दबाया। आग्रह करके पत्नी को कर-

मसद भेज दिया और आप नड़ियाद चले गये। आप तो वहाँ अच्छे होगये, किन्तु पत्नी बीमार पड़ गई। आपरेशन के लिए उनको बम्बई पहुँचा आये। आपरेशन के बाद स्वास्थ्य सुधरने के समाचार प्राय: रोज ही मिलते रहते थे। पर, एकाएक तबीयत बिगड़ गई। एक दिन अदालत में मुकदमा लड़ते हुए पत्नी के वियोग का तार मिला। तार पढ़ा और सामने रख दिया। सब काम समाप्त करने के बाद मित्रों से उसकी चर्चा की। विपत्ति में धैर्य का कितना बढ़िया उदाहरण है ?

कुछ रुपया जमा होजाने पर विलायत जाकर बैरिस्टर बनने की पुरानी अभिलाषा फिर जाग उठी। एक कम्पनी से पत्र-व्यवहार करके सब प्रबन्ध कर लिया। अन्तिम पत्र विट्ठलभाई के हाथ पड़ गया। बड़े भाई ने पहले विलायत जाने की इच्छा प्रकट की। आपने उसे मान लिया और पन्द्रह दिन ही बाद आपकी जगह वह विलायत के लिए विदा हो गये। तीन वर्ष बाद बैरिस्टर होकर उनके लौट आने के बाद आप विलायत गये। वहाँ जाकर आपका स्वभाव और रहन-सहन एकदम बदल गया। एकान्तसेवी होकर आप पढ़ाई में तन्मय होगये। निवास-स्थान से ११ मील दूर पुस्तकालय में बड़े सवेरे ही पहुँच जाते और तब उठते जब चपरासी आकर उसको बंद करने की आपको सूचना देता। खाना भी वहीं मँगाकर खा लेते। प्रथम श्रेणी में प्रथम रहकर बैरिस्टरी की परीक्षा पास की। ५० पौण्ड की छात्रवृत्ति मिली और चार टर्म की फीस भी माफ़ होगई। परीक्षकों में से एक ने आपकी प्रतिभा और योग्यता पर मुग्ध होकर चीफ़ जस्टिस स्कॉट से आपको न्याय-विभाग में ऊँची-से-ऊँची जगह दिलाने की सिफारिश करते हुए पत्र लिखा। परीक्षा से छुट्टी पाकर दूसरे ही दिन आप स्वदेश लौट आये। सैर-सपाटे के लिए वहाँ आप एक दिन भी नहीं ठहरे।

अहमदाबाद में आकर बैरिस्टरी शुरू की और दोनों हाथों से पैसा बटोरना शुरू किया। विट्ठलभाई बम्बई में प्रैक्टिस करते थे और साथ में लोक-सेवा भी। दोनों भाइयों में आपस में तय होगया कि छोटा भाई पैसा कमाये, घर का खर्च चलाये और बड़ा भाई लोक-सेवा की धूनी रमाये। पर जो स्वेच्छा से बड़े भाई को इस प्रकार देश-सेवा की धूनी रमाने की सलाह और सुविधा दे सकता था, वह स्वयं उससे अलग कैसे रह सकता था ? गाँधीजी के सम्पर्क में आने पर आप भी देश-सेवा के रंग में पूरी तरह रंग गये।

शुरू-शुरू में आप गाँधीजी का मज़ाक उड़ाया करते थे कि "गाँधी क्यों इन लोगों के सामने ब्रह्मचर्य की बातें करता है ? यह तो भैंस के सामने भागवत कहने सरीखा है।" अपने उन दिनों के स्वच्छन्द जीवन के बारे में आपने स्वयं ही एक बार कहा था कि "मैं दुर्गा-पूजा के दिन सैर-सपाटों और आनन्द-विनोद में गुज़ारा करता था। उन दिनों मैं मानता था कि इस अभागे देशनिवासियों के लिए यही आवश्यक है कि वे विदेशियों के पद-चिन्हों पर चलें। मैं जो कुछ पढ़ता था, उसका यही निष्कर्ष निकालता था कि हमारे देश-वासी नासमझ हैं और हमपर शासन करनेवाले हमारे हितचिंतक, उद्धारक और उन्नत हैं। हमारे देशवासी तो केवल ग़ुलाम रहने के योग्य हैं।" पर, इन विचारों के बदलने में अधिक समय नहीं लगा। गाँधीजी के कर्मठ जीवन पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि स्वच्छन्दता की तह में सोई हुई आस्तिकता जाग उठी और आपका एकाएक कायाकल्प होगया। सत्य और अहिंसा में आपकी श्रद्धा स्थिर होगई। गोधरा में प्रान्तीय-राजनैतिक-सम्मेलन हुआ। गाँधीजी उसके सभापति थे। कान्फ्रेंस के कार्य की पूर्ति के लिए एक कमेटी बनाई गई। आपको उसका मन्त्री बनाया गया। गाँधीजी चम्पारन चले गये। उसका

सब काम आपको सम्हालना पड़ा। आपके सामने बेगार की समस्या उपस्थित हुई। आपने कमिश्नर के साथ उसके बारे में पत्र-व्यवहार किया। जब कुछ सन्तोषजनक उत्तर न मिला, तब सात दिन का नोटिस देकर लिख दिया कि हाईकोर्ट के अमुक फैसले के अनुसार बेगार के ग़ैरकानूनी होने से लोगों में बेगार न देने के लिए आन्दोलन शुरू कर दिया जायगा। छठे दिन कमिश्नर ने आपको बुलाया और आन्दोलन किये बिना ही बेगार की समस्या हल होगई।

खेड़ा में सत्याग्रह करने की तैयारी शुरू होने पर गाँधीजी का सबसे पहले साथ देनेवाले आप ही थे। उसके लिए गाँव-गाँव घूमकर आन्दोलन किया। महायुद्ध के समय रंगरूटों की भरती करने में भी आप गाँधीजी के साथ रहे। रौलेट-एक्ट के विरुद्ध किये गये सत्याग्रह में आपने सब प्रकार के कष्ट उठाकर भी गाँधीजी का साथ दिया और असहयोग के युग में रही-सही वकालत को भी तिलांजलि देकर आप सर्वतोभावेन गाँधीजी के साथ होगये। लड़के और लड़की को विलायत भेजकर आप उच्च शिक्षा दिलाना चाहते थे; लेकिन यहाँ भी कुछ अधिक न पढ़ा सके। सरकारी संस्थाओं का बहिष्कार होने पर दोनों को आपने पढ़ाई से हटा लिया। गुजरात-विद्यापीठ आपके ही अनथक श्रम का परिणाम था, जिसके लिए आपने १० लाख रुपया जमा किया था। विजयी बारडोली का अद्‌भुत संगठन आपकी कर्तृत्व-शक्ति का परिचायक है। आपके ये शब्द किसानों के हृदयों में सीधे पहुँचते और स्थिर स्थान बना लेते कि—"शत्रु का लोहा भले ही गरम होजाय, पर हमारा हथौड़ा तो ठण्डा रहकर ही काम दे सकता है।" "किसान होकर यह मत भूल जाना कि बैसाख-जेठ की भयानक गरमी के बिना आषाढ़-श्रावन की वर्षा नहीं होती।" "मरने-मारने की तालीम सिपाहियों को देने में

सरकार को छः महीने लगते हैं। हमें तो सिर्फ़ मरना ही सीखा है, उसमें तीन महीने भी क्यों लगने चाहिएँ?" "अरे साँप को क्या अपनी काँचली उतार फेंकने में कष्ट होता है, या कोई मेहनत करनी पड़ती है? इसी तरह हम भी एक दिन पराये शासन की काँचली उतार फेंकेंगे। उसके लिए श्रम और कष्ट कैसा?" "यदि राजसत्ता अत्याचारी हो तो किसान का सीधा उत्तर है—जा-जा, तेरे ऐसे कितने ही राज मैंने मिट्टी में मिलते देखे हैं।" ऐसे सीधे-सादे शब्दों में मतलब की सीधी बात कहना आप जानते हैं। आप व्याख्याता या वक्ता नहीं हैं, किन्तु आपके शब्दों में अपने क्रियात्मक जीवन की जो प्रचुर शक्ति सदा समाई रहती है, वह जैसा भयानक तूफान पैदा कर देती है, उसका परिचय कई बार मिल चुका है। १९२३ में नागपुर में हुए झण्डा-सत्याग्रह की विजय भी उसकी एक स्पष्ट साक्षी है। सब स्थानीय नेताओं और कार्यकर्ताओं के गिरफ्तार होने पर आपने नागपुर जाकर आसन जमा दिया और सत्याग्रह के संचालन का सब काम अपने हाथों में लेलिया। १०-१५ दिन में ही सरकार ने घुटने टेक दिये। विजय का झण्डा फहराते हुए आप गुजरात पहुँचे।

फरवरी १९२४ में गाँधीजी जेल से छूट आये। वल्लभभाई को शुद्ध काँग्रेसी कार्यों के सिवा अन्य कामों में भी हाथ लगाने का अवसर मिला। सन् १९२५ में आपके नेतृत्व में अहमदाबाद के काँग्रेसियों ने स्थानीय म्यूनिसिपैलिटी का चुनाव लड़ा और उसको हस्तगत कर लिया। वल्लभभाई म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमैन चुने गये। इस पद पर रहकर पाँच वर्षों तक आपने शहर की सफ़ाई और शिक्षा को राष्ट्रीय बनाने का अभूतपूर्व कार्य किया। म्यूनिसिपल शिक्षणालयों में राष्ट्रीय पर्वों की छुट्टियाँ करना, राष्ट्रीय गीतों का गाना, पाठ्य पुस्तकों में सुधार आदि के लिए सरकार से बार-बार टक्करें लेनी पड़ीं।

१९२६ में गुजरात के कई ज़िलों में अति वर्षा के कारण वाढ़ आई। उसमें आपने पीड़ितों को सहायता पहुँचाने का वहुत अधिक काम किया। उस समय आपकी संगठन-शक्ति का लोहा सरकार ने भी माना और सरकारी अकाल-कोष में से एक करोड़ रुपया वाढ़-पीड़ितों की सहायतार्थ आपके हाथों में रख दिया। जनता ने भी लाखों जमा किया। उस समय की सेवा द्वारा आप जनता की दृष्टि में 'गुजरात-वल्लभ' वन गये। गुजरात की जनता के हृदयों पर आपका स्थायी अधिकार होगया। सरकार पर भी आपकी कार्य-दक्षता की छाप लग गई।

आपका सवसे वड़ा काम, जिसके कारण आप पहलेपहल 'सरदार' कहलाये, १९२८ का वारडोली-सत्याग्रह है। १९२७ में वम्वई-सरकार ने प्रान्तिक लेजिस्लेटिव कौंसिल के प्रस्ताव के विरुद्ध और वारडोली के किसानों की प्रार्थना की परवा न करके नया ज़मीन-वन्दोवस्त करके उस ताल्लुके का ज़मीन-लगान २२ प्रतिशत वढ़ा दिया। ताल्लुका के किसानों ने जव देखा कि सरकार किसी भी प्रकार उस आज्ञा को वापस नहीं लेगी, तव उन्होंने आपके नेतृत्व में सत्याग्रह करने की ठान ली और सरकार को लगान न देने का निश्चय कर लिया। लगान जमा करने के लिए सरकार की नियत की हुई अन्तिम तारीख १२ फरवरी १९२८ को सत्याग्रह की घोषणा करदी गई। सरकार ने किसानों को डराया-धमकाया, मारा-पीटा, उनके पशु तथा अन्य सम्पत्ति जब्त की और वदमाश पठानों को ताल्लुके में तैनात कर दिया। उन्होंने चोरियाँ कीं, स्त्रियों का अपमान किया तथा लड़ाई-झगड़े किये। अन्त में किसानों की ज़मीनें तक ज़ब्त करली गईं; परन्तु संगठन ढीला नहीं पड़ा। वह इतना प्रवल था कि स्वयं सरकारी अफसरों तक को कई वार ग्रामों में सवारी व रसद आदि मिलना मुश्किल होजाता था और सत्याग्रही स्वयंसेवकों का सहारा

लेना पड़ता था। अगस्त के आरम्भ में सरकार झुकी और प्रान्तिक कौंसिल के कई सदस्यों ने बीच में पड़कर ६ अगस्त को सरकार और सत्याग्रहियों में समझौता करा दिया। ज़ब्तशुदा ज़मीनें लौटा दी गईं, क़ैदी छोड़ दिये गये, वरखास्त मुखिया और पटवारी फिर वहाल किये गये और सरकार ने बन्दोवस्त विलकुल नये सिरे से करवाया। ११ अगस्त को समस्त ताल्लुके में विजयोत्सव मनाया गया।

१९२९ का सारा वर्ष सरदार पटेल ने अपने प्रान्त में कांग्रेस का रचनात्मक कार्य करने में विताया। १९३० के मार्च में जब देशभर में सत्याग्रह की तैयारियाँ होरही थीं, तव ७ मार्च को रास नामक ग्राम में जिला-मजिस्ट्रेट की भाषण न करने की आज्ञा भंग करने के अपराध में आप गिरफ्तार कर लिये गये और आपको तीन मास कैद तथा ५०० रु० जुर्माने की सजा हुई। ६ जून को जब जेल से छूटे, तबतक गाँधीजी और पं० जवाहरलाल नेहरू आदि प्रायः सभी प्रमुख नेता जेल में बन्द किये जा चुके थे। कांग्रेस वर्किंग कमेटी के ग़ैरक़ानूनी घोषित किये जाने के बाद मोतीलालजी नेहरू ने अपने गिरफ्तार होने पर आपको ही स्थानापन्न राष्ट्रपति अथवा 'डिक्टेटर' नियत किया था। उन दिनों जगह-जगह सरकार की तरफ़ से लाठी-मार, अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियों और गोली चलाने आदि की धूम थी। पहली अगस्त को बम्बई में लोकमान्य तिलक की वर्षी के उपलक्ष्य में विराट जलूस निकला, उसे स्थानीय अधिकारियों ने हार्नबी रोड पर रोक दिया। पं० मालवीय, डा० हर्डीकर, श्री तसद्दुकअहमदखाँ शेरवानी और आप तथा अन्य अनेक नेता उस जलूस के साथ थे। जलूस सायंकाल के ४ बजे से दूसरे दिन प्रातःकाल ४ बजे तक सड़क पर ही डटा रहा। अन्त में पुलिस-अधिकारियों ने नेताओं को गिरफ्तार कर लिया और लोगों को लाठियाँ बरसाकर तितर-

वितर कर दिया। आपको इस वार भी तीन मास की सजा हुई। जेल से छूटने पर आपने फिर देश-व्यापी सत्याग्रह का नेतृत्व किया। गाँधी-अर्विन-समझौते के लिए जनवरी १९३१ में सब नेता छोड़ दिये गये। ५ मार्च को समझौता होकर आन्दोलन बंद कर दिया गया और कराची में काँग्रेस का अधिवेशन करने की तय्यारियाँ की जाने लगीं।

मार्च के अन्त में कराची में काँग्रेस का अधिवेशन हुआ। वह कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण था और जिन परिस्थितियों में वह हुआ, वे भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं थीं। लाहौर में सरदार भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी होने के कारण नवयुवक अत्यन्त अधिक विक्षुब्ध थे और कानपुर के भयानक हिन्दू-मुस्लिम दंगे तथा अमर शहीद श्री गणेश शंकरजी विद्यार्थी की हत्या ने तो सारे ही वातावरण में भयानक विक्षोभ पैदा कर दिया था। उस विषाद्, सन्ताप और विक्षोभ की घटाओं में राष्ट्र के नेतृत्व की वागडोर को मजबूत हाथों में सम्हालना सरदार का ही काम था। आपने अपने छोटे-से भाषण में कहा था कि वह गौरव आपने मुझ-सरीखे किसान को नहीं दिया किन्तु स्वतंत्रता के युद्ध में वलिदान होनेवाले गुजरात प्रान्त को दिया है। सचमुच सेवा, त्याग और कष्ट-सहन द्वारा आपने अपनेको गुजरात के साथ तन्मय कर लिया है। गुजरात और वल्लभभाई एक ही अर्थ और भाव के द्योतक दो शब्द हैं। नागरिकों के मौलिक अधिकारों तथा कर्तव्यों की घोषणा और गोलमेज-परिषद् के लिए गाँधीजी को भारतीय-राष्ट्र का एकमात्र प्रतिनिधि नियुक्त करना—ये दोनों उक्त अधिवेशन के महत्वपूर्ण कार्य थे।

गांधी-अर्विन-पैक्ट के अनुसार संयुक्तप्रान्त और गुजरात के किसानों के साथ पूरा न्याय न होने की शिकायत को लेकर गाँधीजी का गोलमेज-परिषद् के लिए विलायत जाना नामुमकिन होरहा था कि सरकार को

फिर झुकना पड़ा और उन शिकायतों की विशेष रूप में जाँच करानी पड़ी। श्री भूलाभाई देसाई के द्वारा आपने गुजरात के किसानों की शिकायतों को सरकार के सामने पेश किया था।

गाँधीजी गोलमेज़-परिषद् से भारत लौटे भी न थे कि गाँधी-अर्विन-पैक्ट को कबर में दफनाकर दमन का सिलसिला उसी सिरे से शुरू हो चुका था, जहाँ कि उसको उक्त पैक्ट से पहले छोड़ा गया था। गाँधीजी की वाइसराय से मिलने तक की माँग स्वीकार न की गई। दमन का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। आपको भी अन्य नेताओं के साथ आन्दोलन शुरू होने से पहले ही ४ जनवरी को गिरफ्तार करके १८१८ के तीसरे रेगूलेशन के अनुसार अनिश्चित काल के लिए जेल में बन्द कर दिया गया। यरवदा जेल में आपको गाँधीजी के साथ रक्खा गया। हरिजन-आन्दोलन के सम्बन्ध में गांधीजी के आमरण उपवास करने के निश्चय का आपके मन पर बहुत गहरा असर पड़ा। गाँधीजी के उपवास के उन दिनों में आपने एकदम मौन रहने का व्रत लेलिया था। न कभी आप बोलते थे और न हँसते ही थे।

गाँधीजी जेल से छोड़ दिये गये और उनपर सत्याग्रह को स्थगित करने के लिए कुछ नेताओं व कार्यकर्त्ताओं की ओर से दबाव डाला जाने लगा। सरकार भी सन्धि या समझौते की बात करने से पहले सत्याग्रह को तिलाञ्जलि देदेने की माँग कर रही थी। तब गाँधीजी ने लिखा था कि "सत्याग्रह उस समय तक नहीं उठाया जा सकता, जबतक सरदार वल्लभभाई पटेल, खान अब्दुलगफ्फार खां और पण्डित जवाहरलाल नेहरू जीवित ही समाधिस्थ हैं। तबतक कोई समझौता भी नहीं हो सकता।" पूना की परिषद्, दिल्ली तथा राँची में कौंसिलवादियों के सम्मेलन,

बिहार का भूकम्प, पटना में कार्यसमिति तथा महासमिति की बैठकें और सत्याग्रह को स्थगित करके काँग्रेस-पार्लमेण्टरी-बोर्ड की स्थापना आदि सब जब हुआ, तब आप जेल में ही थे। स्वास्थ्य के एकदम बिगड़ जाने से आपको १९३४ के अन्त में जेल से रिहा किया गया। कौंसिलों के कार्यक्रम में आपका न विशेष विश्वास है और न आपको उसपर विशेष भरोसा ही है, पर कांग्रेस का नियन्त्रण, अनुशासन, और प्रतिष्ठा आपके लिए सर्वोपरि है। गाँधीजी में भी आपकी अगाध श्रद्धा और अनन्य भक्ति है। इसीलिए सत्याग्रह के समान ही आपने कौंसिल-कार्यक्रम का भी समर्थन एकनिष्ठ होकर किया। मालवीयजी की नैशनलिस्ट-पार्टी से लोहा लेनेवालों और दिल्ली तथा पंजाब सरीखे काँग्रेसी उम्मीदवारों का चुनाव करने के लिए काँग्रेस की ओर से बनाये गये पार्लमेण्टरी बोर्ड के कार्य का अधिकांश भार आपके कंधों पर रहा। सारे देश से कोई दस हज़ार दरख्वास्तें आईं। योग्य उम्मीदवारों के चुनाव का काम इतना आसान नहीं था। फिर उनके लिए आन्दोलन करने के काम में भी आपको जुटना पड़ गया। गुजरात, युक्तप्रान्त, सीमान्त, पंजाब आदि सूबों का आपने खूब विस्तृत दौरा किया। आपके सीधे-सादे और साफ़ भाषण जनता के हृदयों में गहरी जगह बना लेते थे। मालवीयजी की नैशनलिस्ट-पार्टी से आपने लोहा लिया और पंजाब के साम्प्रदायिकता के अनेक दुर्ग पर भी राष्ट्रीयता की आपने पताका फहराई।

चुनाव में सफल होकर पद-ग्रहण करने के बाद काँग्रेसी सरकारों के नियन्त्रण और पथ-प्रदर्शन के लिए बनाई गई पार्लमेण्टरी उपसमिति के आप प्रधान हैं। श्री राजेन्द्रप्रसादजी की बीमारी की वजह से उसके कार्य का अधिक भार आपके ही सिर पर रहता है। पथ-परायण, यश-अपयश आदि की कुछ भी परवा न करके आप कर्तव्य-पालन में जुटे

रहते हैं। कोई ऐसा प्रान्त नहीं, जिसमें विकट स्थिति का सामना काँग्रेसी सरकार को न करना पड़ा हो और आपने उसकी सहायता न की हो। कानपुर में हड़ताल होने पर आप लखनऊ पहुँचे। वहाँसे पटना गये। मदरास में हिन्दी-विरोधी-आन्दोलन शुरू होने पर वहाँकी सरकार की स्थिति स्पष्ट करने के लिए आप वहाँ गये। बिहार में टेनेंसी बिल को लेकर उत्पन्न हुए विवाद को शान्त करने और सरकार तथा ज़मींदारों की सुलह कराने में आपका हाथ था। युक्तप्रान्त के टेनेंसी बिल पर ज़मींदारों ने काँग्रेस हाई कमाण्ड को पंच बनाना मंजूर नहीं किया, तो भी आप उससे उदासीन रहे। उड़ीसा में स्थानापन्न गवर्नर की नियुक्ति पर वैधानिक संकट पैदा होने की सम्भावना पर वहाँकी सरकार का आपने जो पथ-प्रदर्शन किया था, उसके लिए वहाँके प्रधान-मन्त्री श्री विश्वनाथदास तक ने आपका आभार माना था। मध्यप्रान्त में मन्त्रि-मण्डल के झगड़े को निपटाने के लिए २४ मई १९३८ को प्रान्तीय काँग्रेसी दल का सम्मेलन आपके ही सभापतित्व में हुआ था। खरे-प्रकरण में भी आपने यथेष्ठ दृढ़ता का परिचय दिया। सिन्ध में मन्त्रि-मण्डल की समस्या को सुलझाने के लिए आपने सिन्ध का दौरा किया। बारडोली आदि के सत्याग्रहियों की ज़ब्त ज़मीनें लौटाने का बम्बई-सरकार ने जो सराहनीय कार्य किया, उसके लिए उसे प्रेरित करने का सारा श्रेय आपको है। बम्बई-सरकार के ट्रेड डिस्प्यूट बिल के विरुद्ध ६ नवम्बर १९३८ को बम्बई में हुए प्रदर्शनों के अवसर पर भी आपने सरकार का पथ-प्रदर्शन किया। भयानक उत्पात होने पर भी आप विचलित नहीं हुए। इस प्रकार काँग्रेस पार्लमेण्टरी उपसमिति के प्रधान-पद की जिम्मेदारी को आप बड़ी तत्परता और शान के साथ निबाहने में लगे हुए हैं।

मादक-द्रव्य-निषेध काँग्रेसी सरकारों के विधायक-कार्यक्रम का मुख्य

अंग है। सभी सरकारें उसके लिए विशेष तौर पर प्रयत्नशील हैं। बिहार-सरकार की ओर से छपरा में ६ अप्रैल १९३८ को और बम्बई-सरकार की ओर से अहमदाबाद में २० जुलाई १९३८ को आपने ही उसका श्रीगणेश किया था। अहमदाबाद में यह कार्य आपके ही तत्त्वावधान में होरहा है।

जंजीबार के हिन्दुस्तानियों के लिए लौंग के व्यापार को लेकर जब संकट उपस्थित हुआ, तब हिन्दुस्तान में लौंग-बहिष्कार का आन्दोलन करने के लिए बनाई गई कमेटी के आप ही सभापति थे। दिसम्बर १९३७ से मई १९३८ तक इस आन्दोलन का संचालन आपने इस तत्परता के साथ किया कि इंग्लैण्ड की शाही सरकार को हार मान लेनी पड़ी।

काँग्रेस के खुले अधिवेशनों और कार्य-समिति एवं महासमिति की बैठकों में अधिकारियों के पक्ष को आप बहुत दृढ़ता और सफ़ाई के साथ पेश करते हैं। हरिपुरा-काँग्रेस में आपने युक्तप्रान्त और बिहार में उस समय पैदा हुए वैधानिक संकट सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया था। उस-पर आपने बहुत ज़ोरदार भाषण दिया। दिल्ली में सितम्बर १९३८ में महासमिति की बैठक में खरे-प्रकरण और नागरिक-स्वाधीनता आदि के प्रस्तावों पर दिये गये आपके भाषण बहुत ही ज़ोरदार और स्पष्ट थे। सरदार की ही भाषा में आप बोलना जानते हैं। इसीलिए आपकी भाषा लच्छेदार न होने पर भी हृदय पर असर डालनेवाली होती है।

देशी-राज्यों की भी आपने सराहनीय सेवा की है। संकटापन्न प्रजा की आवाज़ को सुनकर आप उसकी दशा के लिए कृष्ण के समान दौड़ पड़ते हैं और विजय हासिल करके ही दम लेते हैं। १९३८ के शुरू में आपने माणसा-सत्याग्रह का नेतृत्व किया, जिसमें १६ जून को विजय प्राप्त की। विदुराश्वत्थम में हुए गोलीकाण्ड के बाद मई में मैसूर की प्रजा की पुकार सुनकर वहाँ दौड़े गये। ८ मई को दीवान से मुलाक़ात हुई।

काँग्रेस को वैध माना गया, रियासत के झंडे के साथ काँग्रेसी झण्डे फहराने का अधिकार स्वीकार किया गया, राजवन्दी छोड़े गये और राजा तथा प्रजा में सहयोग की भावना से काम होने लगा। जून के मध्य में वाला, धार और रामदुर्ग रियासतों के सत्याग्रह का संचालन किया। आजकल (नवम्वर) राजकोट के सत्याग्रह का संचालन करने में लगे हैं। २३ मई १९३८ को सांगली में दक्षिणी रियासती प्रजा परिषद् और अक्तूबर १९३८ में भादरण में वड़ौदा प्रजामण्डल परिषद् के अधिवेशन आपके ही सभापतित्व में हुए थे। इन मौक़ों पर आपके वहुत ही ज़ोरदार भाषण हुए थे। सीकर-आन्दोलन का नेतृत्व करने को भी आप तय्यार होगये थे, लेकिन वाद में वह काम आपने सेठ जमनालालजी वजाज के सुपुर्द कर दिया।

गाँधीजी द्वारा शुरू किये गये हरेक आन्दोलन के आप अनन्य समर्थक हैं। खादी, राष्ट्रीय शिक्षण, अस्पृश्यता-निवारण और ग्रामउद्योग-संघ के कार्यों को सफल वनाने में आप निरन्तर लगे रहते हैं। गुजरात के हरिजन-आन्दोलन को आपका पूरा सहयोग प्राप्त है। गाँधीजी के कार्यक्रम की अपेक्षा आपको गाँधीजी के स्वास्थ्य की भी कुछ कम चिन्ता नहीं रहती। उनके प्रति आपकी ममता माता से भी अधिक है और इसीलिए उनपर आपका नियन्त्रण जेल के अधिकारियों से भी अधिक कठोर है। दर्शन के लिए दूर से आनेवाले भक्तों के लिए ही नहीं, वल्कि साथ रहनेवाले साथियों के लिए भी वह कभी-कभी क्रूरता का रूप धारण कर लेता है। दिसम्वर १९३५ में जब गाँधीजी अस्वस्थ हुए, तव काफी समय तक आपकी क़ैद में नज़रवन्द रहे। पुलिस की तरह आप वर्धा से उनके साथ रहे और वम्वई, अहमदावाद, सावली और दिल्ली आदि में सव स्थानों पर उनके साथ गये। ममता और कठोरता का कैसा अद्भुत

मिश्रण है ! सचमुच, आपका हृदय फूल की पंखड़ियों की तरह कोमल और वज्र की तरह कठोर है । गाँधीजी ने स्वयं ही लिखा है कि "वह (सरदार पटेल) मुझे जिस स्नेह के साथ ढके रहते हैं, उससे मुझे प्यारी माता के स्नेह की याद आजाती है ।" आपके चरित्र का ठीक-ठीक चित्रण महात्मा लूथर के निम्न शब्दों में किया जा सकता है कि "एक वीर और बहादुर सरदार अपने हजारों दुश्मनों को कत्ल करने की अपेक्षा एक नागरिक की रक्षा करना अपना धर्म समझता है । इसलिए एक सच्चा नायक हलके दिल से कभी लड़ाई नहीं छेड़ता और न बिना अनिवार्य कारण के युद्ध-घोषणा करता है । सच्चे सिपाही और सरदार बढ़-बढ़कर बातें कभी नहीं करते, लेकिन जब बोलते हैं तब काम फ़तह ही समझिए ।" ऐसा प्रतीत होता है मानों ये शब्द आपको ही सामने रखकर लिखे गये हों । आपका व्यक्तित्व देशवासियों के लिए आदर्श है और वह बार-बार यह घोषणा कर रहा है कि देश को आपहीसे वीर तथा कर्तव्यपरायण सिपाहियों एवं सरदारों की ज़रूरत है ।

: ४२ :

राजेन्द्रप्रसाद

[जन्म—३ दिसम्बर १८८४]

अड़तालीसवां अधिवेशन, वम्बई—१९३४

महाराजा जनक, भगवान् गौतम और सम्राट् अशोक का विहार अपनी पुरानी सादगी, सरलता और सभ्यता को अवतक भी क़ायम किये हुए है। इस कथन के समर्थन के लिए विहार-रत्न स्वनामधन्य वाबू राजेन्द्रप्रसादजी की ओर संकेत-मात्र कर देना ही वस होना चाहिए। विद्यार्थी-जीवन आपका वहुत उत्कृष्ट रहा है। वकालत में आपका स्थान देश के कुछ उन अग्रगण्य वकीलों में था, जिन्होंने उस पेशे में धन और प्रतिष्ठा दोनों का यथेष्ठ सम्पादन किया था। दु:खियों की सेवा, पीड़ितों की सहायता और पददलितों के उद्धार का ऐसा कोई अवसर खाली नहीं गया, जव आपनें उनके लिए खून-पसीना एक न किया हो। देश-सेवा की धूनी रमाकर उसमें सर्वस्व होम देने का अवसर उपस्थित होने पर भी आप सवसे आगे की पंक्ति में स्वेच्छा से आकर खड़े होगये। कहा जाता है कि यदि आप सरकार के साथ असहयोग करके सत्याग्रह के मार्ग के

पथिक न बने होते, तो आप कभी के हाईकोर्ट के जज बन गये होते। इस कथन में कुछ सचाई हो या न हो, किन्तु यह तो स्पष्ट है कि देशवासियों ने आपको सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया है, आपकी अपील पर लाखों रुपया आपकी झोली में आँख मूँदकर डाल दिया है और जहाँ कहीं आप गये हैं आपका अलौकिक तथा अभूतपूर्व स्वागत हुआ है। देशवासियों का इतना सम्मान, श्रद्धा, भक्ति, प्रेम और विश्वास गाँधीजी के बाद, राजनैतिक आन्दोलन की प्रतिक्रिया के निराशपूर्ण दिनों में भी, सिवा आपके और कौन सम्पादन कर सका है? फिर भी आपकी सादगी और सरलता में कुछ वृद्धि ही हुई है। अभिमान आपको छू तक नहीं गया। साधारण-से-साधारण कार्यकर्ता भी बिना झिझक और संकोच के आपके पास जब चाहे तब जा सकता है। गाँधीजी के पद-चिन्हों पर चलते हुए अपनेको सर्वतोभावेन देश, जाति, समाज तथा राष्ट्र की सेवा पर न्यौछावर कर देनेवालों में आपका स्थान बहुत ऊँचा है। आपकी देशभक्ति निष्कलंक, देशसेवा अत्यन्त उत्कृष्ट और सार्वजनिक जीवन बिलकुल पवित्र है। उसमें स्वार्थ का लवलेश भी नहीं।

आपका जन्म बिहार के ज़िला सारन के जीरादेई ग्राम में बाबू महादेवसहाय के घर में ३ दिसम्बर १८८४ को हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू और फारसी की घर पर मौलवी रखकर हुई थी। ९ वर्ष की आयु में आपको अपने बड़े भाई स्वर्गीय श्री महेन्द्रप्रसादजी के साथ छपरा के जिला-स्कूल में भरती किया गया था। १९०२ में वहींसे कलकत्ता-यूनिवरसिटी में सर्वप्रथम रहकर आपने एण्ट्रेंस की परीक्षा पास की। तब बिहार स्वतंत्र प्रान्त न बना था। बिहार, बंगाल, आसाम और बर्मा की एक ही यूनिवरसिटी कलकत्ता में थी। उच्च-शिक्षा आपकी कलकत्ता के प्रेसिडेन्सी-कालेज में हुई। वहींसे आपने १९०६ में बी० ए० और १९०७

में एम० ए० भी यूनिवरसिटी में सर्वप्रथम रहकर पास किया। इसलिए आपको वरावर वहुत-सी छात्रवृत्तियाँ मिलतीं रहीं। १९१५ में आपने एम० एल० की परीक्षा दी और उसमें भी आप यूनिवरसिटी में सर्व-प्रथम रहे। पढ़ाई की तरह खेल-कूद में भी आप वहुत दिलचस्पी रखते थे। फुटवाल के तो आप वहुत अच्छे खिलाड़ी थे। छपरा-ज़िला-स्कूल की फुटवाल-टीम के आप कप्तान थे।

एम० ए० पास करके आपने कुछ मास तक मुजफ्फरपुर के भूमिहार-कालेज और कलकत्ता के सिटी कालेज में अध्यापक का कार्य किया, परन्तु वकालत करने की इच्छा होने से आपने १९०९ से कलकत्ता-हाईकोर्ट में वहांके प्रसिद्ध वकील सर सैयद शम्सुलहुदा के मातहत आर्टिकल्ड क्लर्क का काम करना शुरू कर दिया था। वाद में स्वतन्त्र प्रैक्टिस आरम्भ करने पर उसमें आपको अच्छी सफलता मिली। कुछ समय तक आपने कलकत्ता के लॉ कालेज में अध्यापक का भी काम किया। अपने समय के कलकत्ता-हाईकोर्ट के जूनियर वकीलों में आपका ऊँचा स्थान था। १९१६ तक आपने कलकत्ता-हाईकोर्ट में प्रैक्टिस की और वाद को पटना-हाईकोर्ट क़ायम होजाने पर आप पटना चले आये और १९२१ में वकालत छोड़ देने तक वहीं प्रैक्टिस करते रहे। आर्थिक दृष्टि से वह आपके उत्कर्ष का आरम्भिक काल था और यथेच्छ आमदनी करने का द्वार आपके लिए खुल गया था। तव भी ३०-४० हज़ार तक आपकी वार्षिक आमदनी थी और एक ही मुकदमा ३०-३२ हज़ार की फीस का आपके हाथों में था। सामने लक्ष्मी का हार होने पर भी आपने वकालत से मुंह मोड़कर स्वेच्छा से ग़रीवी के मार्ग का अवलम्वन कर लिया। अपनी आमदनी का अधि-कांश आप ग़रीव विद्यार्थियों पर ही खर्च देते थे।

लोक-सेवा और सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने का आपको विद्यार्थी-

अवस्था से ही शौक था। कलकत्ता के प्रेसिडेन्सी-कालेज में पढ़ते हुए आप वहाँकी अनेक सभा-सोसाइटियों में भाग लेते रहते थे। कलकत्ता में बिहारी-क्लब के नाम से बिहारी लोगों की एक संस्था थी। उसके आप कई वर्ष मन्त्री रहे। विद्यासागर-कालेज के प्रोफेसर सर सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय ने नवयुवकों में स्वदेशी, स्वाध्याय और आध्यात्मिक विचारों के प्रचार के लिए 'डॉन सोसायटी' के नाम से एक संस्था स्थापित की थी। उसकी तरफ से 'डॉन' (प्रातःकाल) नाम का एक पत्र भी प्रकाशित होता था। उस सोसाइटी के आप एक उत्साही सदस्य होने के अतिरिक्त उक्त पत्र नें लेखादि भी लिखा करते थे। १९०६ में आपने बिहारी-छात्र-सम्मेलन का संगठन करके उसका प्रथम अधिवेशन पटना में कर-वाया। १९२२ तक उस सम्मेलन के नियमित अधिवेशन होते रहे और उसने बिहार के विद्यार्थियों को जागृत तथा संगठित करने का बहुत बड़ा काम किया। १९२२ के बाद उस सम्मेलन का संगठन शिथिल पड़ गया। आपकी लोक-सेवा की इस रुचि और प्रवृत्ति को देखकर १९१० में श्री गोपालकृष्ण गोखले ने आपसे सर्वेण्ट्स आफ़ इण्डिया सोसाइटी का सदस्य बनने के लिए आग्रह किया। आप तो उसके लिए तैयार होगये, परन्तु आपके बड़े भाई महेन्द्रप्रसादजी ने और आपकी माता ने ऐसा न करने दिया।

आपने अपने बड़े भाई को उस सम्बन्ध में जो पत्र लिखा था, उस-से आपके चरित्र पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है और यह पता लगता है कि आपके हृदय में उस समय यानी १९१० में भी देशभक्ति की उत्कट भावना कैसे तीव्र रूप में जाग रही थी। सरलता, सादगी, निस्पृहता और निस्वार्थ सेवा का भाव भी आपके हृदय में अपना स्थान बना चुका था। आपने लिखा था, "मैं आपसे आमने-सामने बातें न कर सका। मैं अपने-में एक ऊँची और पवित्र भावना अनुभव कर रहा हूँ। आपको कठिनाई

में डालना मेरे लिए शोभास्पद नहीं। फिर भी मैं आपसे प्रार्थना करना चाहता हूँ कि आप ३० करोड़ के लिए कुछ त्याग करें। गोखले की सोसाइटी का सदस्य होना मेरे लिए कोई त्याग नहीं है। अच्छा हो या बुरा, परन्तु मुझे ऐसा अभ्यास है कि मैं अपनेको कैसी भी परिस्थिति के अनुकूल बना सकता हूँ। मेरा रहन-सहन भी इतना सीधा-सादा और सरल है कि मुझको कोई विशेष सुख-सुभीता और आराम नहीं चाहिए। मुझे सोसाइटी से जो-कुछ मिलेगा, काफ़ी होगा। पर, मुझे यह तो मानना ही चाहिए कि आपके लिए यह कुछ कम त्याग न होगा। आपने मुझसे बहुत बड़ी-बड़ी आशायें बाँधी हुई हैं, वे सब एक क्षण में नष्ट हो-जायँगी। इस विनाशी संसार में पूँजी, पद और प्रतिष्ठा सभी कुछ नष्ट होजाता है। जितनी पूँजी जमा होती है, उससे अधिक की इच्छा सदा बनी रहती है। प्रसन्नता बाहर से नहीं, भीतर से पैदा होती है। एक ग़रीब आदमी अपनी छोटी-सी पूँजी में लखपति की अपेक्षा कहीं अधिक सन्तुष्ट रहता है। हमें ग़रीबी के प्रति घृणा नहीं करनी चाहिए। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, वे सब अत्यन्त ग़रीब रहे हैं। शुरू-शुरू में उनको बहुत कष्ट भोगने पड़े हैं और उनको घृणा से देखा गया है, किन्तु अन्त में अत्याचार, और घृणा करनेवाले धूल में मिल गये, उनको जानने-पहचानने वाला भी कोई नहीं रहा। अत्याचार तथा घृणा का विरोध करने वालों को लाखों याद करते हैं और वे उनके हृदयों में बस जाते हैं। मेरी यदि कुछ भी महत्वकांक्षा है तो वह यही है कि मैं भारतमाता की कुछ तो भी सेवा कर सकूँ। गोखले की-सी प्रतिष्ठा, गौरव और प्रभाव किस राजा को प्राप्त हुआ है? क्या गोखले भी ग़रीब नहीं हैं?" २५-२६ वर्ष की आयु में, युवावस्था में, आपने जो ये शब्द लिखे थे, आज आपके जीवन में उनकी सचाई पूरे रूप में प्रकट हो रही है। यदि आप उस समय

गोखले की सोसाइटी के सभासद होगये होते, तो कौन कह सकता है कि आप आज कहाँ होते और क्या होते? लेकिन यह स्पष्ट है कि उस समय सोसाइटी का सदस्य न होना आपके और देश के लिए भी कुछ अधिक ही लाभप्रद और उपयोगी सिद्ध हुआ। सादगी, सरलता, देशभक्ति और देशसेवा की भावना का इस समय जैसा पूर्ण विकास हुआ है, वैसा तब होता कि नहीं, इसमें सन्देह है और इसमें भी सन्देह है कि तब देश के लिए स्वेच्छा से ग़रीबी अंगीकार करने का संकल्प भी इस रूप में पूरा होता कि नहीं?

छात्रों को संगठित करने के समान शिक्षा के क्षेत्र में भी आपने महत्वपूर्ण कार्य किया है। १९१५ में सरकार ने पटना-यूनिवरसिटी क़ायम करने के लिए जो क़ानून बनाया था, वह अत्यन्त दोषपूर्ण था। यदि वह जैसा-का-तैसा पास होजाता, तो बिहारी युवकों के लिए शिक्षा की सुविधायें पहले से भी कम रह जातीं। उस क़ानून में उच्च-शिक्षा देनेवाले कालेजों की संख्या नियत कर दी गई थी और यूनिवरसिटी का सारा नियन्त्रण भी प्रायः सरकार के हाथ में रक्खा गया था। आपने आन्दोलन करके उस क़ानून में अनेक सुधार करवाये और यूनिवरसिटी की सिनेट तथा सिण्डीकेट में जनता के प्रतिनिधियों को स्थान दिलवाया। आप स्वयं १९२० तक यूनिवरसिटी की सिनेट, सिण्डीकेट और कई फेकल्टियों के सदस्य थे। मैट्रिक तक की शिक्षा हिन्दी में होने का प्रस्ताव भी आपने सिनेट से पास कराया था, परन्तु उन्हीं दिनों असहयोग-आन्दोलन फिर शुरू होजाने से आपने यूनिवरसिटी से अपना सम्बन्ध त्याग दिया।

हिन्दी की सेवा आपने यूनिवरसिटी में उसे उच्च स्थान दिलाने का यत्न करके ही नहीं की, किन्तु अन्य भी अनेक उपायों से की है। १९१२

में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कलकत्ता-अधिवेशन के और १९२० में पटना-अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष आप ही थे। २६, २७ और २८ अप्रैल १९३५ को नागपुर में अखिलभारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन आपके सभापतित्व में हुआ और देशवासियों ने आपको आपकी हिन्दी-सेवा के लिए सम्मानित किया। पटना से प्रकाशित होनेवाले साप्ताहिक पत्र 'देश' के आप प्रवर्तक थे और कई वर्षों तक उसके सम्पादक भी रहे थे। १९२३ में कोकनाडा में काँग्रेस के साथ हुए दक्षिणभारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के आप सभापति हुए थे। हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में आपकी एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि अंग्रेजी का उच्चतम शिक्षण प्राप्त करने पर भी आप अन्य अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भारतीयों की तरह बोलचाल में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग बिलकुल नहीं करते। एक बार आपके कुछ मित्रों ने एक ऐसा क्लब बनाया था कि उसमें बातचीत करते हुए जो व्यक्ति जितने अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करता था उसे उतने पैसे जुरमाना देना पड़ता था। उस क्लब में सबसे कम जुरमाना आपको ही होता था।

फ़रवरी १९२१ में सरकारी शिक्षणालयों का बहिष्कार होने पर आपने अनेक मित्रों के साथ मिलकर राष्ट्रीय विद्यालयों और बिहार-विद्यापीठ की स्थापना की थी। बिहारी-छात्र-सम्मेलन द्वारा सरकारी स्कूल-कालेज छोड़ने का संगठित आन्दोलन किया गया था। परिणाम यह हुआ कि कुछ ही महीनों में विद्यापीठ के मातहत सैकड़ों स्कूल प्रान्त में खुल गये। एक समय था जब लगभग ६५० स्कूलों का विद्यापीठ से सम्बन्ध था और ६०-७० हजार विद्यार्थी उनमें शिक्षा पाते थे। असहयोग-आन्दोलन की गति मन्द होजाने पर यद्यपि उनमें से अधिकतर विद्यालय बन्द होगये, तथापि बाद को बिहार में खादी आदि का जो संगठित रचनात्मक कार्य हुआ और आज भी काँग्रेस का जो व्यापक तथा व्यव-

स्थित संगठन वहाँ दिखाई देता है, उसका वहुत-कुछ श्रेय उन्हीं विद्यालयों से तैयार हुए कार्यकर्त्ताओं को है। १९२३ से १९३० तक आप उन सब कार्यकर्ताओं की सहायता से एकान्त भाव से अपने प्रान्त में काँग्रेस को दृढ़ बनाने, उसके रचनात्मक कार्य को पूरा करने और चरखा-संघ की बिहार-शाखा के संगठन को मजबूत करने में लगे रहे। उन दिनों के आपके कार्य का ही यह परिणाम है कि बिहार में काँग्रेस और चरखा-संघ का कार्य वहुत उन्नति पर है।

काँग्रेस के राजनैतिक संगठन को अपने प्रान्त में सुदृढ़ वनाने के अलावा भी आप अपने प्रान्त के दुःखी और संकटापन्न लोगों की सेवा करने में सदा ही लगे रहे हैं। विहार के प्रलयकारी भूकम्प के वाद आपके जिस सेवा-भाव का परिचय देशवासियों को १९३४ में मिला, उसका परिचय अपने प्रान्तवासियों को आप वहुत पहले दे चुके थे। विहार अत्यन्त दुःखी, ग़रीव और संकटापन्न प्रान्त है। प्राकृतिक कोपों का वह प्रायः शिक़ार होता रहता है। १९१३ में दामोदर और पुनपुन नदियों की वाढ़ों ने विहार में भयानक त्रास फैला दिया था, १९२३ में गंगा की वाढ़ ने भीषण संकट पैदा कर दिया था, १९३१ में दुर्भिक्ष ने चम्पारन को उजाड़ दिया था और १९३४ में भूकम्प ने उत्तरीय विहार में और वाद में गंगा की वाढ़ ने शेष प्रान्त में प्रलय मचा दी थी। इन और ऐसे सव अवसरों पर अपने गिरे हुए स्वास्थ्य की कुछ भी परवा न कर आपने अपना खून-पसीना एक करके जनता की सेवा करने में कोई वात उठा नहीं रक्खी। प्रलयकारी भूकम्प के समय १५ जनवरी १९३४ को आप जेल में वीमार थे। आपकी सेवा की भावना और सहायता के कार्य की छाप सरकार पर भी कई वार लग चुकी थी। इसीसे १७ जनवरी को आप तुरन्त रिहा कर दिये गये। आपकी एक आवाज़ पर, दुःखी

विहार की सेवा के लिए, सारा देश उठ खड़ा हुआ और देशवासियों ने २९ लाख रुपये की भारी रकम और वहुत-सा सामान आपके हाथों में सौंप दिया। आपके प्रति जनता की अगाध श्रद्धा, दृढ़ विश्वास और एकनिष्ठ सम्मान का परिचय देने के लिए यही एक घटना वस है। विहार-केन्द्रीय-सहायक-समिति का संगठन और कार्य आपकी महान् कार्य-शक्ति का परिचायक है। आपके राष्ट्रपतित्व के कार्य-काल में ३१ मई १९३५ को क्वेटा में फिर वैसे ही प्रलय का भयानक दृश्य उपस्थित हुआ। क्वेटा को सैनिक-केन्द्र वताकर सरकार ने वहाँ किसीको भी सेवा और सहायता के लिए जाने नहीं दिया। आपकी और गाँधीजी की भी सेवा करने की प्रार्थना ठुकरा दी गई। वहाँ आहत हुए और वचे हुए लोगों को पंजाव, सिन्ध तथा अन्य प्रान्तों में अपने-अपने घरों को भेज दिया गया। उनकी सहायता के लिए आपने 'क्वेटा-भूकम्प-कष्ट-निवारिणी-समिति' का संगठन किया, पंजाव तथा सिन्ध का दौरा किया और स्थान-स्थान पर उक्त समिति के केन्द स्थापित करके सेवा तथा सहायता का कार्य संगठित किया। उस समय काँग्रेस के प्रति सरकार का रुख स्पष्ट होगया और यह पता चल गया कि उसको वह अपना शक्तिशाली शत्रु या प्रतिस्पर्धी समझ जनता की सेवा के सब अवसरों से वञ्चित रखना चाहती है।

१९ जुलाई को ई० आई० आर० पर भीषण वीहरा-रेलवे-दुर्घटना हुई। तव आप घटनास्थल पर गये और वहाँ आहतों की सेवा-सुश्रूषा का काम संगठित किया।

गाँधीजी ने १९१७ में चम्पारन में निलहे गोरों के अत्याचारों से किसानों को छुटकारा दिलाने का जो महान् कार्य किया था, उसको सफल वनाने में आपने गाँधीजी का पूरा हाथ वटाया था। आपका गाँधीजी के संसर्ग में आने का वह पहला ही अवसर था और तव यह

किसे पता था कि वह संसर्ग आपका ऐसा कायाकल्प कर देगा कि आप अपने सारे प्रान्त को ही गाँधीजी का प्रान्त बना देंगे ?

बिहार के प्रलयकारी भूकम्प के बाद जब आप अपने दुःखी प्रान्त की सेवा में संलग्न थे, तभी निठुर भगवान् को आपकी परीक्षा लेने की सूझी। घर की सब व्यवस्था और काम-काज से आप बहुत-कुछ निश्चिन्त थे। वह सब भार आपके बड़े भाई महेन्द्र बाबू ने सम्हाला हुआ था। उन्हीं दिनों में वह एकाएक बीमार पड़े और उनका देहावसान होगया। किसी और पर वैसे संकटापन्न समय में यह वज्रपात हुआ होता, तो उसका हृदय सहसा बैठ गया होता। पर, आपने पूरे धैर्य का परिचय दिया और उस भयानक संकट में भी अपने प्रान्त का संकट टालने में लगे रहे।

काँग्रेस में आप सबसे पहले १९०६ में शामिल हुए थे। उस वर्ष काँग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में दादाभाई नौरोजी के सभापतित्व में हुआ था। उसके बाद १९१६ में लखनऊ में और १९१९ में अमृतसर की काँग्रेस में शामिल हुए। तबसे आपका काँग्रेस के साथ स्थायी सम्बन्ध होगया है। १९२२ में गया में हुई काँग्रेस की स्वागत-समिति के आप प्रधान-मन्त्री थे। १९३० और १९३२-३३ के सत्याग्रह-आन्दोलन में आपको तीन बार जेल-वास के अतिरिक्त अनेक बार पुलिस की बर्बरतापूर्ण लाठियों की भी चोटें खानी पड़ीं। आप सदा ही वीर सिपाही की तरह मैदान में डटे रहे। आपका १९३२ में कटक में होनेवाली काँग्रेस का सभापति होना निश्चित था, किन्तु उस वर्ष सत्याग्रह छिड़ जाने के कारण काँग्रेस का अधिवेशन ही न हो सका। अतः १९३४ के अक्तूबर मास में जब बम्बई में काँग्रेस हुई, तब राष्ट्रीय सम्मान का वह उच्चपद आपको ही सौंपा गया। बम्बई में आपका जो स्वागत और सम्मान हुआ, वह अभूतपूर्व था। आलोचकों की दृष्टि में काँग्रेस मर

चुकी और उसकी प्रतिष्ठा समाप्त होचुकी थी, किन्तु वम्वई में आपकी प्रतिष्ठा के लिए हुए समारोह से आलोचकों का मुँह वन्द होगया।

वम्वई-कांग्रेस का अधिवेशन वहुत तंग समय में, विपरीत परिस्थितियों में और राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं में छाये हुए गहरे मतभेद के वातावरण में हुआ था। गाँधीजी राजनीति से संन्यास लेने की घोषणा कर चुके थे, मालवीयजी साम्प्रदायिक निर्णय को लेकर अपना अखाड़ा अलग वना चुके थे और युवकों ने समाजवादी दल की पताका अलग ही फहरा दी थी। सत्याग्रह-आन्दोलन के स्थगित किये जाने से देश के सार्वजनिक जीवन में प्रतिक्रिया शुरू होचुकी थी। फिर भी अधिवेशन के सफलता के साथ सम्पन्न होने का अधिकांश श्रेय आपके चातुर्य, कार्यशक्ति, दक्षता और व्यवहार-कुशलता को ही था। विषय-समिति में आपका विनोदपूर्ण नियन्त्रण देख लोग दंग रह गये। आपका भाषण वहुत सुन्दर और अत्यन्त विवेचनात्मक था। उसकी पंक्ति-पंक्ति में कांग्रेस द्वारा स्वीकृत ध्येय तथा कार्य-शैली में दृढ़ आस्था और देश के उज्ज्वल भविष्य में दृढ़ विश्वास प्रकट होता था। सुधार-योजना के खरीते (व्हाइटपेपर) की विद्वत्तापूर्ण आलोचना करके आपने उसकी वुरी तरह धज्जियाँ उड़ाईं थीं।

विहार-केन्द्रीय-सहायक-समिति के कार्य का भारी वोझ अभी हलका न हुआ था कि कांग्रेस के गुरुतर कार्य की ज़िम्मेदारी का भी सव भार आपपर आ पड़ा। गाँधीजी के राजनीति से अलग होजाने से वह भार अकेले आपको ही निभाना पड़ा। सवसे पहले १९१६ में एनी वेसेन्ट ने इस वात पर प्रकाश डाला था कि सभापति को केवल अधिवेशन के समारोह का सभापति न होकर वर्ष-भर कार्य करने की ज़िम्मेदारी को निभाना चाहिए। उसके वाद से, विशेपकर असहयोग-आन्दोलन के समय से, इस ज़िम्मेदारी को निभाना एक परिपाटी होगई है। सदा ही स्वास्थ्य

के गिरते-पड़ते रहने पर भी आपने उस परिपाटी को निभाने में पिछले सब राष्ट्रपतियों को मात कर दिया और उसका स्टैण्डर्ड इतना ऊँचा कर दिया कि आपके उत्तराधिकारियों के लिए उसको निभाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होगया है। महाराष्ट्र, कर्नाटक, वरार, पंजाव, मध्यप्रान्त, तामिलनाड, आन्ध्र, केरल, विहार, सिन्ध आदि का दौरा करके आपने काँग्रेस की प्रतिष्ठा को वढ़ाया है। देश की राष्ट्रीय शक्तियों का संचय करके आपने राजनैतिक चेतना को, प्रतिक्रिया शुरू होजाने पर भी, मरने से वचाया है। गत आन्दोलन में खाली हुए काँग्रेस के कोष को समृद्ध किया है। महासमिति के कार्यालय को 'स्वराज-भवन' में फिर से स्थापित कर उसको व्यवस्थित किया है। गाँधी-सेवा-संघ, चरखा-संघ और काँग्रेस-पार्लमेण्टरी-वोर्ड आदि की ज़िम्मेदारी को भी आपने पूरी तरह निभाया है। काँग्रेस-कर्मियों में स्थान-स्थान पर पैदा हुए मतभेदों को, विशेषकर वंगाल की जटिल समस्या को, सुलझाने का भी आपने निरन्तर यत्न किया है। काँग्रेस के नये विधान की व्यवस्था-सम्वन्धी गुत्थियों को सुलझाकर उसको कार्य में परिणत करने के लिए भी आपने कुछ कम श्रम नहीं किया। वंगाल के नज़रवन्दों, देशी-राज्यों की प्रजा और नये शासन-विधान में पद स्वीकार करने या न करने के विवादास्पद प्रश्नों से भी आपका कार्य-काल वहुत जटिल वन गया। काँग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती मानने की सूझ आपके ही दिमाग़ में पैदा हुई और उस समारोह के सारे देश में सफलता के साथ मनाये जाने का श्रेय भी आपको ही है।

१९३६ के अगस्त मास में आपने सीमाप्रान्त का व्यापक दौरा किया। एवटावाद, पेशावर आदि में आपको मान-पत्र भेंट किये गये। आप सीमान्त गाँधी के घर गये और खैवर का दर्रा भी देखने गये।

हिन्दुस्तान की यात्रा पर आये हुए लार्ड लोथियन २७ दिसम्बर १९३७ को आपसे मिले। राजबन्दियों की रिहाई के सवाल को हल करने के लिए आपने भी काफ़ी परिश्रम किया। बिहार में इस सवाल को लेकर जब वैधानिक संकट पैदा हुआ, तब आप अस्पताल में बीमार पड़े थे। प्रधान-मन्त्री श्री श्रीकृष्णसिंह आपसे परामर्श करने के लिए दो-तीन बार अस्पताल गये थे। साम्प्रदायिक समस्या को हल करने के लिए आप १९३६ में श्री जिन्ना से मिले और उसके बारे में एक फार्मूला भी तैयार किया। बिहार प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी द्वारा नियुक्त किसान-जाँच-कमेटी के कार्य का भार भी आपको ही निबाहना पड़ा।

जुलाई १९३७ से आप प्रायः बीमार चले आते हैं। लेकिन बीमार रहकर भी आप काम में लगे रहे। बीमार देह इतना गिर गया कि आपको सारा काम छोड़कर अक्तूबर १९३७ में अपने गाँव और जनवरी १९३८ में अस्पताल जाना पड़ा। अस्पताल से कुछ स्वस्थ होकर आप वर्धा गये, तो वहाँ फिर बीमार पड़ गये और सितम्बर १९३८ तक गाँधीजी ने आग्रहपूर्वक आपको वहीं रक्खा। प्रान्तीय-काँग्रेस-कमेटी के प्रधान-पद के कार्य से आपने लम्बी छुट्टी लेली। दिल्ली में कार्य-समिति और महासमिति के अधिवेशनों में शामिल होने के कोई ८—९ माह बाद अक्तूबर के तीसरे सप्ताह में पटना लौटे। इस बीच आपने सेठ जमनालालजी बजाज के साथ कलकत्ता होते हुए मदरास का दौरा किया था। वहाँ आप दोनों को मदरास-कारपोरेशन की ओर से मान-पत्र दिये गये थे।

बीमारी की हालत में भी आपपर कार्य और ज़िम्मेदारी का भार बराबर बना रहा। काँग्रेसी सरकारों के कार्य का नियन्त्रण और उनका पथ-प्रदर्शन करने के लिए बनाई गई पार्लमेण्टरी उपसमिति के सरदार

पटेल और मौलाना आज़ाद के साथ तीसरे सभासद आप हैं। बीमारी की वजह से आप अधिक काम तो नहीं कर सके, तो भी आपने बिहार-सरकार की सहायता करने में कोई बात उठा न रक्खी। उस क्षण तैयार किये गये टेनेंसी बिल की स्वीकृति एक प्रकार से आपके ही प्रयत्न का परिणाम था। किसानों, ज़मींदारों तथा सरकार में समझौता कराने में आपने मौलाना आज़ाद के साथ पूरा भाग लिया। बिहार-सरकार द्वारा स्टैण्डर्ड हिन्दुस्तानी के बारे में जाँच करने के लिए बनाई गई कमेटी के आप ही अध्यक्ष हैं। इसी प्रकार बिहार-सरकार द्वारा शिक्षा एवं श्रम के बारे में जाँच करने के लिए नियुक्त की गई कमेटियों के भी आप सभासद हैं। उस प्रान्त में पैदा हुई उत्कट और बहुत पेचीदी बिहारी-बंगाली-समस्या के हल करने का गुरुतर कार्य-भार आपको ही सौंपा गया है।

अभी-अभी आपनें बिहार-सरकार द्वारा स्वीकृत टेनेंसी बिलों के बारे में एक विस्तृत वक्तव्य प्रकाशित करके यह बताया है कि काँग्रेसी सरकारें किस प्रकार अपने चुनाव घोषणा-पत्र और काँग्रेस के आदेश को पूरा कर रही हैं।

काँग्रेस को अपने आदर्श एवं ध्येय पर क़ायम रखनेवाले महान् व्यक्तियों में आपका स्थान पहली पंक्ति में है। यह निर्विवाद है कि १९३१–३२ के आन्दोलन की विफलता से हुई प्रतिक्रिया और निराशा से काँग्रेस की किश्ती को पार लगाने में आपके व्यक्तित्व ने जादू का काम कर दिखाया है। राष्ट्रपतियों के लिए तूफ़ानी दौरों का आदर्श आपने ही स्थापित किया है। आपको 'आदर्श राष्ट्रपति' कहा जा सकता है और यह भी कहा जा सकता है कि आप सरीखे आदर्श राष्ट्रपतियों की ही हमारे देश को ज़रूरत है।

: ४३ :

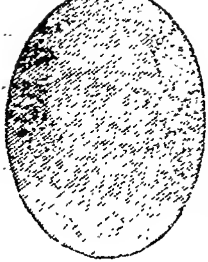

जवाहरलाल नेहरू

[जन्म—१४ नवम्बर १८८९]

चवालीसवाँ अधिवेशन, लाहौर—१९२९
उनचासवाँ अधिवेशन, लखनऊ—(अप्रैल) १९३६
पचासवाँ अधिवेशन, फ़ैज़पुर—(दिसम्बर) १९३६

"जबतक नेहरू-वंश के किसी भी बच्चे में ख़ून बाक़ी है, तबतक भारत पराजय स्वीकार नहीं कर सकता"—अपने पूज्य पिता श्री मोतीलालजी नेहरू के इन शब्दों की सचाई सिद्ध करने के लिए श्री जवाहरलालजी नेहरू भारत की स्वतन्त्रता के लिए अपना सिर हथेली पर लिये फिरते हैं। वस्तुतः नेहरूजी उस भव्य भावना की दिव्य मूर्त्ति हैं, जो साम्राज्य-वाद के विरुद्ध सारे ही संसार में और पराधीनता के विरुद्ध इस देश में प्रकट होकर पूरे वेग के साथ चारों ओर फैल रही है। अपने देश की पूर्ण स्वाधीनता की आकांक्षा की नेहरूजी जीवित प्रतिमा हैं। १९२२ में गिरफ्तार किये जाने के बाद १७ मई को अदालत में आपने बिल्कुल ठीक ही कहा था कि "मुझे अपने सौभाग्य पर स्वयं आश्चर्य होता है। स्वतन्त्रता के युद्ध में भारत की सेवा करना बड़े सौभाग्य की बात है। गाँधीजी जैसे नेता के नेतृत्व में वह सेवा करना और भी अधिक सौभाग्य की बात है। परन्तु, अपने प्यारे देश के लिए कष्ट-सहन करना कितना बड़ा सौभाग्य है? किसी भी भारतीय के लिए इससे बढ़कर और सौभाग्य नहीं होसकता कि उसके प्राण अपने गौरवपूर्ण लक्ष्य के सिद्ध करने में

चले जायँ।" गाँधीजी ने १९२९ में आपके लाहौर-काँग्रेस का सभापति मनोनीत होने पर आपके सम्बन्ध में कितने सुन्दर शब्द लिखे थे कि "वहादुरी में कोई उनसे वढ़ नहीं सकता और देशप्रेम में उनके आगे कौन जा सकता है ? कुछ लोग उनको जल्दवाज और अधीर कहते हैं, किन्तु यह तो इस समय गुण हैं। जहाँ उनमें वीर योद्धा की तेज़ी और अधीरता है, वहाँ उनमें राजनीतिज्ञ का विवेक भी है। स्फटिकमणि की भाँति वह पवित्र हैं। उनकी सचाई सन्देह से रहित है। वह अहिंसक और अभिनन्दनीय योद्धा हैं। राष्ट्र उनके हाथों में सुरक्षित है।" सात वर्ष वाद फिर दुवारा और तिवारा प्रायः सर्वसम्मति से राष्ट्रपति के आसन पर आपको विठाकर देशवासियों ने आपके प्रति अपने विश्वास, श्रद्धा तथा आदर को अभिव्यक्त करते हुए यह वता दिया कि वे भी अपनेको आपके हाथों में पूरी तरह सुरक्षित समझते हैं। काँग्रेस की स्थापना के वाद जन्म लेकर राष्ट्रपति का सम्मान इतनी कम अवधि में तीन वार प्राप्त करने का सौभाग्य सिवा आपके और किसको प्राप्त हुआ है ?

आपका जन्म १४ नवम्बर १८८९ को इलाहावाद के मीरगंज मुहल्ले में हुआ था। मोतीलालजी ने तवतक आनन्द-भवन वाला स्थान नहीं लिया था और वह मीरगंज मुहल्ले में ही रहते थे। आपसे पहले वह दो पुत्र खो चुके थे। उनकी नज़रों में सन्तान का मूल्य वहुत वढ़ चुका था। इसीसे आपके लालन-पालन का वढ़िया-से-वढ़िया प्रवन्ध किया गया। राजघराने की-सी सव सुविधायें आपके लिए जुटाई गईं। अंग्रेज़ वालकों के ढंग पर गोरी दाइयों ने आपका लालन-पालन किया और शुरू-शुरू में अंग्रेज़ अध्यापिकायें ही आपको पढ़ाने के लिए नियुक्त की गईं। वंगले के वाहर आप वहुत कम जा पाते थे। पढ़ना-लिखना, खेलना-कूदना सव कुछ घर पर ही होता था। फुटवाल खेलने, घोड़े पर चढ़ने और घर के

छोटे-से तालाब में तैरने का आपको बहुत शौक था। टैनिस के भी आप पूरे प्रेमी थे। भारत के किसी भी स्कूल में आप एक दिन के लिए भी पढ़ने नहीं गये। घर पर ही आपकी प्रारम्भिक शिक्षा का सब प्रबन्ध किया गया था। रहन-सहन का सब रंग-ढंग विलायती होने पर भी पाँच वर्ष की आयु में आपका विद्यारम्भ-संस्कार पुराने ढंग पर किया गया था।

वे सब सद्गुण, जो राष्ट्रपति के रूप में आज आपमें दीख पड़ते हैं, बचपन में ही धुंधलेपन में आपमें विद्यमान थे। आप छोटी अवस्था में बहुत गम्भीर और शान्त प्रकृति के थे। मिज़ाज आपका सीधा-सा था। चेहरे पर भोलापन था। बड़ी गम्भीर जिज्ञासा से आप प्रत्येक बात को देखा करते थे। जो ठीक जँच जाता था, उसको करने में चूकते नहीं थे। प्रतिभा आपकी प्रखर थी और बगावत करने की प्रकृति भी आपमें बचपन में ही पैदा होगई थी। बचपन के गुणों का पूर्ण विकास आपके इस समय के जीवन में पाया जाता है।

भाग्य से ही अच्छा गुरु मिलता है। ग्यारह वर्ष की आयु में आपको सौभाग्य से ऐसा गुरु मिल गया, जिसने आपके जीवन का सब क्रम ही बदल दिया। कहा जाता है कि आज के जवाहरलालजी उसीके संस्कारों का शुभ परिणाम हैं। आँखों को चौंधिया देनेवाले पश्चिमीय भोग-विलास के 'आनन्द-भवन' के उस वातावरण में हृदय के पूर्ण आस्तिक और जाति के अंग्रेज़ मि० एफ० टी० ब्रुक्स नाम के गुरु ने जाति के हिन्दुस्तानी और हृदय के अंग्रेज़ मोतीलालजी के लाड़ले बेटे को अपने ढंग से पढ़ाना शुरू किया। बालक ने एक दिन मांस खाने से इन्कार किया और दूसरे दिन सिनेमा-थियेटर जाना छोड़ दिया। मोतीलालजी को यह सहन नहीं हुआ और गुरुजी को 'आनन्द-भवन' छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा। कोमल हृदय पर फोटो के शीशे पर बने हुए चित्र की तरह उन संस्कारों

ने अपना स्थान बना लिया। इसी बीच गवर्मेण्ट हाईस्कूल इलाहाबाद के हेडमास्टर मि० गार्डन भी आपको पढ़ाने का काम करते रहे। मि० ब्रुक्स के बाद बाबू शशिभूषण चट्टोपाध्याय और महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा भी आपको पढ़ाते रहे। इस प्रकार अंग्रेज़ी, हिन्दी और उर्दू की आपने अच्छी शिक्षा प्राप्त करली और कुछ-कुछ संस्कृत का भी अध्ययन कर लिया।

यह बिलकुल स्वाभाविक था कि मोतीलालजी शिक्षा के लिए आपको विलायत भेजते। इसलिए पन्द्रह वर्ष की आयु होने पर १९०४-५ में आपको विलयात भेजने का विचार किया गया। आपको अकेला भेजना उचित न समझ मोतीलालजी सपरिवार विलायत के लिए रवाना हुए। कुछ मास भ्रमण करने के बाद आपको वहांके सुप्रसिद्ध प्राचीन स्कूल हैरो में भर्ती कर दिया गया। पामर्स्टन, राबर्ट पील, स्पेंसर, पर्सीविल और स्टेनली बाल्डविन सरीखे इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध महामन्त्रियों को जन्म देने का गौरव इसी स्कूल को है। शेरीडन, बायरन सरीखे कवि एवं नाटककार भी इसी स्कूल के छात्र थे। वेलज़ली, डलहौज़ी, सर जॉन शोर, हेस्टिंग्स, लिटन, हार्डिज आदि भारत के वाइसराय भी यहीं के विद्यार्थी थे। कपूर्थला के टीका साहब और गायकवाड़ के स्वर्गीय पुत्र जयसिंह आदि आपके सहपाठी थे। स्कूल की पढ़ाई बहुत व्ययसाध्य थी। पुत्र को सुशिक्षित बनाने में मोतीलालजी ने ख़र्च का ख़याल नहीं किया। पानी की तरह पैसा बहाकर पुत्र को पढ़ाया। १९०७ में एण्ट्रेंस पास करके आप केम्ब्रिज के ट्रिनिटी कालेज में भरती हुए और ज़ूलोजी, बोटनी तथा केमिस्ट्री में आपने सम्मान-सहित बी० ए० पास किया। आपकी असाधारण योग्यता के कारण बिना परीक्षा के ही आपको एम० ए० आनर्स का सार्टिफिकेट दे दिया गया। यहाँ कालेज में स्वर्गीय शेरवानी

सर सुलेमान, ख्वाजा अब्दुलमजीद, डा० महमूद, डा० किचलू आदि आपके सहपाठी थे। स्वर्गीय यतीन्द्रमोहन सेनगुप्त प्रायः पढ़ाई समाप्त करचुके थे। केम्ब्रिज में भारतीय विद्यार्थियों की 'इण्डियन मजलिस' नाम की एक संस्था थी। आप उसके प्रमुख सभासद थे। एम० ए० की डिग्री लेने के बाद १९१० में आप 'इनर टेम्पुल' में भरती हुए और १९१२ में आपने वहांसे बार-एट-लॉ की डिग्री हासिल की। उसी वर्ष जून में आप भारत लौट आये। वहाँ रहते हुए आपने यूरोप के कुछ देशों का भ्रमण भी किया।

फरवरी १९१६ में दिल्ली के पं० जवाहरलाल कौल की सुयोग्य कन्या कमला के साथ बड़े ठाठ-बाट और समारोह से आपका विवाह हुआ। १९१७ में पुत्री इन्दिरा का जन्म हुआ। १९२४ में एक और सन्तान हुई, किन्तु वह तीन दिन से अधिक जीवित न रही। दो और सन्तानें भी हुईं थीं, किन्तु वे भी अकाल में ही काल का ग्रास होगई थीं। १९२० के असहयोग में बैरिस्टरी का सर्वथा परित्याग करने तक आप थोड़ी-बहुत प्रैक्टिस अपने पिताजी के साथ करते रहे थे। प्रैक्टिस में आपका कभी दिल नहीं लगा। इसलिए पिताजी की इच्छा होने पर भी आप ऊँचे दरजे के वकील या बैरिस्टर नहीं बन सके।

विलायत से आप सोलह आना अंग्रेज बनकर लौटे थे। १९२२ में आपने स्वयं ही अदालत में अपनेपर चलाये गये मुक़दमे के सिलसिले में कहा था कि "दस वर्ष से कम हुए कि जब मैं इंग्लैंड से भारत लौटा था, तब मैं अपने विचार और रहन-सहन में हिन्दुस्तानी से अधिक अंग्रेज था। मैं सारे ही संसार को एक अंग्रेज की आँखों से देखा करता था। इसलिए कोई भी भारतवासी इंग्लैण्ड और अंग्रेजों का जितना पक्षपाती हो सकता है, उतना मैं उस समय था।" पर, आपको समझनेवालों का यह खयाल उस समय ही बन चुका था कि अधिक दिनों तक आप

वैसे न रह सकेंगे। वैसा ही हुआ भी। अंग्रेज़ियत के साथ-साथ आपके हृदय में स्वाधीनता-प्रेम भी पैदा होगया था। अपने देशवासियों की हीनता और देश की पराधीनता आपको वहुत अखरती थी। आपको वहुत वचपन से जाननेवाले श्री सच्चिदानन्द सिंह ने लिखा है कि लाल-पाल-वाल के उग्र विचारों का आपके कोमल हृदय पर वहुत गहरा असर पड़ा था। उनके व्याख्यानों की रिपोर्टों और लेखों को आप वहुत ध्यान से पढ़ा करते थे। उस समय के आन्दोलन का, विशेषतः वंग-भंग की घटनाओं का, आप वड़ी तत्परता के साथ अध्ययन किया करते थे। इंग्लैण्ड से लौटने के वाद दिसम्वर १९१२ में वाँकीपुर-पटना में हुई काँग्रेस में आप दर्शक की हैसियत से सम्मिलित हुए। १९१३ में युक्तप्रान्तीय काँग्रेस कमेटी के आप सदस्य वने। दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह के लिए चन्दा जमा करने के लिए इलाहावाद में जो कमेटी वनाई गई, उसके आप मन्त्री नियुक्त हुए और आपने पचास हज़ार रुपया जमा किया। फिजी-प्रवासी भारतीयों के लिए भी आपने लगकर आन्दोलन किया। १९१५ में वम्वई में लार्ड सिनहा की अध्यक्षता में हुए काँग्रेस के अधिवेशन में आप शामिल हुए। एनी वेसेण्ट ने काँग्रेस में सफलता न मिलने पर जव स्वतन्त्र रूप से होमरूल-लीग का संगठन करना शुरू किया, तव संयुक्तप्रान्त में उसकी शाखा खुलने पर आप भी श्री मंज़रअली सोख्ता और श्री सुन्दरलालजी के साथ उसके संयुक्त मन्त्री हुए। निर्वासन से मुक्त होकर एनी वेसेण्ट जव इलाहावाद आईं, तव 'आनन्द-भवन' में सव नेता उनके स्वागत के लिए इकट्ठे हुए थे। उस अवसर पर लिये गये फोटो में आज के जवाहरलालजी की स्पष्ट छाया दीख पड़ती है। लोकमान्य तिलक, सरोजिनी नायडू, अम्विका-चरण मजूमदार और मोतीलाल घोष के साथ आप उस फोटो में कुरते और धोती के वेश में दिखाई देते हैं।

१९१९ में रौलेट-एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह-आन्दोलन शुरू हुआ। आपका उससे अलग रह सकना सम्भव नहीं था। बूढ़े पिता इतने लाड़-प्यार से पाल-पोसकर रक्खे गये अपने इकलौते बेटे का त्याग-तपस्या और कष्ट-सहन के बीहड़ प्रदेश की ओर जाना कैसे सहन कर सकते थे? पर, पिता की ममता पर देश की ममता की कुछ ऐसी विजय हुई कि पुत्र अपने साथ पिता को भी उस ओर लेआने में सफल होगये। उन दिनों की दो घटनाओं का यहाँ उल्लेख कर देना आवश्यक है। १९१८ में लखनऊ में संयुक्तप्रान्तीय राजनैतिक परिषद् का विशेषाधिवेशन हुआ। मोतीलालजी अपने अध्यक्ष-भाषण में सरकारी अन्यायों का वर्णन करने के बाद उनके विरुद्ध आन्दोलन करने की बात कहकर ब्रिटिश जनता की सद्भावना पर विश्वास करनें की सलाह दे रहे थे कि जनता में से एक ओर से आवाज़ सुन पड़ी—"क्वेश्चन !" मोतीलालजी आवेश में आगये और क्रुद्ध होकर बोले—"मेरी इस बात से इन्कार करने का साहस कौन करता है?" 'क्वेश्चन' शब्द की वही आवाज़ फिर गूंज उठी। वह आवाज़ किसी और की नहीं, वीरवर जवाहरलाल की थी। फिर, १९१९ में भी ऐसा ही हुआ। मोतीलाल जी एक सभा में गांधी-जी की रौलेट-एक्ट के विरुद्ध की गई सत्याग्रह की घोषणा की कुछ आलोचना कर रहे थे। 'शेम' 'शेम' की वही परिचित आवाज़ सभा-भवन में गूंज उठी। जवाहरलालजी आज जिस तेजस्विता के पुञ्ज दीख पड़ते हैं, उसका बीज उनके सार्वजनिक जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में ही विद्यमान था। जलियांवाला बाग के हत्याकाण्ड और पंजाब की फ़ौजी हुकूमत की नंगी करतूतों की जाँच के सम्बन्ध में आपको मोतीलालजी के साथ पंजाब जाकर गाँव-गाँव घूमने का अवसर प्राप्त हुआ। दुःखी देश-वासियों की आहें आपके भावुक हृदय में प्रवेश कर गई। उन्ही दिनों

गाँधीजी की संगति का आपको लाभ मिला और उनके व्यक्तित्व का आपपर बहुत गहरा असर पड़ा।

५ फरवरी १९१९ को 'वसन्तपञ्चमी' के शुभ-मुहूर्त्त पर इलाहाबाद से अंग्रेजी का दैनिक पत्र 'इण्डिपेण्डेण्ट' निकाला गया। उसके संचालन में आपका मुख्य हाथ था। सरकारी कोप का शिकार होजाने के कारण वह अधिक नहीं चल सका, किन्तु जितने दिन निकला उतने दिन निर्भीकता, सचाई और साहस के साथ उसने जनता के पक्ष का समर्थन किया और काँग्रेस के झण्डे को झुकनें नहीं दिया। शहीद की तरह उस पत्र ने अपनेको देश के लिए उत्सर्ग कर दिया। 'इण्डिपेण्डेण्ट' द्वारा जवाहरलालजी के 'इण्डिपेण्डेण्ट' (स्वतन्त्र) व्यक्तित्व का देशवासियों को अच्छा परिचय मिल गया।

१९२० की गरमियों में आप सपरिवार मसूरी गये थे। उन्हीं दिनों में अफगान-राजदूत भी वहाँ आकर ठहरे हुए थे। सरकार को भय हुआ कि वहाँ आप उनके साथ मिलकर कोई गुप्त षड़यन्त्र न रच डालें। २४ घण्टे में मसूरी छोड़ने का नोटिस आपपर तामील किया गया। उस समय आप वहाँसे चले आये, किन्तु कुछ ही दिनों वाद उस नोटिस को तोड़ने का निश्चय करके सरकार को आपने मसूरी जाने की सूचना दे दी। नोटिस तुरन्त वापस ले लिया गया। सरकार के साथ आपकी वह पहली झपट थी, जिसमें आपने अपने स्वाभिमान की रक्षा का उज्ज्वल परिचय दिया।

१९१९ से १९२१ तक संयुक्तप्रान्त में किसान-आन्दोलन ने जो उग्ररूप धारण किया, उससे आपकी संगठन-शक्ति, कर्तृत्व-शक्ति तथा आन्दोलक-शक्ति का उत्कृष्ट परिचय मिला और लोगों को पता चला कि 'आनन्द-भवन' के राजप्रासाद में राजसी ठाठ-वाट में राजकुमारों से भी

अधिक आराम की जिन्दगी वितानेवाले सुकुमार जवाहर दुःखी किसानों में जाकर किस प्रकार अपनेको भुला सकते हैं ? आपको वहुधा उनके झोंपड़ों में कम्वल ओढ़कर पुआल के विस्तर पर सोना पड़ता था । उनकी मोटी रोटी और रूखे-सूखे साग-पात में आप षड्रस भोजन का आनन्द लिया करते थे । अरहर के खेतों में पानी और कीच में धोती चढ़ाये आपको मीलों पैदल चलना पड़ता था । कितना महान् वह परिवर्तन था, जिसने अवध के किसानों में एक तूफान पैदा कर दिया ! सरकार घवरा गई । रायवरेली में उस तूफान को दवाने के लिए गोली चला दी गई । वात यह थी कि किसान अपने कुछ नेताओं की गिरफ्तारी का प्रतिवाद करने के लिए जमा हुए । आपको भी वहाँ बुलाया गया । जव आप वहाँ पहुँचे, तो नदी के उसपार किसानों के पास जाने से आपको वलपूर्वक रोक दिया गया । उधर गोली चल गई । आपका दिल भर आया । क्या करते ? विवश थे । पर, किसानों पर चली हुई एक-एक गोली आपके हृदय को वेध गई । जलियांवाला और पंजाव की घटनाओं से हृदय में पैदा हुए घाव पर नमक छिड़क गया । किसान दृढ़ रहे और सरकार को अवध-टेनेंसी-क़ानून वनाकर उनकी माँगों को स्वीकार करना पड़ा ।

देश में असहयोग की दुन्दुभि वज उठी । जवाहरलालजी वीर योद्धा की तरह मैदान में उतर आये । युवराज के स्वागत के वहिष्कार में १९२१ में आपको लखनऊ में पहली वार छः मास की सज़ा हुई । तीन ही मास वाद आप छोड़ दिये गये । उसके वाद से आपका एक पैर सदा जेल में ही रहता है । पर, यह भी एक अनहोनी-सी वात है कि वहुत लम्वी-लम्वी सजायें होने पर भी आपने सिवा एक वार के और कोई सजा जेल में पूरी नहीं की । कभी माता, कभी पिता, तो कभी पत्नी की

बीमारी या अन्य किसी वजह से आपको प्रायः सजा की अवधि पूरी होने से पहले ही छोड़ दिया गया। १७ मई १९२२ को विदेशी कपड़ों की दूकानों पर धरना देने पर आप दूसरी बार गिरफ्तार किये गये। वारण्ट पर राजद्रोह की धारा १२४ ए लिखी गई थी, किन्तु मुकदमा चलाया गया धारा ३८५ के अनुसार। "धमकाने और जबरन रुपया वसूल करने की कोशिश में सहायता देने" के अपराध के लिए डेढ़ वर्ष और १००) रुपये जुर्माने की सजा हुई। इसी अवसर पर आपने अदालत में वह महत्वपूर्ण बयान दिया था, जिसकी कुछ पंक्तियाँ ऊपर उद्धृत की गई हैं। इस बार भी ९ मास बाद जनवरी में आप छोड़ दिये गये। जेल से आने के बाद आप संयुक्तप्रान्तीय काँग्रेस कमेटी के मन्त्री चुने गये।

उसी अवसर में आप १९२२ में इलाहाबाद-म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमैन चुने गये थे। उस पद की ज़िम्मेदारी आपने १९२५ तक इतनी योग्यता, निर्भीकता और तत्परता के साथ निबाही थी कि आपकी कार्य-क्षमता की सरकारी रिपोर्टों तक में प्रशंसा की गई है।

१९२३ में जब आप जेल से बाहर आये, तब काँग्रेस में कौंसिलों के कार्यक्रम को लेकर दो दल बन चुके थे। आपने भी उनमें समझौता कराने का यत्न किया। कौंसिलों के कार्यक्रम में आपका रत्ती-भर भी विश्वास न था। फिर भी दोनों दलों का आपमें एक-समान विश्वास था। सितम्बर १९२३ में काँग्रेस का दिल्ली में विशेषाधिवेशन होकर दोनों दलों में समझौता होगया। उन्हीं दिनों में नाभा राज्य के जैतो स्थान में अकालियों का सत्याग्रह होरहा था। आचार्य गिडवानी और डा० किचलू वहाँ गिरफ्तार किये जा चुके थे। आप भी काँग्रेस के विशेषाधिवेशन के बाद जैतो गये। आपपर १४४ धारा लगाकर आपको वहाँ जाने से रोका गया। हुक्म की अवज्ञा करके आप वहाँ गये और गिरफ्तार

कर लिये गये। मुकदमा चला और आपको ढाई वर्ष की सजा हुई। पर न मालूम क्यों तुरन्त ही वह सज़ा मुल्तवी करदी गई और आप रिहा कर दिये गये।

इसी बीच मई-जून में नागपुर में झण्डा-सत्याग्रह होरहा था। कांग्रेस के स्वराज्य-दली नेता और श्री मोतीलालजी तक उसके विरुद्ध थे और उसका मज़ाक़ भी करते थे। पर, आप उसका समर्थन करने के लिए नागपुर पहुँचे। एक ही दिन में कोई तीन-चार सौ गिरफ्तारियाँ करके सरकार जब उस सत्याग्रह को कुचल डालना चाहती थी, तब आप नागपुर में थे और आपकी उपस्थिति ने वहाँके वातावरण में बिजली का कुछ ऐसा संचार कर दिया कि सरकार का दमन धीमा पड़ गया, लेकिन आन्दोलन धीमा नहीं पड़ा।

१९२३ के दिसम्बर मास में कोकनाडा में कांग्रेस के अधिवेशन के साथ हिन्दुस्तानी-सेवा-दल की स्थापना के लिए स्वयंसेवकों की पहली परिषद् का आयोजन किया गया। नागपुर के झण्डा-सत्याग्रह में पहली बार भिन्न-भिन्न प्रान्तों के स्वयंसेवक एकसाथ एक प्रान्त की जेलों में इकट्ठे हुए थे। एक-दूसरे को जानने-पहचानने और आपस की कमियों तथा कमज़ोरियों को समझने का वह पहला ही अवसर प्राप्त हुआ था। नागपुर सेण्ट्रलजेल में डा० हार्डीकर ने कुछ मित्रों के साथ विचार-विनिमय करके स्वयंसेवक-दल को संगठित करने का निश्चय किया था। कोकनाडा की वह परिषद् और उसके बाद स्थापित हुआ हिन्दुस्तानी-सेवा-दल उसी निश्चय के परिणाम थे। उस परिषद् के पहले सभापति के रूप में समस्त भारत के सर्वप्रथम संगठित स्वयंसेवक-दल के अधिपति, सेनापति, नायक अथवा 'कमाण्डर-इन-चीफ़' होने का परमसौभाग्य भी आपको ही प्राप्त हुआ। इस संगठन या आन्दोलन के आप ही प्राण रहे हैं। शुरू

में कुछ उदासीन रहकर भी कांग्रेस ने इस संगठन को आपके ही कारण अपनाया और आपके ही कारण वह कांग्रेस-संगठन का एक मुख्य शक्तिशाली अंग बन गया।

कोकनाडा में आप कांग्रेस के प्रधान-मन्त्री चुने गये। जेल और राष्ट्रपति के काल को छोड़कर आप तबसे १९३६ तक बराबर इस पद पर रहे। महासमिति-कार्यालय को व्यवस्थित करके उसकी प्रतिष्ठा को सरकारी दफ्तरों के समान बनाकर कांग्रेस-कार्यालयों का जाल सारे देश में बिछा देने का कार्य आपने बहुत अच्छी तरह किया।

कमलाजी की बीमारी के कारण आपको उनके औषधोपचार के लिए १९२६ में स्वीज़रलैण्ड जाना पड़ा। यूरोप की राजनैतिक परिस्थिति का उन दिनों में आपने अच्छा अध्ययन किया। फ़रवरी १९२७ में ब्रूसेल्स में हुई साम्राज्य-विरोधी-परिषद् में आप कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से सम्मिलित हुए। आइन्स्टीन, रोम्या रोलां, श्रीमती सनयातसेन, जार्ज लैंसबरी के साथ आप भी उसकी एक दिन की बैठक के अध्यक्ष हुए थे। उसके झण्डा-चौक में भारत का तिरंगा झण्डा भी आपने फहराया था। परिषद् का आपको एक प्रधान-मन्त्री चुना गया था; किन्तु जब उसके लिए आपने असमर्थता प्रकट की तो आपको उसकी कार्य-समिति का सदस्य चुना गया। नवम्बर १९२७ में सोवियट सरकार के निमन्त्रण पर आप रूस गये और वहाँ रूसी प्रजातन्त्र के दसवें उत्सव में सम्मिलित हुए। वहाँकी परिस्थिति का आपपर ऐसा गहरा असर पड़ा कि आप समाजवाद के रंग में रंग गये।

आपने यूरोपियन राष्ट्रों की स्थिति का अध्ययन करके जो विचार स्थिर किये थे, स्वदेश लौटने पर उनका दृढ़ता के साथ प्रचार शुरू किया। उन दिनों के आपके लेखों और भाषणों में एक नवीन ओज,

नवीन स्फूर्ति, नवीन विचारधारा रहती थी। राजनीति में समाजनीति का समावेश कर राजनैतिक स्वाधीता के साथ-साथ नवीन सामाजिक निर्माण की आवश्यकता के नये दृष्टिकोण को आपने देशवासियों के सामने उपस्थित किया। जो लोग आपको सिर्फ एक योद्धा और नेता समझते थे, आपको प्रतिभासम्पन्न विचारक के रूप में देखकर चकित रह गये। युक्तप्रान्त और पंजाब के प्रान्तिक राजनैतिक सम्मेलनों, बंगाल के प्रान्तीय छात्र-सम्मेलन और बम्बई के प्रान्तीय युवक-सम्मेलन आदि के अध्यक्ष-पद से आपने जो भाषण दिये, उनसे देश में एक नई चेतना और नया जीवन पैदा होगया। देश के जीवन में चहुँमुखी क्रान्ति पैदा करने की आवश्यकता का स्पष्ट प्रतिपादन करके आपने स्वाधीनता का व्यापक अर्थ देशवासियों के सामने पेश किया। १९२७ में मदरास में हुई कांग्रेस में यद्यपि आपका पेश किया हुआ कांग्रेस के ध्येय को बदलने का पूर्ण-स्वाधीनता का प्रस्ताव स्वीकृत न होसका था, किन्तु आपकी जगाई हुई भावना और पूर्ण-स्वाधीनता के लिए पैदा की हुई लालसा फिर कभी धीमी नहीं पड़ी। उसीके परिणाम-स्वरूप दिल्ली में ३-४ नवम्बर १९२८ को "भारतीय स्वाधीनता संघ" की स्थापना हुई। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक स्वाधीनता के सर्वव्यापी ध्येय को सम्मुख रख, चहुँमुखी क्रान्ति की भावना से प्रेरित हो, स्थापित की गई वह पहली संस्था थी।

देश के मजूर-आन्दोलन पर भी आपके व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ा और १९२९ में झरिया में हुई मजूर-कानफ्रेंस के आप सभापति चुने गये। तब आपने जो भाषण दिया था, वह भारत के मजूर-आन्दोलन के इतिहास पर अपनी छाप सदा के लिए छोड़ गया है।

दिसम्बर १९२८ में श्री मोतीलालजी नेहरू के राष्ट्रपतित्व में हुए

काँग्रेस के अधिवेशन में आपको अपनेको दबा लेना पड़ा और पूर्ण-स्वाधीनता सम्बन्धी आपका प्रस्ताव काँग्रेस में स्वीकृत न होसका, किन्तु किसको पता था कि दो वर्षों से जो बात टलती आ रही थी, वह किन्तु आपके ही राष्ट्रपतित्व में होने को थी। कलकत्ता-कांग्रेस में सरकार को दी गई एक वर्ष की अवधि का पालन काँग्रेस ने १९२९ की दिसम्बर की रात के १२ बजे तक किया। उसके बाद आपके ही नेतृत्व में काँग्रेस ने अपने 'पूर्ण-स्वाधीनता' के ध्येय की घोषणा की। उस रात का स्वर्गीय दृश्य देखनेवाले उसे कभी भूल नहीं सकते। उस काँग्रेस की सारी ही घटनायें कुछ अभूत-पूर्व थीं। राष्ट्रपति का घोड़े पर पहली बार जलूस निकाला गया था और पहली बार स्वतन्त्रता की घोषणा होने पर उपस्थित प्रतिनिधियों ने नाचने-गाने और खुशियों में वह सारी रात बिताई थी। बूढ़े पिता का हृदय भी गद्‌गद् होगया। जो किसी दिन अपने पुत्र को बीहड़ जंगल में जाते देख अधीर होजाता था, वह आज उसको राष्ट्र के सर्वाधिक सम्मान के सर्वोत्तम स्थान पर बैठ सारे राष्ट्र का निश्चित ध्येय की ओर नेतृत्व करते हुए देख फूला न समाता था। यही अवस्था उस माता के हृदय की थी, जिसने कोमल हाथों पर भी गदेले रख, आँखों के सितारे, हृदय के प्यारे टुकड़े, दुलारे लाल को बड़ी-बड़ी आशाओं और आकांक्षाओं के साथ पाला था।

१९३० में १९२० की तरह फिर राष्ट्र ने एक करवट बदली। पूर्ण-स्वाधीनता की लहरों पर देश का हृदय उछल पड़ा। २६ जनवरी को स्वाधीनता-दिवस मनाया गया। पूरी गम्भीरता और सच्चाई के साथ सारे देश ने एकस्वर से स्वाधीनता का वह प्रतिज्ञा-पत्र पढ़ा, जिसका उल्लेख भारत के इतिहास में भारत के मैगनाचार्टा के रूप में किया जायगा। कहा जाता है कि वह प्रतिज्ञा-पत्र या घोषणा-पत्र आपका ही

लिखा हुआ है। यूरोप से लौटकर जिस विचार-धारा को आपने इस देश में जन्म दिया था, उसीका प्रतिविम्ब उसमें अंकित था। स्वाधीनता की घोषणा के बाद उसके लिए युद्ध होना अनिवार्य था। गाँधीजी का अल्टीमेटम, दांडी की यात्रा और सारे देश में नमक-क़ानून की अवज्ञा आदि सब घटनायें तूफ़ान की तरह घट रही थीं। संयुक्तप्रान्त में १० अप्रैल को आपके नेतृत्व में नमक-क़ानून तोड़ा गया और १२ अप्रैल को आप गिरफ्तार किये गये। ६ मास की सज़ा हुई। बीच में सप्रू-जयकर द्वारा किये गये सन्धि के यत्नों और आपको पं० मोतीलालजी के साथ गाँधीजी के पास यरवदा-जेल लेजाने तथा वहाँ राजनैतिक मन्त्रणा होने की घटनाओं का उल्लेख पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। उस समय गाँधीजी को आपने जो पत्र लिखा था, उससे आपकी योद्धा-मनोवृत्ति का पूर्ण परिचय मिलता है।

११ अक्तूबर को आप जेल से बाहर आये, तो मोतीलालजी भीष्म-पितामह की तरह रोगशय्या पर पड़े हुए थे। उसपर भी आप कर्तव्य-विमुख नहीं हुए। आन्दोलन में जुट गये। करबन्दी का सूत्रपात करके आन्दोलन में आपने नवजीवन का संचार किया। बीमारी में भी मोतीलालजी ने ३० हज़ार का इनकम-टैक्स देने से इनकार कर दिया और 'आनन्द-भवन' बिक जाने के अवसर आजाने पर भी वह टैक्स न देने का निश्चय प्रकट किया। ऐसा करने पर आपका अधिक दिन जेल से बाहर रहना सम्भव न था। सात दिन बाद फिर गिरफ्तार कर लिये गये और तीन मास बाद मोतीलालजी की बीमारी के कारण छोड़ दिये गये। जेल से आने के कुछ ही दिन बाद आप पर कठोर वज्रपात हुआ। मोतीलालजी का ६ फरवरी के प्रातःकाल लखनऊ में देहावसान होगया। ऐसी भयानक आपत्ति से तनिक भी विचलित न हो आप राष्ट्र-कार्य

में लगे रहे। उसी समय गाँधी-अर्विन-समझौते की चर्चा हुई। उस आपत्ति को सर्वथा भुलाकर आपने उसमें जैसा मनोयोग दिया था, उसका उल्लेख करते हुए गाँधीजी ने लिखा था कि "मैं इस गुप्त रहस्य को प्रकट कर देना चाहता हूँ कि पं० जवाहरलाल नेहरू की स्पष्ट और ज़ोरदार आलोचना के विना समझौते का अन्तिम रूप इससे कहीं भिन्न होता।"

समझौते के वाद आप चुप होकर वैठ नहीं गये। सारे प्रान्त का आपने दौरा किया और समझौते का पालन कड़ाई से करने का आपने पूरा ध्यान रक्खा। अधिक मेहनत से स्वास्थ्य कुछ गिर गया, तो आप सपत्नीक मई मास में लंका गये।

सितम्वर १९३० में गाँधीजी रुकते-रुकते भी जव दूसरी गोलमेज-परिषद् के लिए विलायत को विदा होगये, तव उन्होंने लिखा था कि "मि० रेनाल्ड तथा अन्य मित्रों ने मुझसे कम-से-कम जवाहरलालजी को तो लन्दन साथ लेआने का आग्रह किया है। वह निर्भय और विनम्र हैं। कमज़ोर और कमज़ोरी करनेवाली कायरता से वह अपरिचित हैं। इसीलिए वह कमज़ोरी को एक क्षण में पकड़ लेते हैं। गोलमोल भाषा से उनको घृणा है। वह वास्तविकता तक सीधे पहुँचने पर ज़ोर देते हैं। जव मैं आदर्शवाद में उनसे आगे होने की वात कहता हूँ, तो वह मुझसे भी आगे होने का दावा करते हैं। मैं अपने मित्रों की इस सलाह को मानता हूँ कि मुझको ठीक मार्ग पर वनाये रखने और सन्देह के समय शब्दकोश का काम देने के लिए मुझे जवाहरलालजी को अपने साथ रखना चाहिए।" पर, जैसे कि उन्होंने लाहौर-काँग्रेस के अवसर पर लिखा था कि "राष्ट्र उनके हाथों में सुरक्षित है," वैसा ही इस समय भी वह अनुभव करते थे और राष्ट्र को अपने पीछे सुरक्षित हाथों में रखने के लिए ही वह आपको अपने साथ नहीं ले गये थे।

१९३१ का वर्ष अभी पूरा न हुआ था और गाँधीजी विलायत से लौटे भी न थे कि सरकार ने सीमाप्रान्त में खुदाई खिदमतगारों और संयुक्तप्रान्त में किसानों के आन्दोलन को लेकर दमन का ही नहीं, बल्कि आर्डिनेंन्स-राज का श्रीगणेश कर दिया था। गाँधीजी के बम्बई पहुँचने पर उस समय की परिस्थिति पर विचार करने के लिए कार्य-समिति की बैठक बम्बई में बुलाई गई थी। जवाहरलालजी पर इलाहाबाद की सीमा छोड़कर बाहर न जाने का नोटिस तामील किया गया था। आपने उसी समय कह दिया था कि मैं जिस संस्था का तुच्छ सिपाही हूँ, उसके सिवा किसी और का हुक्म मानने का मुझे अभ्यास नहीं है। उस नोटिस की परवा न कर आप कार्य-समिति की बैठक के लिए २३ दिसम्बर को बम्बई चल दिये। इलाहाबाद से कुछ दूर गाड़ी ठहराकर आपको गिरफ्तार कर लिया गया। ढाई वर्ष की सज़ा हुई। माता स्वरूपरानी की बीमारी की वजह से आपको सज़ा की अवधि पूरी होने से १२ दिन पहले ३० अगस्त १९३३ को रिहा कर दिया गया। माताजी का स्वास्थ्य सम्हलते ही आप महात्माजी से मुलाक़ात करने के लिए पूना गये। उस समय गाँधीजी के साथ आपका जो विचार-विनिमय हुआ था, वह पत्र-व्यवहार के रूप में देशवासियों, विशेषतः काँग्रेसवादियों के पथ-प्रदर्शन के लिए प्रकाशित कर दिया गया था।

काँग्रेस को और देश को आपने दो वस्तुयें प्रदान की हैं। पहली है काँग्रेस के ध्येय के रूप में पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा, और दूसरी है उसके कार्यक्रम तथा आन्दोलन को समाजवाद की पुट देना। उन्हीं-में आपने 'हिन्दुस्तान किस ओर ?' शीर्षक से एक लेखमाला लिखी थी और नवयुवक कार्यकर्त्ताओं को इलाहाबाद में इकट्ठा करके कुछ व्याख्यान भी दिये थे। उसीके परिणाम-स्वरूप काँग्रेस के सिद्धान्तों तथा कार्यक्रम

पर समाजवादी दृष्टिकोण से विचार करने की शैली का प्रादुर्भाव हुआ समझना चाहिए ।

१९३४ की १५ जनवरी को विहार में प्रलयकारी भूकम्प हुआ। आप उस समय कलकत्ता में थे। वहाँसे आप सीधे विहार पहुँचे। दुःखी विहार के प्रलय के प्रदेश मुजफ्फरपुर में वाहर से पहुँचनेवाले आप सवसे पहले नेता थे। वहाँसे लौटकर आपने विहार की सहायता के लिए अपील निकाली और इलाहावाद में फण्ड जमा करने का आयोजन किया। जनवरी के अंन्त में आप फिर विहार गये और सारे उत्तरी विहार का आपने दौरा किया। कहीं वालू से आच्छादित और कहीं जल में निमग्न देहातों का आपने निरीक्षण किया। अपने पुत्र की लाश खोजते-खोजते निराश होजानेवाला एक वुड्ढा वाप मुँगेर में आपके पास आया और रोते-रोते उसने आपको अपनी दुःख-गाथा सुनाई। आप फावड़ा ले स्वयं वहाँ पहुँचे। कई घण्टों की कड़ी मेहनत के वाद मलवे के नीचे दवी हुई लाश मिल गई। मुंगेर में ही नहीं, सारे विहार और सारे देश में एक विजली-सी दौड़ गई। न मालूम क्यों सरकार को तव आपका वाहर रहना सहन न हुआ ? कलकत्ता में राजनैतिक भूकम्प आदि विषयों पर हुए आपके दो व्याख्यानों पर १२४ ए दफा में फरवरी १९३४ में आप इलाहावाद में वंगाल-सरकार के वारण्ट पर गिरफ्तार किये गये। दो वर्ष की सज़ा हुई। अलीपुर-जेल में रक्खे गये।

कमलाजी का स्वास्थ्य इस वीच में वहुत विगड़ गया। उनको डाक्टरों की राय पर भुवाली सेनिटोरियम लेजाया गया। तव आपको रिहा करने को सरकार पर वहुत दवाव डाला गया। पर लार्ड विलिंगडन की सरकार पर कुछ असर न हुआ। अन्त में उसने इतना ही किया कि आपको अलमोड़ा-जेल भेज दिया और रुग्ण-शय्या पर पड़ी हुई पत्नी को

देखने के लिए पाँचवें-सातवें दिन जेल से सेनिटोरियम आने की सुविधा देदी। कैसी कठोर परीक्षा थी ! दो शब्द कहकर आप छूट सकते थे। पर, देश की आन पर सर्वस्व न्यौछावर करनेवाले आप वैसा कर ही कैसे सकते थे ? कमलाजी की बीमारी ने भयानक रूप धारण किया। उनको इलाज के लिए विलायत लेजाना पड़ा। आशा थी कि सरकार उस समय आपको रिहा कर देगी। मनुष्यता का तक़ाज़ा तब भी पूरा न किया गया। वहाँके डाक्टरों ने जब अवस्था चिन्तापूर्ण बताई और गाँधीजी आदि ने वाइसराय को तार दिये, तब ३ सितम्बर को आपको रिहा किया गया और आप हवाई जहाज से बैडनवीलर (जर्मनी) के लिए बिदा होगये। रुग्ण-पत्नी की सेवा-सुश्रूषा में लगे रहने पर भी आपको अपने देश का ध्यान बना रहता था। वहाँ रहते हुए दो बार आप इंग्लैण्ड गये और वहाँ थोड़े दिनों के निवास-काल में ही आपने भारी तहलका मचा दिया। देशवासी कमलाजी के स्वस्थ होकर लौटने की प्रतीक्षा में थे, किन्तु क्या पता था कि आपको अभी और भी अधिक कठोर परीक्षा देनी थी ? २८ फरवरी को एकाएक कमलाजी का देहावसान होगया !

आपका धैर्य और साहस एक बार फिर कसौटी पर कसा गया। आप कर्तव्य-पथ से एक इंच भी चल-विचल न हुए। वैसे तो यह कमलाजी का ही बड़प्पन था कि उन्होंने आपको कड़े-से-कड़े समय में भी कर्तव्य-पथ से विचलित न होने दिया था। कमलाजी मृत्युशय्या पर ही लेटी हुई थीं कि देश ने एकस्वर से नेहरूजी को लखनऊ-काँग्रेस के अधिवेशन के लिए सभापति चुना, तब उन्होंने आपको अपनी चिन्ता न कर देश की चिन्ता और सेवा करने की जो सलाह दी थी, वह कितनी वीरतापूर्ण थी ? कमलाजी का हृदय देशभक्ति के भावों से परिपूर्ण था।

त्याग-तपस्या तथा आत्मोत्सर्ग के मार्ग का उन्होंने स्वेच्छा से अनुसरण किया था और वह भी आज़ादी की धुन में मारी-मारी फिरती थीं। उनके देहावसान से आपकी जीवन-संगिनी का ही विछोह नहीं हुआ, वल्कि एक बहुत बड़ा राजनैतिक सहायक भी आपसे छिन गया। फिर भी आप राष्ट्रसेवा के मैदान में कभी पीठ न दिखानेवाले वीर योद्धा की तरह डटे हुए हैं। १० मार्च को कराची और ११ को इलाहाबाद पहुँच कर, उसी दिन कमलाजी के फूल गंगा में वहा दिये और लखनऊ-कांग्रेस की तैयारियों की देखभाल करने के लिए लखनऊ पहुँच गये। वहांसे १७ मार्च को गाँधीजी तथा अन्य नेताओं के साथ विचार-विनिमय करने और कार्य-समिति की वैठकों में भाग लेने के लिए दिल्ली आगये। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे आपको सिवा देश-सेवा के अपना कोई काम ही नहीं है।

सम्भवतः यही वजह है कि देशवासियों ने आपसे इस वुरी तरह काम लिया कि कोई दूसरा जनता की इस इच्छा व माँग को पूरा नहीं कर सकता था। लखनऊ (अप्रैल १९३६) के बाद फ़ैज़पुर (दिसम्बर १९३६) में भी आपको ही दोबारा राष्ट्रपति चुना गया। दो वार एक-साथ 'राष्ट्रपति' चुने जाने का सबसे पहला गौरव आपको ही मिला है। निस्सन्देह आपके प्रति राष्ट्र के प्रेम, आदर और विश्वास का यह उज्ज्वल दृष्टान्त है; लेकिन इन वर्षों में राष्ट्र को आप सरीखे ही कर्तव्य-शील, परिश्रमी और अध्यवसायी राष्ट्रपति की ज़रूरत थी। उन वर्षों के भारी वोझ को उठा सकने में समर्थ कोई और राष्ट्र-महापुरुष दीख नहीं पड़ता। प्रान्तीय-धारासभाओं के चुनाव का सारे ही सूबों में एकसाथ नियन्त्रण करना आसान काम नहीं था। राजेन्द्र बाबू द्वारा क़ायम की गई तूफ़ानी दौरों की परम्परा को आपने पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया।

अप्रैल से दिसम्बर तक चुनाव-संग्राम के सिलसिले में ऐसा तूफ़ानी दौरा किया कि चारों ही ओर विरोधियों से मोरचा लिया। सिकन्दर और नेपोलियन की ऐतिहासिक विजय-यात्राओं के समान आपका यह दौरा हुआ। अप्रैल में नागपुर, मई में वम्बई, पूना, दिल्ली तथा पंजाव, जुलाई में सिन्ध तथा पंजाव, सितम्वर में युक्तप्रान्त, अक्तूवर में मदरास, और नवम्वर में छत्तीसगढ़-मध्यप्रान्त, कलकत्ता का दौरा करते हुए देश का कोना-कोना छान डाला। १९३६ के समान १९३७ में भी तूफ़ानी दौरों का यह क्रम जारी रहा। जनवरी में विहार तथा युक्तप्रान्त, फरवरी में हवाई जहाज से पंजाव-लाहौर व अमृतसर आदि तथा युक्तप्रान्त के ४८ ज़िले, अप्रैल में महाराष्ट्र तथा कर्नाटक, मई में वर्मा तथा वंगाल-चटगाँव, कलकत्ता आदि, जुलाई में फिर युक्तप्रान्त (झांसी उपचुनाव), अगस्त में वम्वई, सितम्वर में गुजरात, वड़ौदा, अहमदावाद, जोधपुर, व्यावर तथा अजमेर आदि, अक्तूवर में दिल्ली, पंजाव तथा विजनौर (हाफिजजी का उपचुनाव) और नवम्वर तथा दिसम्वर में आसाम, वहांसे सीधे सहारनपुर, वुलन्दशहर आदि में (उपचुनाव के सिलसिले में) इतने विस्तृत और व्यापक दौरे किये कि आपके अध्यवसाय तथा कर्तृत्वशक्ति को देखकर सव दंग रह गये। उसके वाद भी आपके दौरों का यह क्रम जारी रहा। १९३८ में आपने फरवरी में सीमान्त का दौरा किया। मार्च में गढ़वाल में घूमे। २ जून को यूरोप गये और क़रीव साढ़े पांच मास वाद १७ जून को वहांसे लौटे। इन दौरों में रोज़ सैकड़ों मील का सफर आप तय करते थे, दर्जनों सभाओं में भाषण देते थे, दर्जनों मानपत्र आपको भेंट किये जाते और जगह-जगह पर सड़कों तक पर हजारों की भीड़ आपके दर्शनों के लिए इकट्ठी होजाती थी। फरवरी १९३७ में पंजाव में तीन दिन में ९०० मील का आपने सफर किया था, २०

सभाओं में भाषण दिये थे और ७-८ लाख ने आपके मुख से काँग्रेस का सन्देश सुना था। दर्शन करनेवाले उनसे भी तिगुने रहे होंगे।

१९३७ में इन तूफ़ानी दौरों के अलावा राष्ट्रीय दृष्टि से जो विशेष महत्वशाली कार्य आपने किया, वह है "नागरिक-स्वाधीनता-संघ" की स्थापना और काँग्रेस-महासमिति के दफ्तर को 'स्वराज्य-भवन' इलाहाबाद में फिर से व्यवस्थित करना। 'नागरिक-स्वाधीनता संघ' का उद्देश्य जनता में नागरिक-भावना को उद्दीप्त करते हुए उसमें आपने नागरिक अधिकारों की रक्षा की भावना को पैदा करना था। यद्यपि यह भी राजनैतिक काम था और काँग्रेस के कार्य-क्षेत्र की सीमा में ही था, लेकिन काँग्रेस के नाम से बिदकनेवालों को साथ लेने के लिए आपने इसकी स्वतन्त्र संगठन के रूप में स्थापना की। थोड़े ही समय में चारों ओर इस संगठन का जाल फैल गया और कवि-सम्राट् रवीन्द्र और आचार्य राय सरीखों ने भी इसमें शामिल होना स्वीकार कर लिया। बम्बई में इसका प्रधान कार्यालय रक्खा गया और वहाँ उसकी स्थापना आपने अपने ही हाथों से की।

महासमिति के दफ्तर में कई विभागों की स्थापना करके उनका कार्य योग्य और उत्साही कार्यकर्ताओं को सौंपा। अपने देश की राजनीति का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से सम्बन्ध जोड़कर देशवासियों के राजनैतिक दृष्टिकोण को व्यापक बनाने का अधिकांश श्रेय आपको ही है। इसी दृष्टि से महासमिति के दफ्तर में डा० राममनोहर लोहिया की अध्यक्षता में आपने विदेशी विभाग की स्थापना की। विदेशों से, विशेषकर आक्रान्त एवं पददलित राष्ट्रों से, हिन्दुस्तान का सम्बन्ध जोड़ने और उनमें तथा हिन्दुस्तान में पारस्परिक सहयोग एवं सहानुभूति पैदा करने का इस विभाग ने सराहनीय कार्य किया है। साम्प्रदायिक समस्या

को हल करने के लिए आपने मुस्लिम जन-सम्पर्क का कार्यक्रम तैयार किया। चुनाव के लिए किये गये दौरों में आपने अनुभव किया कि मुल्ला-मौलवी और साम्प्रदायिक नेता आम मुस्लिम जनता तक राष्ट्रीय विचारों की पहुँच ही नहीं होने देते। इसलिए उनमें राष्ट्रीयता का विशेष रूप में प्रचार करने के लिए आपने यह कार्यक्रम तैयार किया और मुस्लिम जन-सम्पर्क समिति क़ायम करके उसके लिए डा० अशरफ की अध्यक्षता में महासमिति के दफ्तर में एक विभाग भी खोल दिया। इसी प्रकार डा० जेनुद्दीनअहमद की अध्यक्षता में अर्थ-विभाग खोला गया। इन विभागों की ओर से महासमिति के दफ्तर से अर्थ, राजनीति, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति एवं नागरिक स्वतन्त्रता आदि से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों पर छोटी-छोटी पुस्तिकायें प्रकाशित करने का कार्य भी किया गया।

इसी वर्ष आपकी जीवन-गाथा 'मेरी कहानी' अंग्रेज़ी और हिन्दी में प्रकाशित हुई। इंग्लैण्ड में यह अंग्रेज़ी में प्रकाशित हुई और उसका अलौकिक स्वागत हुआ। एक के वाद एक उसके कई संस्करण प्रकाशित हुए। दिल्ली के 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने उसका हिन्दुस्तानी तर्जुमा प्रकाशित किया, जिसके दो संस्करणों के वाद तीसरा नया और सस्ता संस्करण भी प्रकाशित किया गया है। यह ग्रन्थ श्री कमलाजी को भेंट किया गया है।

नये शासन-विधान के आप सख्त विरोधी हैं। उसको जहन्नुम रसीद करने का आपने देशव्यापी तुमुल आन्दोलन किया। संघ-शासन को तो आप जन्म से पहले ही परलोक पठा देना चाहते हैं। राष्ट्रीय पंचायत के द्वारा अपना शासन-विधान स्वयं तैयार करने की भावना को भी आपने देशवासियों के हृदय में कूट-कूटकर भर दिया है। १५ मार्च १९३७ को दिल्ली में राष्ट्रीय सम्मेलन का ऐतिहासिक समारोह आपके ही सभापतित्व में हुआ। उस पद से दिया गया आपका भाषण नये शासन-विधान

के प्रति ऐसे ही भावों से ओत-प्रोत था। केन्द्रीय एवं प्रान्तीय धारा-सभाओं के काँग्रेसी सदस्यों से देश के प्रति वफादार रहने की शपथ लेने का दृश्य हमारी आज़ादी के इतिहास की पोथी के नये अध्याय का शीर्षक था। उसीसे पार्लमेण्टरी गति-निधि के अध्याय का श्रीगणेश हुआ समझना चाहिए। पद-ग्रहण के सख्त विरोधी होने पर भी अपने राष्ट्र के नियन्त्रण एवं अनुशासन के सामने सिर झुकाया। पद-ग्रहण करनेवाले काँग्रेसवादियों के लिए आपका व्यक्तित्व एक अंकुश सावित हुआ। उन्हें आप सदा ही सचेत, सतर्क और सावधान करते रहे। उनके विरुद्ध होने-वाली आलोचनाओं का मुँहतोड़ जवाव देने में भी आप कभी पीछे नहीं रहे। पहली अप्रैल (१९३७) को सारे देश में नया शासन-विधान लागू होने पर आपके आदेशानुसार शासन-विरोधी दिवस मनाकर यह वताया गया कि पद-ग्रहण का अर्थ नये विधान को स्वीकार करना और आज़ादी की लड़ाई को वन्द करना नहीं है। उसकी निन्दा करके आज़ादी के जंग को ज़ारी रखने के दृढ़ निश्चय की घोषणा की गई। धारासभाओं के वाहर के कार्य को जीवित रखने पर भी आपने विशेष ज़ोर दिया। धारा-संभाओं के सदस्यों को यह आप वरावर याद कराते रहे कि उनका असली कार्य-क्षेत्र धारासभायें नहीं, उनके निर्वाचन-क्षेत्र हैं।

मुस्लिम-लीग के सिर उठाने से देश में नये सिरे से पैर फैलाती हुई साम्प्रदायिक भावना का आपने डटकर मुकाविला किया। खुदा, कुरान और इस्लाम के नाम पर गंदगी फैलानेवालों का आपने परदा-फाश करने में कोई वात उठा नहीं रक्खी। मौलाना आज़ाद के आदेश पर श्री जिन्ना के साथ साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने के लिए चर्चा एवं पत्र-व्यवहार भी किया। लेकिन राष्ट्रीयता की चट्टान पर आप दृढ़ रहे। एक इंच भी इधर या उधर नहीं हुए। उरई में लीगियों द्वारा आपपर पत्थर

भी वरसाये गये । उस समय आपने वीरोचित वाणी में कहा था कि "मुझे जितनी भारी चोट लगती, उतना ही अधिक वल मिलता ।" मार्च-अप्रैल १९३८ में इलाहावाद में हुए दंगों के समय भी आपने असीम साहस से काम लिया । वहाँ भी एक सभा में आपपर हमला किया गया था । पर जान हथेली पर लिये हुए दंगों के स्थानों पर चले जाते थे ।

अण्डमान में राजवन्दियों की भूख-हड़ताल पर आप भी विह्वल हो उठे । राजवन्दियों से भूख-हड़ताल छोड़ने और वाइसराय से स्थिति को क़ावू से वाहर न जाने देने की अपील की ।

चीन-युद्ध को लेकर जापानी माल के वहिष्कार का आन्दोलन उठाया और चीन के लिए इस देश में जो सहानुभूति जागृति की, उसका आभार चीनियों ने भी माना । डा० मदनलाल अटल की अध्यक्षता में चीन भेजा गया 'कांग्रेस-सेवादल' आपके ही विचार और प्रयत्न का परिणाम है । लन्दन तक में आपने उसके लिए चंदा किया ।

भारत-यात्रा पर आये हुए लार्ड लोथियन आपसे २३ दिसम्वर को इलाहावाद में मिले । ३० दिसम्वर को युक्तप्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन के अवसर पर (हरदुआगंज़ में) राष्ट्रीय झण्डा फहराया और मन्त्रि-मण्डल में विश्वास प्रकट करने के प्रस्ताव पर ज़ोरदार भाषण दिया ।

१० जनवरी १९३८ के सवेरे ४॥। वजे माता स्वरूपरानी का देहावसान हुआ । आप दो-एक दिन पहले ही सीमान्त के दौरे पर जानेवाले थे । अकस्मात् वह कार्यक्रम वदल गया । फिर भी आप माताजी के देहान्त के पाँच-सात दिन वाद ही सीमान्त के लिए विदा होगये ।

२ जून १९३८ को आप यूरोप की यात्रा के लिए विदा हुए । अपने देश के राष्ट्रदूत के रूप में आपने यूरोप के अनेक देशों का दौरा किया । विदा होते समय देशवासियों के नाम एक सन्देश देते हुए आपने स्वयं

ही कहा था कि "काँग्रेस की ओर से काँग्रेस के आदेश पर मैं विदेश जा रहा हूँ।" जाते हुए मिस्र में वफ्द नेताओं से मिले। नहसपाशा के साथ भोजन किया। १६ जून को स्पेन पहुँचकर वार्सिलोना में प्रजातन्त्र-सरकार के अधिकारियों से भेंट की और हिन्दुस्तान की हमदर्दी का सन्देश उनको दिया। परराष्ट्र-मन्त्री सिन्योर डेलवायो और न्याय-मन्त्री श्री सेनाफ गेजैल से भी आप विशेष रूप से मिले। होटल के छज्जों पर से हवाई वमों-वर्षा के दृश्य देखे और युद्ध के मोर्चे पर भी गये। २० जून को पेरिस से एक भाषण ब्राडकास्ट किया, जिससे तहलका मच गया। २३ को लन्दन पहुँचे। जिनीवा और चेकोस्लेवाकिया आदि भी गये। जुलाई-अगस्त में फिर लन्दन पहुँचे। लन्दन में परराष्ट्र-मन्त्री, भारत-मन्त्री और वाइसराय लार्ड लिनलिथगो आदि से आपकी भेंट हुई। पर-राष्ट्र-विभाग के दफ्तर में आप वहाँके कूटनीतिज्ञों से मिले। संसार की आक्रान्ता जातियों की ओर से किंग्सले हाल में आपका शानदार अभि-नन्दन किया गया। चीनियों ने भी आपके सम्मान में एक विशेष भोज दिया। ६ जुलाई को लैफ्ट बुक क्लब की ओर से विशेष तौर पर स्वागत-समा-रोह का आयोजन किया गया। काँग्रेस के चीनी-सेवा-दल के लिए आपने तब धन-संग्रह भी किया। आपके हस्ताक्षरों से युक्त एक 'गाँधी टोपी' इस सभा में ७ पौण्ड में बिकी। छात्रों की सभा में भी आपका भाषण हुआ। 'चीन कम्पेन कमेटी' की ओर से कैक्सटन हाल में एक विशेष सभा का आयोजन किया गया था, जिसमें डा० अटल को विदाई दी गई थी और २०० पौण्ड का चन्दा जमा किया गया था। इंग्लैण्ड-स्थित सोवि-यट राजदूत ने लन्दन में और फ्रांस-स्थित सोवियट राजदूत ने पेरिस में आपसे मुलाकात की। सारांश यह है कि हिन्दुस्तान के प्रति अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना को जगाने और आक्रान्त एवं पददलित राष्ट्रों में परस्पर सद्-

भावना को पैदा करने का आपने सराहनीय और यशस्वी प्रयत्न किया। संघ-शासन-योजना के विरोध में तीव्र आन्दोलन करने के साथ-साथ भारतीयों की नये शासन के प्रति भावना और राष्ट्रीय पंचायत द्वारा स्वयं अपना शासन-विधान तैयार करने की उनकी आकांक्षा का भी आपने खूब जोरों के साथ प्रतिपादन किया। जब लार्ड लिनलिथगो संघ-शासन-योजना के बारे में विचार करने के लिए इंग्लैण्ड गये हुए थे, तब आपका वहाँ जाना और वहाँ संघ-शासन के बारे में आन्दोलन करना विशेष लाभकारी हुआ। स्वदेश लौटते हुए भी आप कैरो में तीन दिन ठहरे। वहाँ स्वर्गीय ज़गलुलपाशा के प्रति श्रद्धाञ्जलि प्रकट करने के लिए उनकी समाधि पर भी आप गये।

आपके लिए व्यक्तिगत दृष्टि से और काँग्रेस के मिशन की दृष्टि से आपकी यह यूरोप-यात्रा बहुत ही सफल रही। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से आपके व्यक्तित्व का मान और स्वदेश का मान भी आपके प्रयत्नों के फलस्वरूप बहुत बढ़ गया। जिनीवा के अन्तर्राष्ट्रीय विश्व-सम्मेलन में आप भारतीय राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए और अपने राष्ट्र की आज़ादी की जद्दोजहद को विश्वशक्ति की शृंखला की एक कड़ी बताकर यह समझाया कि जबतक हिन्दुस्तान ग़ुलाम है, संसार में शान्ति क़ायम नहीं होसकती। फासिस्ट, नाज़ी और साम्राज्यवादी आदि सभी राष्ट्रों की नीति को ग़रीब, साधनहीन और पददलित देशों के लिए एक-सा भयानक बताया। महात्मा गाँधी के 'सत्य एवं अहिंसा' की ओर विश्व का ध्यान आकर्षित करते हुए अपने देश की अहिंसात्मक लड़ाई के महत्व का प्रतिपादन किया। इस युरोप-यात्रा में राष्ट्रदूत के कर्तव्य का तत्परता के साथ इस प्रकार पालन कर लेने का ही यह परिणाम है कि १७ नवम्बर को स्वदेश लौटने पर देशवासियों ने आपका ऐसा

हार्दिक स्वागत किया, जो राजाओं और सम्राटों को भी नसीब नहीं है।

गाँधीजी के बाद समस्त देश की आँखें आपपर लगी हुई हैं। आप विशुद्ध राष्ट्रीयता के उपासक हैं। धर्म आपकी दृष्टि में जनता के लिए अफीम और साम्प्रदायिकता भयानक विष है। सामाजिक ऊँच-नीच के भेदभाव और धन-सम्पत्ति के अस्वाभाविक बटवारे के भी आप पूर्ण विरोधी हैं। समाजवादी होते हुए भी नियन्त्रण के आप परमभक्त हैं और साथियों के निर्णय से सहमत न होकर भी उसको निभाना खूब जानते हैं। समाजवादी विचारों के होकर भी आपने दो वर्षों तक राष्ट्रपति की जिम्मेदारी को निभाकर समाजवादियों और राष्ट्रीय दृष्टि से अन्य प्रकार का मतभेद रखनेवालों के सामने भी अनुशासन एवं नियन्त्रण का पालन करने का आदर्श उपस्थित करके दिखा दिया है। चुनाव-सम्बन्धी और पद-ग्रहण-सम्बन्धी मतभेद भी आपके मार्ग में बाधक नहीं हुआ। पद-ग्रहण के आप कट्टर विरोधी थे, लेकिन जब उसके पक्ष में फैसला हो-गया तब आपने काँग्रेसी मन्त्रियों का सचाई और ईमानदारी के साथ पूरी तरह समर्थन किया। आप अच्छे वक्ता व लेखक भी हैं और जनता के हृदय के ईंधन में आग लगा देने की आपमें अजीब शक्ति है। आपके शब्दों में सीधी हृदय पर चोट करनेवाली सचाई, दृढ़ता और खरी बात रहती है। आपका व्यक्तित्व आकर्षक और स्वभाव मिलनसार है। आपकी देशभक्ति निष्कलंक, चरित्र उत्कृष्ट और रहन-सहन बिलकुल सीधा-सादा है।

१९२९ में प्रो० सुधीन्द्र बोस ने आपकी तुलना लेनिन से की थी और १९३६ के जनवरी मास में जब आप इंग्लैण्ड गये थे, तब वहाँके 'न्यूज़ क्रानिकल' ने आपकी पुस्तकों की तुलना मुसोलिनी की पुस्तकों से करते हुए लिखा था कि आप पहले आदमी और बाद में राजनीतिज्ञ हैं।

प्रो० हैराल्ड लास्की ने लिखा है कि "आपके खून के क़तरे-क़तरे में स्वराज्य रमा हुआ है। आप अपने पिता से भी अधिक उग्र हैं और देश की आज़ादी के लिए छाती खोलकर लड़ने को सदा तैयार रहते हैं। ब्रिटिश सरकार की नेकनीयती में आपको तनिक भी विश्वास नहीं है।" पार्लमेण्ट की इण्डिपेण्डेण्ट लेबर पार्टी के भारत-हितैषी सदस्य श्री एच० एम० ब्रेल्सफोर्ड ने तो आपके बारे में यहाँतक लिखा है कि "गाँधीजी प्रभावहीन होरहे हैं। सम्भव है कि उनकी पार्टी अपना काम कर चुकी हो। उसकी बगल में एक नौजवान सोशलिस्ट पार्टी बन रही है। जो व्यक्ति उसका ठीक-ठीक नेतृत्व कर सकता है, वह जेल में है और वह हैं पंडित जवाहरलाल नेहरू।" फैनर ब्राकवे ने आपकी गणना आधुनिक समय के संसार के महान् शक्तिशाली और प्रभावशाली व्यक्तियों में की है। इसी प्रकार १९३८ की यूरोप-यात्रा में भी आपकी तुलना बुद्ध आदि के साथ की गई थी। ट्रेफालगर स्क्वेयर में आपके अभिनन्दन के लिए जो समारोह हुआ था, कहते हैं कि, वैसे जलूस का निकालना और सभा का होना इंग्लैण्ड के लिए असाधारण घटना है।

भारत की नई सन्तति के आप निर्विवाद सर्वसम्मत नेता हैं। राजनैतिक नेता के रूप में आप एक शक्ति, ताक़त और स्फूर्ति के पुञ्ज हैं। कभी न झुकनेवाले, अपने विचारों पर सदा दृढ़ रहनेवाले, अपने विश्वास के आप महाधनी हैं। आपकी संगति में रहनेवालों पर केवल आपके असीम स्वार्थ-त्याग और महान् आत्मोत्सर्ग का ही असर नहीं पड़ता, बल्कि सज्जनतापूर्ण व्यवहार और प्रेमपूर्ण व्यक्तिगत सम्बन्ध का भी बहुत गहरा असर पड़ता है। सज्जनता की आप साक्षात् मूर्ति हैं।

भारत को अभी आपसे बहुत-सी आशायें हैं। आपको नीरोग दीर्घजीवन प्राप्त हो, जिससे आप उन सारी आशाओं को पूरा करने में समर्थ होसकें!

: ४४ :

सुभाषचन्द्र बोस

जन्म १८९७

इक्यावनवाँ अधिवेशन—हरिपुरा १९३७

"मैं प्रसन्नतापूर्वक किसी भी अग्नि-परीक्षा का, जिससे ईश्वर मुझे जाँचना चाहे, सामना करने के लिए तैयार हूँ। मैं तो यह सोचता हूँ कि भारत के पिछले पापों का एक छोटे-से रूप में मैं प्रायश्चित्त कर रहा हूँ।"—इन शब्दों में सुभाष बाबू ने आत्मोत्सर्ग की अपनी जीवन-कहानी का रहस्य प्रकट कर दिया है। १ अप्रैल १९२७ को सुभाष बाबू ने अपने बड़े भाई श्री शरत बोस को इनसीन-जेल (बर्मा) से लिखे गये एक लम्बे पत्र में ऊपर के शब्द लिखे थे। सुभाष बाबू के जीवन का सार एक शब्द में "आत्मोत्सर्ग" कहा जासकता है। आत्मोत्सर्ग की भावना से ओतप्रोत उन युवकों ने ही सैनिक से सेनापति और सेनापति से राष्ट्रपति का पद प्राप्त किया है, जो सिर हथेली पर रख राष्ट्र-सेवा के मैदान में उतर पड़े हैं और बड़े-से-बड़े खतरों का सामना करके भी उनमें डटे रहे हैं। इस समय के प्रायः सभी राष्ट्रपतियों एवं डिक्टेटरों के उत्कर्ष का यही रहस्य है और सुभाष बाबू के जीवन का भी यही सार है। १९२० में देशबन्धु दास की सेना के सिपाही के रूप में सुभाष बाबू ने कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया, १९२८ में कलकत्ता में हुई काँग्रेस के लिए तैयार की गई

स्वयं-सेना के आप 'सेनापति' थे और १९३८ में हरिपुरा में देशवासियों ने आपको 'राष्ट्रपति' के सम्मानास्पद पद पर आसीन कर सम्मानित किया।

नेहरूजी और सुभाष बाबू में कई समानतायें हैं। सबसे कुतूहलपूर्ण समानता यह है कि करीब-करीब ४१ वर्ष की ही आयु में दोनों ने राष्ट्रपति-पद को गौरवान्वित किया। इन दोनों ने ही क्यों, संसार के प्रायः सभी राष्ट्रपतियों या डिक्टेटरों ने करीब-करीब इसी आयु में इस पद को प्राप्त किया है। नेहरूजी के दो वर्ष के लम्बे कार्य-काल के बाद से उनकी विशेषताओं को देखते हुए सुभाष बाबू का ही इस पद पर आसीन होना सर्वथा उपयुक्त हुआ। युवकों, समाजवादियों तथा वामपक्षियों को आपके चुनाव पर कोई आपत्ति नहीं होसकती थी और कांग्रेस की एकता व संगठन को कुछ भी ठेस नहीं लग सकती थी।

आपका जन्म १८९७ में हुआ था। आपके पिता श्री राय जानकीनाथ बोस बहादुर बंगाल के चौबीस परगना ज़िले के कोंडालिया गाँव के रहनेवाले थे। सरकारी वकील होने से पिता कटक में रहने लग गये थे। रायबहादुर के आठ लड़के थे। आठों को शिक्षा के लिए विदेश भेजा गया था। बैरिस्टरी, डाक्टरी और इंजिनियरी आदि में सभीने योग्यता पैदा करने के बाद नाम और धन भी पैदा किया। सुभाष बाबू की प्रारम्भिक शिक्षा कटक में हुई। १९१३ में मिशनरी स्कूल से आपने मैट्रिक पास किया और कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कालेज में आप भरती हुए। १९१५ में एफ० ए० पहले डिवीजन में और १९१९ में बी० ए०, फिलोसफी में सारे विश्वविद्यालय में पहले रहकर, पास किया। १९१९ में इंग्लैण्ड गये। केम्ब्रिज से बी० ए० किया और आई० सी० एस० की परीक्षा में आप चौथे आये।

आपकी माता धर्मपरायण महिला थीं। दानशील और सात्विक-

वृत्ति की थीं। बालक सुभाष के कोमल हृदय पर उनका खूब गहरा असर पड़ा। रामकृष्ण परमहंस की जीवनी आपकी प्रिय पुस्तक थी। 'रामकृष्ण कथामृत' के स्वाध्याय और माता के साथ धर्मालाप करने का युवक पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि शंकराचार्य की तरह वह घर से भाग निकला। बनारस, हरिद्वार, वृन्दावन आदि में साधु बन जाने की चिन्ता में वह गुरु की खोज करता फिरा। लेकिन साधुओं के अनाचारपूर्ण जीवन को देखकर उधर से भी युवक का दिल फिर गया और वह घर लौट आया। जो युवक उस समय विद्यार्थी-अवस्था में गेरुआ पहनकर साधु या संन्यासी नहीं बन सका, उसने बाद में देश के लिए भभूत रमा-कर अपनेको भारतमाता के चरणों में न्यौछावर कर दिया। क्या यह उत्कर्ष युवावस्था के ही संस्कारों का परिणाम नहीं है ?

इसी प्रकार युवावस्था में उस विद्रोही वृत्ति की एक झाँकी भी देखने में आगई थी, जिसने जल्दी ही सुभाष बाबू को 'विप्लवी' और 'क्रान्तिकारी' बना दिया। प्रेसिडेंसी कालेज के प्रो० सी० एफ० ओटन भारतीय विद्यार्थियों को प्रायः घृणा की दृष्टि से देखा करते थे और उनका व्यवहार भी बहुत असन्तोषजनक था। युवक सुभाष ने विद्रोह कर दिया, छात्रों को संगठित किया और कालेज में हड़ताल कर दी गई। कहते हैं कि प्रोफेसर को पीटा भी गया। विद्रोही को कालेज से निकाल दिया गया। दो वर्ष बाद सर आशुतोष मुकर्जी की कोशिश से आपको कालेज में भरती होने की आज्ञा मिली। स्काटिश चर्च कालेज से आपने बी० ए० पास किया।

सबसे छोटे होने से आप लाड़ले बेटे थे। सुखी और सम्पन्न परिवार के लाड़ले बेटे को आई० सी० एस० के लिए उसके रायबहादुर और सरकारी वकील पिता ने जिन उम्मीदों से भेजा होगा, उनकी कल्पना

करना कठिन नहीं है। लेकिन, पिता को क्या पता था कि उनका पुत्र अपने जीवन को दूसरे ही साँचे में ढाल लेगा और राजभक्त पिता का बेटा अपना नाम जल्दी ही राजद्रोहियों की पहली श्रेणी में लिखवा लेगा? 'आई० सी० एस०' की जगह सुभाष बाबू काँग्रेस के सैनिकों में आ खड़े हुए। जलियांवाला बाग के हत्याकाण्ड और पंजाब के खूनी शासन की सारे देश में जो प्रतिक्रिया हुई, जिसने गाँधीजी सरीखों को दृढ़ सहयोगी से पक्का असहयोगी बना दिया और जिसके फल-स्वरूप काँग्रेस का एका-एक कायाकल्प होगया, उसके प्रभाव से होनहार सुभाष बाबू कैसे बचे रह सकते थे? देशबन्धु दास की दृष्टि सहसा आपपर पड़ी। स्कूलों और कालेजों का बहिष्कार होकर सारे देश में राष्ट्रीय स्कूलों और कालेजों की स्थापना की जा रही थी। कलकत्ता में १९२१ में स्थापित 'राष्ट्रीय विद्यापीठ' का देशबन्धु ने आपको आचार्य बनाया। युवराज के बहिष्कार के अन्दोलन के सिलसिले में संगठित काँग्रेस-स्वयं-सेना के आप कप्तान चुने गये। दिसम्बर १९२१ में इसी आन्दोलन को लेकर सारे देश में और बंगाल में भी गिरफ्तारियाँ होनी शुरू हुईं। आप भी गिरफ्तार किये गये। छः मास की आपको सज़ा होगई। १९२२ में उत्तर बंगाल में बाढ़ आने पर आपने संगठन-शक्ति और जन-सेवा का लोकोत्तर परिचय दिया। १९२३ में गया-काँग्रेस के बाद देशबन्धु दास द्वारा बनाई गई "काँग्रेस-स्वराज्य-पार्टी" के आप अन्यतम समर्थक थे। उसी पार्टी के प्रचार तथा आन्दोलन के लिए देशबन्धु द्वारा कलकत्ता से निकाले गये अंग्रेज़ी दैनिक "फारवर्ड" के आप ही प्रधान-सम्पादक बनाये गये। १९२४ में कलकत्ता-कारपोरेशन पर जब स्वराज्य-पार्टी ने क़ब्ज़ा कर लिया, तब देशबन्धु दास उसमें सर्वप्रथम राष्ट्रीय 'मेयर' चुने गये और आप उसके चीफ एक्जीक्यूटिव अफसर नियुक्त किये गये। दरिद्रनारायण की सेवा

का कार्यक्रम सम्मुख रखकर कारपोरेशन की रीति-नीति एवं कार्य-शैली का सारा ही ढाँचा बदल दिया गया। प्रारम्भिक शिक्षा को निःशुल्क बनाने की भरसक कोशिश की गई। विद्यार्थियों की संख्या जहाँ पहले कुल २५,००० थी, वहाँ वह सालभर में ही १,१६,००० पर पहुँच गई। कलकत्ता महानगरी को उन्नत बनाने का भी लगकर यत्न किया गया। दरिद्र-नारायण की सेवा के कार्यक्रम की मुख्य बातें ये थीं—१. निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा, २. ग़रीबों के लिए मुफ्त दवा-दारू का प्रबन्ध, ३. शुद्ध व सस्ते दूध एवं भोजन-सामग्री का इन्तज़ाम, ४. पानी की संतोषपूर्ण व्यवस्था, ५. घनी बस्तियों की सफ़ाई, ६. ग़रीबों के लिए घर, ७. मुफस्सिल-क्षेत्रों की उन्नति, ८. आवागमन के साधनों की सहूलियत और ९. कारपोरेशन की शासन-व्यवस्था में काट-कसर।

कारपोरेशन की शासन-व्यवस्था में साम्प्रदायिक सवाल भी कुछ कम टेढ़ा नहीं था। मुसलमानों को नौकरियों के बारे में सदा ही असन्तोष बना रहता था। लेकिन देशबन्धु दास और सुभाष बाबू की नीति से वे भी सन्तुष्ट होगये थे। सारे देश में साम्प्रदायिकता का नंगा नाच होने और चारों ओर साम्प्रदायिक दंगे-फिसाद का शोर होने पर भी आप अपनी नीति पर दृढ़ रहे। कारपोरेशन में हिन्दू हितों की दुहाई देनेवालों की आपने तनिक भी परवा नहीं की। कार्य-भार हाथ में लेते ही भंगियों की हड़ताल की संभावना प्रबल हो उठी। उसको सुलझाने से सुभाष बाबू की योग्यता और कार्यक्षमता चमक उठी।

लेकिन, सरकार को यह सब सहन नहीं हुआ। कारपोरेशन का राष्ट्रीय-करण सरकार को खलने लगा। लार्ड लिटन की सरकार दमन पर उतर आई। बंगाल-आर्डिनेंस जारी किया गया। गोपीनाथ साह द्वारा मि० डे की हत्या होने पर सरकार आगबबूला होगई। ८० नवयुवक आर्डिनेंस के

अनुसार एक ही साथ २५ अक्तूबर १९२४ को गिरफ्तार किये गये। इनमें अधिकांश स्वराज्य-पार्टी के स्तम्भ थे, जिनमें देशबन्धु के दाहिने हाथ सुभाष बाबू भी थे। कारपोरेशन तक में इन गिरफ्तारियों का विरोध किया गया। देशबन्धु दास ने आवेशपूर्ण ओजस्वी भाषण में तब कहा था कि "यदि देशप्रेम अपराध है, तो मैं भी अपराधी हूँ। कलकत्ता-कारपोरेशन का एक्ज़ीक्यूटिव अफसर जितना दोषी है, उसका मेयर भी उतना ही दोषी है।"

पहले आपको अलीपुर सेण्ट्रल जेल में रक्खा गया। वहांसे वहराम-पुर भेज दिया गया और कुछ समय बाद माण्डले। वहाँ आपका स्वास्थ्य इतना गिर गया कि ४० पौण्ड भार सहसा कम होगया। १९२६ में दुर्गा-पूजा का उत्सव मनाने की आज्ञा न मिलने के विरोध में आपको अपने साथियों सहित २० फरवरी से जेल में अनशन करना पड़ा। अनशन पर देश में चारों ओर विक्षोभ छा गया। कलकत्ता में हड़ताल हुई। केन्द्रीय असेम्बली, बंगाल-कौंसिल और बर्मा-कौंसिल में 'काम रोको' प्रस्ताव पेश किये गये। बंगाल और बर्मा में तो प्रस्ताव पेश नहीं होने दिये गये। केन्द्रीय असेम्बली में ४० के विरुद्ध ५७ मतों से प्रस्ताव पास होगया। प्रस्ताव पर श्री तुलसीचरण गोस्वामी और लाला लाजपतराय के जोरदार भाषण हुए। ३ मार्च को कलकत्ता में आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय की अध्यक्षता में विराट् सार्वजनिक सभा हुई। श्री श्रीनिवास शास्त्री सरीखे नरम प्रकृति के लोग भी इसपर उत्तेजित होगये। उन्होंने उन्हीं दिनों में कलकत्ता-कारपोरेशन की ओर से दिये गये मान-पत्र के जवाब में कहा था कि "सुभाष बाबू के त्याग की तारीफ़ करना सूरज को दीपक दिखाना है। मुझे उनके त्याग की कहानी एक महत्वपूर्ण तथा करुणाजनक काव्य की-सी जान पड़ती है। चाहे हम कैसे भी राजनैतिक

मतभेद रखते हों, लेकिन जहाँ नागरिक स्वत्वों की रक्षा का सवाल उठता है, वहाँ हम सबकी एक ही आवाज़ है।" नेताओं के आग्रह पर १२ दिन बाद ४ मार्च को आपने अनशन छोड़ दिया।

लेकिन, अदालत में मुकदमा चलाये बिना और सुभाष बाबू को उनका अपराध बताये बिना ही नज़रबन्द रखने के विरोध में सारा देश विक्षुब्ध हो उठा। विरोध में तीव्र आन्दोलन शुरू हुआ। २६ नवम्बर को सारे बंगाल में राजबन्दी-दिवस मनाया गया। पार्लमेण्ट तक में सवाल पूछे गये। श्री जान्सटन और श्री अरनस्ट थर्टल ने सरकार को आड़े हाथों लिया। बंगाल-आर्डिनेंस को बाबा आदम के समय का क़ानून बताकर उसके अनुसार की गई नजरबन्दी को गैर-अंग्रेज़ियत नीति एवं अमानुषिक कार्य बताया गया। १९२६ की कांग्रेस में भी इसका तीव्र विरोध किया गया था। इसके विरोध में पेश किये गये प्रस्ताव पर श्री बी० जी० हार्निमैन ने अत्यन्त ओजस्वी, मार्मिक और ज़ोरदार भाषण दिया था। बंगाल के जोश और असन्तोष में तूफान आगया। अधगोरे पत्र जामे से बाहर होगये। 'स्टेट्समैन' और 'कैथलिक हैरल्ड आफ इण्डिया' आदि पत्रों ने ऐसा अनर्गल प्रलाप शुरू किया कि उनको सीधे रास्ते पर लाने के लिए सुभाष बाबू को उनपर ५०–५० हज़ार की मानहानि का दावा करना पड़ा।

उधर जेल में आपका स्वास्थ्य गिरता चला गया। बीमारी ने राज-यक्ष्मा का रूप धारण कर लिया। अप्रैल १९२७ में आपकी अवस्था अत्यन्त निराशापूर्ण होगई। आपके भाई डा० सुनीलचन्द्र बोस और सरकारी डाक्टरों ने भय प्रकट किया। बंगाल-सरकार के सेक्रेटरी मि० मोबर्ली ने यह तजवीज पेश की कि सुभाष बाबू इलाज के लिए स्विट्ज़रलैण्ड तो जा सकते हैं, लेकिन उनको सीधा जहाज में बैठकर यूरोप चले जाना

होगा। कलकत्ता या हिन्दुस्तान के किसी भी बंदरगाह में ठहरनेवाले जहाज में वह सवार नहीं हो सकेंगे। ऐसे अपमान से आपने जेल में ही मर जाना भला समझा। नरमदल वालों तक ने इस निर्दयता का विरोध किया। अपने बड़े भाई शरतचन्द्र बोस को आपने इसी समय जेल से वह लम्बा पत्र लिखा था, जिसकी कुछ पंक्तियाँ ऊपर दी गई हैं। वह पत्र सुभाष बाबू की राजनैतिक भावनाओं और आकांक्षाओं का जीता-जागता चित्र है। मृतप्राय देह में वह नवजीवन का संचार करनेवाला है। उसका एक-एक शब्द तेजस्विता और ओजस्विता में भरा हुआ है। इस पुस्तक के कोई ९-१० पन्नों के बराबर का वह पत्र है। उसके अन्तिम हिस्से में आपने लिखा था कि "मुझे श्री देशबन्धु की याद आ रही है। वह मुझे 'नौजवान बूढ़ा' कहा करते थे, क्योंकि मुझमें उन्हें एक निराशा-सी दीख पड़ती थी। एक दृष्टि से मैं निराशावादी हूँ, क्योंकि मैं बुरे-से-बुरे परिणाम की कल्पना करता हूँ। सरकार की इस उदारता को अस्वीकार करने का भीषण-से-भीषण परिणाम सोचने का मैंने यत्न किया है। लेकिन, मैं यह विश्वास नहीं कर सकता कि स्वदेश से आजन्म निर्वासन मृत्युपर्यन्त जेल-जीवन से श्रेयस्कर होगा। मैंने सरकार के इस प्रस्ताव के पक्ष और विपक्ष में खूब सोच लिया है। किसीको भी इस बात से दुःखी नहीं होना चाहिए कि मेरी मुक्ति की अधिक आशा नहीं है। कृपया माता-पिता तथा अन्य प्रेमीजनों को धैर्य दीजिए। स्वतन्त्रता का अमूल्य खजाना प्राप्त करने से पहले हमें व्यक्तिगत रूप से अथवा सामूहिक रूप से कितनी ही कुर्बानियाँ करनी हैं। ईश्वर को मैं धन्यवाद देता हूँ कि मुझे बड़ी शान्ति है और मैं प्रसन्नता-पूर्वक किसी भी अग्नि-परीक्षा का, जिससे वह मुझे जाँचना चाहे, सामना करने को तैयार हूँ। मैं तो यह सोचता हूँ कि मैं भारत के पिछले पापों का एक छोटे-से रूप

में प्रायश्चित कर रहा हूँ और इसीमें मुझे आनन्द मिल रहा है। यह सच है कि हमारे विचार मर नहीं सकते, हमारे आदर्श राष्ट्र के स्मृति-पटल से मिट नहीं सकते और भावी सन्तान उन चिरईप्सित स्वप्नों की अधिकारी होगी। बस, यही विश्वास मुझे अग्नि-परीक्षा में सदा विजयी बनायगा।" अपने देश व राष्ट्र के लिए आत्मोत्सर्ग करने की कैसी उत्कृष्ट भावना से सारा पत्र ओतप्रोत है!

इस दृढ़ता के सम्मुख आखिर १५ मई १९२७ को सरकार को झुकना पड़ा। उसने आपको अलमोड़ा भेजने का निश्चय किया, लेकिन बंगाल-गवर्नर के सर्जन मेजर हिंगस्टन और लैफ्टिनेण्ट कर्नल सैण्डीस से फिर परीक्षा कराने पर स्वास्थ्य की अवस्था और भी अधिक चिन्ताजनक पाई गई। तब, बिना किसी शर्त के आपको रिहा किया गया और सरकारी वक्तव्य में लिखा गया कि आप बिना किसी प्रतिबन्ध के जहाँ चाहें वहाँ अपना इलाज करा सकेंगे। रिहा होने पर आप कलकत्ता पहुँचे, तब देह दुर्बल होकर केवल हड्डियों का अवशेष रह गया था। कलकत्ता में आपकी रिहाई पर आनन्दोत्सव मनाया गया। कलकत्ता व हावड़ा में कारपोरेशन एवं म्यूनिसिपैलिटी की ओर से आम छुट्टी मनाई गई। आपके स्वास्थ्य-लाभ के लिए प्रार्थनायें की गईं। बम्बई में महासमिति की बैठक हो रही थी। वहाँसे आपको बधाई का तार दिया गया। मोतीलालजी गदगद होगये। 'फारवर्ड' का विशेषांक निकाला गया। "इंग्लिशमैन" ने भी विशेषांक निकाला।

देशवासियों की प्रार्थना भगवान ने सुन ली। आपने शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ कर लिया। स्वास्थ्य सम्हलते ही आप कार्य-क्षेत्र में उतर पड़े और प्राणों से भी अधिक प्रिय कार्य करने में लग गये। पटना में इन्हीं दिनों में आपने बिलकुल ठीक ही कहा था कि "अपने देश की वर्तमान

अवस्था में हमारे लिए बीमार रहना सम्भव नहीं है।" बंगाल प्रान्तिक काँग्रेस कमेटी का कार्य आपने विशेषरूप से सम्हाला। जल्दी ही उसके प्रधान चुन लिये गये। दुर्भिक्ष-पीड़ित एवं बाढ़-पीड़ित प्रदेश में आपने दरिद्रनारायण की सेवा का कार्य संगठित किया।

१९२७ के चुनाव में स्वराज्य-पार्टी को बंगाल में यशस्वी बनाने का सराहनीय कार्य किया। बंगाल-कौंसिल के आप भी सभासद चुने गये। वहाँ पराधीन देश की वकालत करने में आपने अप्रतिम बहादुरी, स्पष्ट-वादिता और निर्भीकता का पूरा परिचय दिया। मद्रास-काँग्रेस के वक्त आप महासमिति के मन्त्री चुने गये। पण्डित जवाहरलाल नेहरू द्वारा 'इण्डिपेण्डेंस' आफ इण्डिया लीग' की स्थापना होने पर आपने बंगाल में उसका झण्डा फहराया। अपने देश का शासन-विधान बनाने के लिए काँग्रेस की ओर से नियुक्त नेहरू-कमेटी के आप भी सदस्य थे, लेकिन आप सदा ही 'पूर्ण स्वाधीनता' के हामी रहे हैं। कलकत्ता में १९२८ में हुई काँग्रेस के देशप्रिय सेनगुप्त स्वागताध्यक्ष चुने गये और आपने अपने जिम्मे युवकों को शोभा देनेवाला सेवा का कार्य लिया और स्वयं-सेना के 'सेना-पति' चुने गये। इसी अवसर पर गाँधीजी की अध्यक्षता में राष्ट्रभाषा-सम्मेलन का आयोजन किया गया था। आप उस सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष हुए थे। भारत की स्वाधीनता में अपनी अटूट श्रद्धा प्रकट करते हुए हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने में भी आपने अपना विश्वास प्रकट किया था और उसके सीखने पर विशेष जोर दिया था। पीछे जेल-जीवन में हिन्दी का आपने विशेष अभ्यास किया। और अब हिन्दी या हिन्दुस्तानी में आपको धारावाही भाषण करते हुए देखकर लोग चकित रह जाते हैं।

३ मई १९२८ को पूना में हुई छठी महाराष्ट्रीय प्रान्तीय राजनैतिक परिषद् के आप सभापति हुए। उस पद से ओजस्वी भाषण देते हुए आपने

कहा कि "स्वतन्त्रता ही मेरे जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। आज़ादी अनमोल चीज़ है। जैसे ओषजन फेफड़ों के लिए ज़रूरी है, वैसे ही स्वतंत्रता मनुष्य-जीवन के लिए आवश्यक है। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि 'स्वतन्त्रता आत्मा का संगीत है।' आज़ादी ही सच्चा अमृत है।.........हमारी सब दुर्बलताओं की अटूट औषध स्वराज्य है और स्वराज्य के लिए हमारी योग्यता की कसौटी हमारी आज़ादी की प्रबल आकांक्षा है।" इसी वर्ष कलकत्ता एवं बंगाल में आपने विदेशी वस्त्र और अंग्रेज़ी माल के बहिष्कार का आन्दोलन संगठित किया। इस बीच आपने युवक-आन्दोलन, महिला-आन्दोलन और समाज-सुधार-आन्दोलन में विशेष भाग लिया। राजनैतिक मुक्ति के लिए समाज़-सुधार के कार्य को आप नितान्त आवश्यक मानते हैं। १९२९ में आपने नागपुर का दौरा किया और वहाँ शस्त्र-सत्याग्रह के प्रवर्तक जनरल आवारी के फोटो का अनावरण किया।

कलकत्ता-कांग्रेस के बाद सुभाष बाबू विशेषरूप से राष्ट्रीय आन्दोलन में लग गये। ४ मार्च १९२९ को श्रद्धानन्द पार्क में विदेशी कपड़ों की होली महात्मा गान्धी ने जलाई। उसपर पुलिस ने हमला किया और गाँधीजी पर जुर्माना किया गया। बंगाल इस अपमान को सहन नहीं कर सका। विदेशी वस्त्र के बहिष्कार के आन्दोलन ने खूब ज़ोर पकड़ा।

दिसम्बर १९२९ में लाहौर-कांग्रेस में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव तो पास होगया और धारासभाओं के बहिष्कार का भी फैसला होगया, लेकिन वामपक्षी दल सन्तुष्ट नहीं हुआ। कांग्रेस के बाद हुई महासमिति की बैठक से आपके नेतृत्व में वह दल उठ आया और उसने 'कांग्रेस डेमोक्रेटिक पार्टी' का संगठन किया। इसपर भी अनुशासन को आपने इतना माना कि १७ जनवरी १९२९ को कौंसिल और कारपोरेशन दोनों से इस्तीफ़ा दे दिया।

उससे पहले ११ अगस्त १९२८ को मनाये गये राजवन्दी-दिवस को लेकर आपको कलकत्ता की समस्त जिला कांग्रेस कमेटियों के मन्त्रियों और सभापतियों के साथ गिरफ्तार किया जा चुका था। आप जमानत पर छुटे हुए थे और राजद्रोह का मुकदमा चल रहा था। २३ जनवरी १९२९ को आपको सब साथियों के साथ एक साल क़ैद की सज़ा देदी गई। आप जेल में ही थे कि कारपोरेशन के एल्डरमैन चुने जाकर १८ अगस्त १९३० को मेयर भी चुने जा चुके थे। २३ सितम्बर को जेल से छूटकर आये तो सत्याग्रह-आन्दोलन छिड़ चुका था। १८ जनवरी १९३१ को मालदा से बहरामपुर आते हुए वहाँ न आने का आपपर दफ़ा १४४ का नोटिस तामील किया गया। उसकी अवज्ञा करने पर सात दिन क़ैद की सज़ा हुई।

१९३१ की २६ जनवरी का स्वतन्त्रता-दिवस बाहर रहते हुए भला आप कैसे न मनाते, जबकि १९३० में उस दिन आपने जेल तक में झण्डा फहरा दिया था? स्वतन्त्रता-दिवस के उपलक्ष्य में शहर में कई ग़ैरक़ानूनी जलूस निकले। कारपोरेशन से मेयर सुभाप बाबू के नेतृत्व में एक जलूस निकला। पुलिस के घुड़सवारों और सार्जेण्टों ने उसपर आक्रमण किया। मेयर भी उस मार से घायल हुए। बंगाल-कौंसिल में इसपर 'काम रोको' प्रस्ताव पेश किया गया। २७ जनवरी को आपको छः मास की सज़ा हुई। गांधी-अर्विन समझौता होने पर आप भी छोड़ दिये गये।

कराची में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। आपकी अध्यक्षता में वहां राजवन्दी-सम्मेलन हुआ। हिजली में नज़रबन्दों पर और चटगांव में नागरिकों पर ज़ुल्म हुआ। हिजली में दो नज़रबन्द पुलिस की गोली के निशान हुए और २० घायल हुए। चटगांव में रात को नागरिकों को

लूटा गया। आप दोनों जगह घटना-स्थल की जाँच करने गये। ढाका से भी पुलिस की ज्यादतियों की खबर आने पर आप ११ नवम्बर १९३१ को वहाँ गये और तेजगाँव में गिरफ्तार करके १४ ता० को आपको जमानत पर छोड़ा गया और बाद में वह मुकदमा उठा लिया गया। इन अत्याचारों और ज्यादतियों के विरोध में आपने बंगाल में विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का आन्दोलन ज़ोरों के साथ उठाया। नेहरूजी द्वारा नागरिक-स्वाधीनता-संघ की स्थापना होने पर आपने बंगाल में उस आन्दोलन का नेतृत्व किया। युवक-आन्दोलन में भी आपने विशेष भाग लिया। कई युवक-सम्मेलनों के आप सभापति हुए। कराची, युक्तप्रान्त, लाहौर, महाराष्ट्र आदि के प्रान्तीय सम्मेलन भी आपके सभापतित्व में हुए। ४ जुलाई १९३१ को कलकत्ता में ट्रेड यूनियन काँग्रेस का सालाना इजलास भी आपकी अध्यक्षता में हुआ।

गाँधीजी गोलमेज़-परिषद् से दिसम्बर १९३१ के अन्तिम सप्ताह में लौटे। बम्बई में कार्य-समिति की बैठक बुलाई गई थी। सुभाष बाबू भी वहाँ गये थे। सरकार सुलह को तोड़कर आर्डिनेंस-राज क़ायम करने पर उतारू होगई थी। दमन का दौरदौरा एकाएक शुरू कर दिया गया था। बम्बई से लौटते हुए कल्याण रेलवे स्टेशन पर आपको ३ जनवरी १९३२ को रेगुलेशन ३ में गिरफ्तार करके शाही कैदी बना दिया गया। पहले आपको सिवनी (मध्यप्रान्त) में रक्खा गया। वहाँ स्वास्थ्य एकाएक गिर गया। १३ पौण्ड भार कम होने पर आपको जबलपुर और नागपुर लाया गया। वहाँसे मद्रास भेज दिया गया। वहाँ डाक्टरों ने जब अवस्था अत्यन्त चिन्ताजनक बताई तब १० अक्तूबर १९३२ को आपको भुवाली लाया गया। ४५ पौण्ड भार आपका कम हो चुका था। २५ नवम्बर को बंगाल-कौंसिल में 'काम रोको' प्रस्ताव पेश होकर बिना बहस

के पास हो गया। डाक्टरी परीक्षा के लिए मेडिकल वोर्ड विठाया गया और १८ दिसम्वर को आपको वलरामपुर-अस्पताल (लखनऊ) में लाया गया। यहां भी मेडिकल-वोर्ड विठाया गया। १५ जनवरी १९३३ को सरकार आपको यूरोप भेजने के लिए तैयार हुई, लेकिन फिर वही वात पैदा हुई कि आप सीधे वम्वई जाकर जहाज पर सवार होजायँ। भार ५४॥ पौण्ड कम होचुका था। स्वाभिमानी सुभाष न माने। वूढ़े माँ-वाप ने लाड़ले वेटे से मिलना चाहा। सरकार सुभाष वावू को कटक भेजने को तैयार न थी और वूढ़े माँ-वाप इतनी लम्वी यात्रा करने में सर्वथा असमर्थ थे। ११ फरवरी को श्रीमती शरत वोस ने आपसे भेंट की, तो आपका वजन ६० पौण्ड कम होचुका था। आखिर, आपको यूरोप जाना पड़ा। १७ फरवरी को आपको जवलपुर लाया गया। वहाँपर घर के कुछ लोग आपसे मिले। पर, माता-पिता से मुलाक़ात न हुई। २३ फरवरी को जहाज पर आप जव सवार हुए, तव आप शाही कैद से मुक्त किये गये। मार्च में वीयना जाकर आप सेनीटोरियम में दाखिल हुए। वहाँ प्रेसिडेण्ट पटेल भी इसी प्रकार जेल में मृतप्राय होकर इलाज के लिए यूरोप गये हुए थे। दोनों ने इलाज कराते हुए भी देश की राजनीति में काफी दिलचस्पी ली। नये शासन-विधान के खरीते की आलोचना की और विदेशों में होनेवाले भारत-विरोधी आन्दोलन के विरुद्ध आवाज़ उठाई। इसीसे आपको इंग्लैण्ड आने की आज्ञा नहीं दी गई थी। यहाँतक की १०-११ जून को लन्दन में होनेवाले भारतीय सम्मेलन के आप सभापति चुने गये थे, उसके लिए भी आपको जाने नहीं दिया गया। २२ अक्तूवर को प्रेसिडेण्ट पटेल का देहावसान होगया और वह मृत्यु से पहले अपनी जायदाद का वड़ा हिस्सा लगभग १ लाख की रक़म आपके नाम विदेश-प्रचार के लिए वसीयत कर गये। उसके वाद आपने वुडापेस्ट, वुखारेस्ट,

सोफिया, देलग्रेड आदि का दौरा किया। रोम में भारतीय विद्यार्थी-सम्मेलन आपके सभापतित्व में हुआ। पोलैण्ड, नाइस, मिलन, कार्ल्सबाद, जिनीवा आदि भी गये। सरकार चमक पड़ी। भारत-मन्त्री से न रहा गया। उन्होंने पार्लमेण्ट में कह दिया कि सुभाष बाबू को हिन्दुस्तान लौटते ही गिरफ्तार कर लिया जायगा। उसी समय आपने श्री विट्ठल-भाई और भारतीय आन्दोलन पर दो पुस्तकें लिखीं। अन्तिम पुस्तक का भारत में आना रोक दिया गया।

पिता की मरणासन्न अवस्था का समाचार पाकर आप हवाई जहाज़ से कलकत्ता ४ दिसम्बर को पहुँचे कि पिता का २ दिसम्बर को पर-लोकवास हो चुका था। हवाई अड्डे पर ही पुलिस ने आपको आ घेरा और सीधा घर पहुँचाया गया। वहाँ आपपर अनेक कठोर पावन्दियाँ लगा दीं गईं। मिलने-जुलने और पत्र-व्यवहार पर भी कठोर नियन्त्रण रक्खा गया। पिता के श्राद्ध आदि का कुछ भी विचार न कर आपको एक ही सप्ताह में यूरोप चले जाने का हुक्म देदिया गया। १० जनवरी १९३५ को आप फिर यूरोप के लिए विदा होगये। २४ अप्रैल १९३५ को आपने सडोल्फीनर अस्पताल में पेट का आपरेशन कराया। वहाँ औषधोपचार कराने के साथ-साथ आप प्रचार एवं आन्दोलन में भी लग गये। काँग्रेस से भी आपने नियमित रूप से विदेशों में प्रचार करने के काम को आपने हाथों में लेने का आग्रह किया और एक योजना भी पेश की। कमलाजी की बीमारी के लिए नेहरूजी के यूरोप जाने पर आपने उनसे भी ४ जून को जिनीवा में मिलने पर इस सम्वन्ध में अनुरोध किया। वर्लिन, पेरिस होते हुए आयर भी गये और वहाँ राष्ट्रपति डी० वैलरा से मिले। वहाँके पत्रों ने आपको "निर्वासित भारतीय राजदूत" नाम देकर आपका स्वागत किया। वहाँसे आपने एक भाषण भी ब्राडकास्ट किया।

स्वदेश लौटने के लिए आपका अनुनय-विनय सब व्यर्थ गया। २३ मार्च को केन्द्रीय असेम्बली में इसी सम्बन्ध में 'काम रोको' प्रस्ताव भी पेश किया गया और पार्लमेण्ट में कुछ सवाल पूछे गये थे। आपने निर्वासित की अपेक्षा हिन्दुस्तान में कैदी बनकर रहना अधिक पसन्द किया और ८ अप्रैल १९३६ को बिना आज्ञा प्राप्त किये ही इटालियन जहाज से बम्बई चले आये। जहाज से उतरते ही गिरफ्तार करके आप पोर्ट आर्थर जेल पहुँचा दिये गये। वहाँ से यरवदा और यरवदा से कुरसिआंग भेज दिये गये। आपके प्रति किये गये इस अन्याय पर देश में एकबार फिर विक्षोभ फैला। १० मई १९३६ को तत्कालीन राष्ट्रपति नेहरूजी के आदेश पर सारे देश में 'सुभाष-दिवस' मनाया गया। आपकी रिहाई की जबरदस्त माँग की गई। पर, सरकार कानों में तेल डाले पड़ी रही। केन्द्रीय असेम्बली में की गई चर्चा का भी उसपर कुछ असर नहीं हुआ। १० सितम्बर १९३६ को डाक्टरों ने आपके स्वास्थ्य की परीक्षा की। पुरानी बीमारी फिर उखड़ आई थी। लेकिन, सरकार अपनी ज़िद छोड़ने को तैयार न हुई। केन्द्रीय असेम्बली और बंगाल-असेम्बली में बार-बार सरकार का ध्यान आपके स्वास्थ्य की ओर खींचा गया। १९ पौण्ड वजन घट जाने के बाद १७ दिसम्बर को आपको कलकत्ता के मेडिकल कालेज में लाया गया। ५ जनवरी १९३७ को एक्सरे किया गया। २२ फरवरी तक ६ पौण्ड वजन और घट चुका था। १५ मार्च को दिल्ली में राष्ट्रीय सम्मेलन शुरू हुआ और १७ की शाम को ७॥ बजे आपको एकाएक रिहा कर दिया गया। ५॥ वर्ष बाद कहीं आपको आजादी नसीब हुई। २९ मार्च को बंगाल में 'सुभाष-दिवस' मनाकर आपके स्वास्थ्य के लिए मंगल-कामना की गई और ६ अप्रैल को आपके स्वागत में विराट् आयोजन किया गया। २५ अप्रैल को स्वास्थ्य-सुधार के लिए

डलहौज़ी के लिए रवाना हुए। रास्ते में इलाहादाद में कांग्रेस की कार्य-समिति में और दिल्ली में एक सार्वजनिक सभा में शामिल हुए। लाहौर भी कुछ दिन ठहरे। डा० धर्मवीर ने आपका औषधोपचार किया। डलहौज़ी रहते हुए आप राजनैतिक स्थिति का वरावर अध्ययन करते रहे। करीव ८-९ मास डलहौज़ी में रहकर अक्तूवर में कलकत्ता में होनेवाली कार्य-समिति और महासमिति की वैठकों के प्रवन्ध के लिए डा० धर्मवीर के रोकते-रोकते भी कलकत्ता ७ अक्तूवर को लौट आये। प्रवन्ध के भार से शिथिल स्वास्थ्य फिर गिर गया। इसलिए १८ नवम्वर १९३७ को आपको फिर यूरोप जाना पड़ा। डेढ़ मास चिकित्सा कराई। १० जनवरी १९३८ को लन्दन गये। वहाँ आपने हिन्दुस्तान के पक्ष में आन्दोलन करते हुए तहलका मचा दिया। इसी वीच १६ जनवरी को आप एक-मत से राष्ट्रपति चुन लिये गये।

२३ जनवरी १९३८ को आप स्वदेश लौट आये। सारे देश ने मनोनीत राष्ट्रपति का स्वागत किया। २४ को कलकत्ता पहुँचने पर वंगाल अपने सौभाग्य पर फूला नहीं समाया था। २९-३० जनवरी को आप विष्णुपुर में होनेवाले वंगाल प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन में शामिल हुए और ३ फरवरी को कार्य-समिति की वैठक में शामिल होने को वर्धा पहुँचे।

हरिपुरा में राष्ट्रपति का जो अलौकिक सम्मान ८० वर्ष पुराने वासन्दा महाराज के ५१ वैलों के रथ पर जलूस निकालकर किया गया, वह हमारे इतिहास की अनोखी गौरवपूर्ण घटना है, जिससे सुभाप वावू के प्रति देशवासियों के सम्मान का स्पष्ट पता चलता है। झण्डा-वन्दन के अवसर पर और राष्ट्रपति के पद से आपके ओजस्वी भाषण हुए २५ फरवरी को वम्वई में आपका महान् शानदार स्वागत हुआ।

स्वास्थ्य के पूरी तरह न सुधरने पर भी आपने राष्ट्रपति की ज़िम्मेदारी को पूरी तत्परता के साथ निभाया। बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस के संगठन को सुदृढ़ करने के लिए बंगाल का दौरा किया। आसाम भी आप कई बार गये। यथासंभव दूसरे प्रान्तों में भी आते-जाते रहे। आपने कटक का पिताजीवाला मकान अपने भाइयों की अनुमति से कांग्रेस को प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के दफ्तर के लिए भेंट कर दिया। जंजीबार-लौंग-बहिष्कार के लिए ज़ोरदार अपीलें निकालीं। विनिमय-दर की सरकारी नीति से होनेवाले अन्याय के विरोध में आवाज़ उठाई। कलकत्ता में स्थायी कांग्रेस दफ्तर बनाने के लिए उद्योग किया। कारपोरेशन से ज़मीन ली। चीन को भेजे जानेवाले कांग्रेस-सेवा-दल के लिए धन जमा करने को 'चीन-दिवस' मनाने की अपील निकाली। मध्य-प्रान्त में उत्पन्न हुए खरे प्रकरण में काफ़ी दृढ़ता का परिचय किया। आसाम में कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल के स्थापित होने का सारा श्रेय प्रायः आपको है। उसके लिए आपको कई बार आसाम भी जाना पड़ा।

संघ-शासन-योजना के आप सख्त विरोधी हैं। उसके विरोध में देशव्यापी सत्याग्रह के होने की चुनौती आप साफ़ शब्दों में देते रहते हैं। आपका कहना है कि राष्ट्रपति के पद से इस्तीफ़ा तक देकर भी मैं उसके विरोध में जान लड़ा दूंगा। रियासतों के आन्दोलन में आपने प्रत्यक्ष भाग तो नहीं लिया; लेकिन, नीलगिरि राज्यों में उठे हुए आन्दोलन का आपने ज़ोरदार समर्थन करते हुए राजाओं को सख्त चेतावनी दी है।

साम्प्रदायिक समस्या को हल करने में भी आपने कोई बात उठा नहीं रखी। महात्माजी के आदेश पर आप १० मई १९३८ को बम्बई जाकर श्री जिन्ना से मिले और उनके साथ कार्य-समिति के आदेशानुसार पत्र-व्यवहार भी किया। पूर्व बंगाल के दौरे में ब्राह्मणबेरिया में आप

पर (२८ जून) मुस्लिम लीग वालों ने हमला भी किया। लेकिन, आप ज़रा भी विचलित नहीं हुए।

स्वास्थ्य आपका अब भी इतना नाजुक है कि आसाम से कलकत्ता होकर सितम्बर के तीसरे सप्ताह में कार्य-समिति और महासमिति के लिए हवाई जहाज से दिल्ली आते हुए कानपुर में ऐसे बीमार पड़ गये कि यात्रा स्थगित कर देनी पड़ी। लेकिन, अन्तिम दिन दिल्ली पहुँच कर आपने उसके कार्य का रात-भर जागकर भी जिस दृढ़ता से संचालन किया, वह आश्चर्यजनक था। उसके बाद आप फिर आसाम गये। अब भी आप लखनऊ होकर पंजाब के दौरे पर जा रहे हैं।

युवकों की भावना और आकाँक्षा के आप जीते-जागते चित्र हैं। नौजवानी की सारी आकांक्षायें और अपना सर्वस्व आपने भारतमाता के चरणों में चढ़ा दिया है। आप से जब यह पूछा गया कि 'आप विवाह कब करेंगे', तब आपने ठीक ही जवाब दिया था कि "इस सवाल पर विचार करने के लिए मेरे पास फुरसत ही कहाँ है ?"

सस्ता साहित्य मण्डल : 'सर्वोदय साहित्य माला' के प्रकाशन

१—दिव्य-जीवन ।≡)
२—जीवन-साहित्य १॥)
३—तामिलवेद ॥।)
४—व्यसन और व्यभिचार ॥।≡)
५—(अप्राप्य)
६—भारत के स्त्री-रत्न (तीन भाग) ३)
७—अनोखा (विक्टर ह्यूगो) १।≡)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ॥।=)
९—यूरोप का इतिहास २)
१०—समाज-विज्ञान १॥)
११—खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र ॥।≡)
१२—गोरों का प्रभुत्व ॥।≡)
१३—(अप्राप्य)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह १।)
१५—(अप्राप्य)
१६—अनीति की राह पर ॥=)
१७—सीता की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्याशिक्षा ।)
१९—कर्मयोग ।≡)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यावहारिक सभ्यता ॥)
२२—अँधेरे में उजाला ॥)
२३—(अप्राप्य)
२४—(अप्राप्य)
२५—स्त्री और पुरुष ॥)
२६—घरों की सफ़ाई ।=)
२७—क्या करें? १॥=)
२८—(अप्राप्य)
२९—आत्मोपदेश ।)
३०—(अप्राप्य)
३१—जब अंग्रेज़ नहीं आये थे— ।)
३२—(अप्राप्य) ॥=)
३३—श्रीरामचरित्र १।)
३४—आश्रम-हरिणी ।)
३५—हिन्दी-मराठी-कोष २)
३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)
३७—महान् मातृत्व की ओर ॥।=)
३८—शिवाजी की योग्यता ।=)
३९—तरंगित हृदय ॥)
४०—नरमेध १॥)

४१—दुखी दुनिया ।=)
४२—जिन्दा लाश ॥)
४३—आत्म-कथा (गांधीजी) १॥)
४४—(अप्राप्य)
४५—जीवन-विकास १) १॥)
४६—(अप्राप्य)
४७—फाँसी ! ।=)
४८—अनासक्तियोग—गीताबोध (श्लोक-सहित) ।=)
४९—(अप्राप्य)
५०—मराठों का उत्थान-पतन २॥)
५१—भाई के पत्र १)
५२—स्वगत ।=)
५३—(अप्राप्य) १=)
५४—स्त्री-समस्या १॥।)
५५—विदेशी कपड़े का मुक़ाबिला ॥=)
५६—चित्रपट ।=)
५७—(अप्राप्य)
५८—(अप्राप्य)
५९—रोटी का सवाल १)
६०—दैवी सम्पद् ।=)
६१—जीवन-सूत्र ॥।)
६२—हमारा कलंक ॥=)
६३—बुद्बुद ॥)
६४—संघर्ष या सहयोग ? १॥)
६५—गांधी-विचार-दोहन ॥।)
६६—(अप्राप्य)
६७—हमारे राष्ट्र-निर्माता २॥)
६८—स्वतंत्रता की ओर— १॥)
६९—आगे बढ़ो ! ॥)
७०—बुद्ध-वाणी ॥=)
७१—कांग्रेस का इतिहास २॥)
७२—हमारे राष्ट्रपति १)
७३—मेरी कहानी (ज० नेहरू) २॥)
७४—विश्व-इतिहास की झलक (ज० नेहरू) ८)
७५—हमारे किसानों का सवाल ।)
७६—नया शासन विधान—१ ।॥)
७७—(१) गाँवों की कहानी ।॥)
७८—(२) महाभारत के पात्र—१॥)
७९—सुधार और संगठन १)
८०—(३) संतवाणी ॥)
८१—विनाश या इलाज ? ।॥)